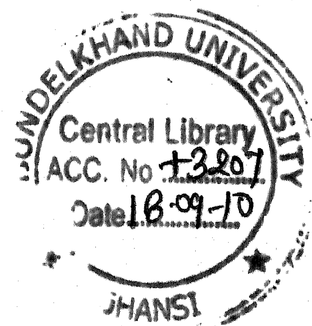
डॉ भीमराव अम्बेडकर के सामाजिक विचारों का एक समाजशास्त्रीय अध्ययन



समाजशास्त्र विषय में पी०एच०डी० उपाधि हेतु
प्रेषित शोध प्रबन्ध



अनुसंधित्सु

कु०पुष्पा गौतम
एम.ए.(समाजशास्त्र)

सह निर्देशक
डॉ. आर.पी. निमेष
एसो. प्रोफेसर
डॉ. बी. आर. अम्बेडकर समाज विज्ञान संस्थान,
बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी

निर्देशक
डॉ. जसवन्त नाग
अध्यक्ष(समाजशास्त्र)
पं. जे. एल. नेहरू पी.जी. कालेज
बांदा

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी, उ०प्र०

२००७

प्रमाण पत्र

प्रमाणित किया जाता है, कि कु0 पुष्पा गौतम पुत्री स्व0 श्री पलटूराम अहिरवार ने हमारे निर्देशन में "डॉ0 भीमराव अम्बेडकर के सामाजिक विचारों का एक समाजशास्त्रीय अध्ययन" विषय पर शोध प्रबन्ध तैयार किया है वह बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झाँसी की पी0एच0डी0 अध्यादेश के सभी उपबन्धों की पूर्ति करता है यह शोध प्रबन्ध इन्हीं अनुसंधान परिश्रम एवं अध्ययन का परिणाम है। यह इनकी मौलिक कृति है।

यह शोध प्रबन्ध इस योग्य है कि परीक्षण के लिए भेजा जाये। इस शोध प्रबन्ध का कोई भी अंश अथवा सम्पूर्ण शोध प्रबन्ध किसी अन्य विश्वविद्यालय को शोध उपाधि के विचारार्थ प्रस्तुत नहीं किया गया हैं।

सह निर्देशक

डॉ. आर. पी. निमेष
ऐसो. प्रोफेसर
डॉ. बी. आर. अम्बेडकर समाज विज्ञान संस्थान, बु.विश्वविद्यालय, झाँसी

निर्देशक

डॉ. जसवन्त नाग
अध्यक्ष (समाजशास्त्र)
पं. जे. एल. एन. (पी.जी.) कालेज, जनपद-बांदा

शोध केन्द्र

डॉ0 बी0 आर0 अम्बेडकर समाज विज्ञान संस्थान

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी, उ. प्र.

उपोद्घात

प्रस्तुत अनुसंधान कार्य डा0 भीमराव अम्बेडकर के सामाजिक विचारों का एक समाजशास्त्रीय अध्ययन पर आधारित हैं जो ऐतिहासिक तथ्य परक वैज्ञानिक निष्कर्ष प्रस्तुत ही नहीं करता, अपितु अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की ज्वलंत समस्या के सन्दर्भ में उन तथ्यों को उजागर तथा रेखांकित करता है जो समाज की व्यवस्था में पग-पग पर निर्बलों, दलितों, पीड़ितों एवं वंचितों को सहन करना पड़ता हैं। भारत में अनुसूचित जाति एवं जन जातियों शिक्षा, जागरूकता, मूलभूत नागरिक सुविधाओं से वंचित थें जो जीवन की निराशा, तनाव, हीनता की भावना आदि की समस्याओं से ग्रसित थें।

प्रस्तुत शोध कार्य इसी प्रयोजन से प्रेरित एक लघु प्रयास है जिसमें डा0 भीमराव अम्बेडकर द्वारा तत्कालीन समाज में पाई जाने वाली कतिपय समस्याओं को उजागर किया, उनके अहिंसक समाज कार्य की समूह विधि, एवं सामाजिक क्रिया विधियों का व्यवहारिक रूप प्रदान कर दलित चेतना एवं प्रभु-जातियों में उनके प्रति अपनी मनोवृत्तियों में अपेक्षित सुधार एवं परिवर्तन लाने हेतु प्रेरित ही नहीं अपितु अपनी बुद्धिमता से उनके सवर्गणीय विकास, समानता, न्याय, स्वतन्त्रता तथा सामाजिक न्याय प्रदान कराने के लिए संवैधानिक व्यवस्था की। प्रस्तुत शोध अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य निम्नवत् थे :-

1. डा0 भीमराव अम्बेडकर के व्यक्तित्व का चित्रण करना।
2. डा0 अम्बेडकर के सामाजिक विचारों की समीक्षा करना।
3. डा0 अम्बेडकर के आर्थिक विचारों का उल्लेख करना।
4. डा0 अम्बेडकर के राजनैतिक विचारों का विवेचन करना।
5. डा0 अम्बेडकर के धार्मिक विचारों का अध्ययन करना।

शोध प्रतिवेदन के प्रति आभार

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झांसी की समाजशास्त्र विषय में 'डाक्टर ऑफ फिलॉसफी' की उपाधि प्राप्त करने के लिए प्रस्तुत किया जा रहा हैं इस शोध प्रबन्ध की आधारशिला रखने हेतु सर्व प्रथम बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झांसी की शोध समिति बधाई की पात्रा है, जिसने प्रथम दृष्टया शोध की रुप रेखा अनुमोदित करके अनुसंधान कार्य हेतु मार्ग प्रशस्त कर मेरा उत्साहवर्द्धन किया हैं।

प्रत्येक नवीन कार्य के लिए कोई न कोई प्रेरणाश्रोत अवश्य हुआ करता है। मुझें अनुसंधान कार्य हेतु प्रेरित करने में :-

प्रस्तुत "शोध प्रबन्ध" की रचना के लिए गुरु जी डॉ0 जसवंत नाग के निर्देशन एवं गुरु जी डॉ0 आर0पी0 निमेष के सह निर्देशन में शोध-कार्य करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, समस्या के चयन से लेकर "शोध प्रबन्ध " को अन्तिम रुप प्रदान कराने एवं समय-समय पर सहयोग पूर्ण निर्देशन देने के लिए मैं" निर्देशक एवं सह-निर्देशक की आभारी हूँ।

मैं आभारी रहूँगी मान्यवर श्री के आर0 शशि, कि जिन्होंने मुझे उच्च शिक्षा के क्षेत्र में प्रवेश को प्रेरित किया तथा बाबा साहब डा0 भीमराव अम्बेडकर के सामाजिक विचारों पर शोध कार्य करने में मेरी भरपूर सहायता की। अन्त में मैं अपने स्वर्गीय पिता जी एवं माता जी तथा श्री सुमित कुमार गौतम,धमेन्द्र कुमार गौतम, श्री राहुल कुमार गौतम,कु0 वर्षा गौतम, की आभारी हूँ जिनके उत्साहवर्द्धन से मैं अभिभूत रही हूँ। साथ ही कु0 रचना शर्मा के टंकण कार्य के लिए उनका आभार व्यक्त करती हूँ।

शोधकर्त्री

कु0 पुष्पा गौतम

एम0ए0 समाजशास्त्र

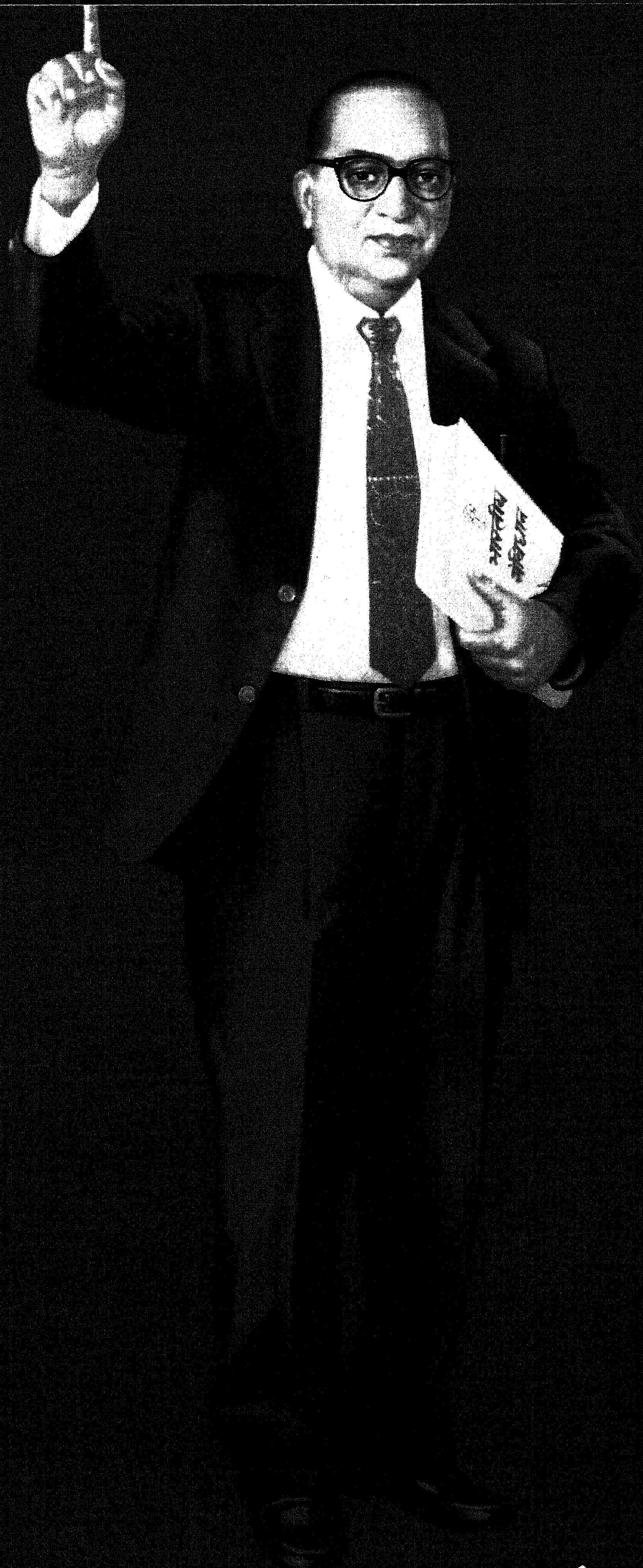
शोध अध्ययन के उपरोक्त उद्देश्यों को दृष्टिगत रखते हुए इस शोध प्रबन्ध का अध्यायीकरण निम्न प्रकार किया जाता हैं :-

1. अध्याय प्रथम में शोध अध्ययन की विस्तृत प्रस्तावना एवं शोध पद्धति का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत किया गया हैं।
2. अध्याय द्वितीय में डा0 अम्बेडकर की संक्षिप्त जीवनी एवं स्मरणीय तिथियों का चित्रण किया गया हैं।
3. अध्याय तृतीय में शोध विषय साहित्य का पुर्नविलोकन किया गया हैं।
4. अध्याय चतुर्थ में डा0 अम्बेडकर के सामाजिक विचारों की समीक्षा प्रस्तुत की गई हैं।
5. अध्याय पंचम में डा0 अम्बेडकर के आर्थिक विचारों का समावेश किया गया हैं।
6. अध्याय षष्ठम में डा0 अम्बेडकर के राजनैतिक विचारों का उल्लेख किया गया हैं।
7. अध्याय सप्तम में डा0 अम्बेडकर के धार्मिक विचारों का विवेचन किया गया हैं।
8. अध्याय अष्टम में सम्पूर्ण शोध की विषय वस्तु का निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया है।

प्रस्तुत शोधकार्य में शोध समिति के निर्देशानुसार शोध संक्षिप्तकी के अनुरुप पूर्ण किया गया हैं। सम्प्रति, इसकी उपद्येयता एवं महत्व की अनुभूति तो पाठकगण तथा विषय के विद्वान मनीषी ही भली-भांति कर सकते है कि शोधकर्त्री अपने प्रयास में कितनी सफल हुई हैं।

शोधकर्त्री
कु0 पुष्पा गौतम
एम0ए0 समाजशास्त्र

विषय वस्तु



डा0 भीमराव राम जी अम्बेडकर

अध्याय - 1

प्रस्तावना

1. शोध विषय के अध्ययन की आवश्यकता :

भारत सदैव से विचारकों, दार्शनिकों मनीषियों का देश रहा हैं। जिसमें महाराष्ट्र प्रान्त को यदि खान कहा जाये तो अतिश्योक्ति न होगी, जहां लोकमान्य तिलक, महात्मा ज्योतिराव फूले, राजा राममोहन राय, गोबिन्द राय रानाडे आदि उत्पन्न हुए। इनमें से डॉ0 भीमराव अम्बेडकर एक प्रमुख सामाजिक विचारक, सुधारक, राजनीति की सम्वैधानिक व्यवस्था के विधि शिल्पकार धर्म के समाजशास्त्र के ऋषि, पत्रकार, शिक्षाविद थें।

उनका अर्विभाव स्वदेश में ऐसी परिस्थितियों में हुआ था जब हिन्दू समाज की सामाजिक संरचना वर्ग व्यवस्था पर आधारित थी। जातिवाद अपनी पराकाष्ठा पर थी और अस्पृष्श्यता अपना मानव विरोधी तांडव कर रही थी। वंशानुसार व्यवसाय में सुनिश्चित था। शूद्रों विशेष कर अतिशूद्रो पर सामाजिक,आर्थिक एवं धार्मिक अयोग्यताऐं थोप दी थी। उन्हें शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार नहीं था। उनसे वेगारें ली जाती थी। उनका मंदिर प्रवेश वर्जित था आदि।

डॉ0 भीमराव अम्बेडकर ने इन परिस्थितियों को देखा सुना तथा झेला भी था। स्वयं वे अन्य सवर्ण जातियों के छात्रों के साथ बैठ नहीं सकते थें, स्कूल के नल पर पानी नहीं पी सकते थें। बैलगाड़ी में नहीं बैठ सकते थें। नाई उनके बाल नहीं काटता था। उसको व उसकी जाति को नीच कहा जाता था, लोग उससे घृणा करते थें। बड़ौदा रियासत का वित्त सचिव होने पर भी उनका अनुचर उनको कार्यालय की फाइल को फेंक कर देता था। होटलमें उसका प्रवेश वर्जित था आदि।

उपरोक्त असमानता, विषमता को समाज से दूर करने के लिये अपने जीवन

में अनेक सुधार आन्दोलन-महाड तालाब से पानी पीने का आन्दोलन ,कालाराम मन्दिर में अस्पृश्यों के प्रवेश का आन्दोलन के अतिरिक्त, बहिष्कृति समाज का संगठन, महिला संगठन शैडुलकास्ट फैडरेशन, मजदूर संध एवं रिपब्लिकन पार्टी की स्थापना।

पत्रकारिता के क्षेत्र में कमशः 'मूकनायक', 'जनता' तथा ''बहिष्कृत भारत'' पत्र तथा पत्रिकाओं का संम्पादन तथा शिक्षा जगत में मिलन्द कालेज, तथा सिद्धार्थ एजुकेशन सोसाइटी की स्थापना एवं प्रोफेसर, तथा वकील के रुप में व्यवसाय अपनाकर अन्याय के विरुद्ध न्यायालय से न्याय दिलाना, हिन्दू कोड बिल पास कराकर विधवाओं को पुर्नविवाह, सन्तान हीनों को दत्तक पुत्र/पुत्री रखने का,पति/पत्नी का परिस्थिति में तलाक, बच्चों को भरण पोषण,अस्पृश्यता उन्मूलन, महिला श्रमिको को प्रसूति का वेतन सहित अवकाश का प्रविधान करा हिन्दू समाज की अनेक विकृतियों को ठीक किया तथा बुद्धिजीवियों का ध्यानाकर्षण किया।

स्वदेश उनकी वर्ष 1991 में जन्मशताब्दी भी मना चुका है। उन्हें पूर्व प्रधानमंत्री पी0वी0सिंह की सरकार ने 'भारतरत्न' की महानतम् सम्मान से भी सुशोभित भी किया,परन्तु वर्तमान सिंहावलोकन से विदित होता है कि आज भी अनुसूचित जाति एवं जनजातियों के ऊपर तत्र-तत्र सर्वत्र देश में असमानता अन्याय का व्यवहार सवर्ण कहीं जाने वाली जातियाँ -ब्राह्मण, ठाकुर एवं वैश्य के द्वारा कर रही है, उनकी महिलाओं के साथ बलात्कार, छुआछूत, व्यवसाय करने पर अप्रत्यक्ष पाबन्दी , उनके बच्चों को परीक्षा में कम अंक प्रदान करना, उनके लिए अशिक्षित पदों को रोजगार के लिये न भरना, उन्हें अयोग्य घोषित करना सरकारी सभी तरह के लायसेन्स न देना, अपमान, हिंसा, बंधुआ, मजदूर बनाना आदि समस्याओं से वे आज भी पीड़ित हैं।

यद्यपि समय-समय पर राज्य एवं केन्द्रीय सरकार ने उनके कल्याण एवं विकास के अनेक कार्यक्रम, नीतियां नियोजन क्रियान्वित कियें हैं परन्तु जातियां पूर्वाग्रह एवं रुढ़िग्रस्त तथा इन जातियों की अशिक्षा एवं घोर दरिद्रता के कारण इनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति पर नगण्य ही प्रभाव पड़ा हैं। दलित कहीं जाने वाली जातियां औद्यौगिक कृषि तथा भवन निर्माण के कार्य में संलग्न होकर राष्ट्रीय आय में महत्वपूर्ण योगदान करती है परन्तु उसका लाभ इन जातियों को प्रायः बहुत ही कम प्राप्त हो पाता है। इन पर किया गया निवेश राष्ट्रहित में हैं। इनके साथ सामाजिक आर्थिक समानता, बन्धुत्व, न्याय एवं स्वतंत्रता का तब तक व्यवहार सुनिश्चित नहीं किया जाता तब तक संविधान का मूल उद्देश्य तथा डॉ0 भीमराव अम्बेडकर के सामाजिक आन्दोलनों तक कानूनी प्रविधानों के साथ तथा राष्ट्र के साथ अधिभाषियों तथा नेताओं की बेमानी ही होगी।

2. शोध विषय का महत्व

डॉ0 भीमराव अम्बेडकर के सामाजिक आर्थिक,राजनैतिक तथा धार्मिक मान्यताओं, सिद्धान्तों तथा दर्शन की आज भी अत्यन्त अवश्यकता हैं,उनका दर्शन कालजयी है। वे आज भी प्रामाणिक है । विकासित देश होने के लिए उनके 'शिक्षितबनो' 'संघर्ष करो' तथा 'संगठित रहो' महामूल मंत्र आज भी महत्वपूर्ण हैं दलितों की प्रगति, उत्थान तथा विकास से समूचे राष्ट्र का विकास होगा । आज उनके द्वारा बताये गये, चलाये गये आन्दोलनों तथा उनमें अहिंसा विधि का प्रयोग, अतिआवश्यक हैं । उसकी महत्ता हैं । उनके विचारों पर अमल करने से व्यक्ति के समूह को , समुदाय तथा समाज को लाभ होगा । हम सभ्य समाज की रचना करने में समर्थ होंगें। हम देश से राष्ट्र के होने के लक्ष्य को आत्मसात करेंगे । इम्मरसन ने ठीक ही कहा हैं-" किसी देश को सोना चांदी महान नहीं बनातें अपितु उस देश

के महान व्यक्ति-जैसे (गान्धी-नेहरु तथा अम्बेडकर) महान बनाते हैं।'[1]' डॉ0 भीमराव अम्बेडकर धंनजय कीर के शब्दों में -" भारत भूषण अम्बेडकर का विचित्र जीवन आज ज्ञानाजर्न एवं भक्तों के लिए प्रेरणा श्रोत्र बन गया है। इससे एक नवीन देवता का उदय हुआ हैं। एक प्रदीप इस मंन्दिर वाले देश(भारत में) प्रज्जलित हो रहा है जिसे देश के प्रत्येक कोने से देखा जा सकता है तथा दूर विदेश से भी। वह एक नवीन ज्ञानपीठ है।, नवीन काव्य सृजन की प्रेरणा, नवीन तीर्थ स्थान और नवीन साहित्य रचना का केन्द्र है।'[2]'

3. शोध विषय की अवधारणा

मानव एक सामाजिक प्राणी ही नहीं, अपितु एक चिन्तनशील प्राणी भी हैं। सामाजिक प्राणी इस अर्थ में कि उसका जन्म व विकास सामाजिक पृष्ठभूमि में ही होता हैं। अपने व्यक्तित्व के विकास, जिसमें मस्तिष्क का विकास भी सम्मिलित हैं, के लिए वह समाज पर निर्भर हैं। इस प्रकार एक सामाजिक प्राणी के रुप में विकसित होने के लिए उसे जो कुछ भी चाहिए वह उसे समाज से ही प्राप्त होता हैं। समाज उसे बहुत कुछ प्रदान करता हैं, पर यह सब कुछ लेने के बाद वह समाज को, अपने चारों ओर के संसार को, यहां तक कि अपने आपको, आप जैसे औरों को, उनसे सम्बन्धित समस्याओं व घटनाओं को वह भूलता नहीं, उनके सम्बन्ध में सोचता-विचारता हैं और उसके समाधान के लिए कोई सम्भावित हल ढूँढ़ने का प्रयास भी करता है और चिन्तनशील की यही विलक्षणता सामाजिक विचार को जन्म देती हैं। वास्तव में मानव की यथार्थ महानता ही उसके सुचिन्तन विचारों अथवा चिन्तन में निहित हैं। समाज के सदस्य के रुप में मनुष्य जब अपने विचारों को सामाजिक धटनाओं के सन्दर्भ में सुव्यवस्थित रुप देता हैं, परन्तु सामाजिक

---

1. इम्मरसन, आरडब्लू : "नोट गोल्ड वट ओनली मैंन केन मेक एक नेशन गेट
2. धनंजय कीर : डा. अम्बेडकर : लाइफ एण्ड मिशन

विचार की प्रकृति को समझने के लिए आवश्यक है, कि हम इसके वास्तविक अर्थ से परिचित हो जायें।

मानव समाज व संस्कृति के विकास के प्रारम्भिक स्तर से ही मानव अनेकों समस्याओं से घिरा रहा हैं। ऐसा कोई भी समय नहीं हुआ, जबकि मानव ने अपने आपको समस्याओं से पूर्णतया विमुक्त पाया हो। इसलिए उन समस्याओं के सम्बन्ध में सोचने और अपने जीवन को इस प्रकार मानवीय अन्त सम्बन्धों में सोचने और अपने जीवन से सम्बन्धित कठिनाइयों को सुलझाने की आवश्कयता रही है। इस प्रकार मानवीय अन्त सम्बन्धों और सामाजिक जीवन से सम्बन्धित समस्याओं तथा जटिलताओं को समझने या सुलझाने का प्रयत्न मानव आदि काल से करता आ रहा है। सामाजिक समस्याओं या सामाजिक जीवन विचार अथवा विचार धारा के नाम से पुकारा जाता हैं। सरला दुबे (1999:1-3) के शब्दों में कि,''यदि मानव स्वभाव से एक दार्शनिक है तो वह सम्भवतः ही समाजशास्त्री भी हैं। एक समाजशास्त्री के रुप में, चाहे वह कितना ही अवैज्ञानिक अर्थ में क्यों न हो, जब मनुष्य सामाजिक जीवन के सम्बन्ध में अपना विचार व्यक्त करता हैं, तभी समाज का प्रार्दुभाव होता है दूसरे शब्दों में, सामाजिक जीवन की गम्भीर समस्याऐं जब मानव के विचार-विमर्श का विषय बन जाती हैं, और मनुष्य उनके विषय में विचारों को अभिव्यक्त करता हैं, तो वही विचार सामाजिक विचार या विचारधारा बन जाती हैं।

<u>सामाजिक विचारों का विकास :-</u>

वैसे तो समाज के सम्बन्ध में विचारों को प्राचीन समय से व्यक्त किया जाता रहा है, फिर भी 19 बी शताब्दी में ज्ञान की एक पृथक शाखा के रुप में समाज शास्त्र के विकास के बाद ही सामाजिक विचारों का प्रतिपादन होना प्रारम्भ हुआ। पर ये विचार यकायक ही नहीं पनपे, क्योंकि इनके पीछे समाज के सम्बन्ध में शताब्दियों की सामाजिक विचारधारा और दर्शन का हाथ था। प्रारम्भिक

विद्वानों का विशेष सम्बन्ध सामाजिक सम्बन्धों की आधारभूत समस्याओं तथा समाज के विकास, तथा संगठन से ही था। अतः समाजशास्त्रीय विचार के विकास के सम्बन्ध में विवेचना करने से पूर्व यह अच्छा होगा कि हम उनकी आरम्भिक पृष्ठभूमि को समझ लें।

19 वीं शताब्दी से पहले समाज के सम्बन्ध में विभिन्न सिद्धान्तों के बीच कोई स्पष्ट अन्तर नहीं था। उसका कारण यह था कि एक ओर समाज दर्शन एवं दूसरी ओर धार्मिक, आर्थिक तथा राजनीतिक सिद्धांत एक दूसरे के साथ घुले -मिले थें। उससे भी पहले तो सामाजिक जीवन व स्वयं समाज के सम्बन्ध में विचारों को मुहावरों, लोकगीतों, पौराणिक कथाओं आदि के माध्यम से व्यक्त किया जाता था। उसके बाद प्रख्यात ग्रीक दार्शनिक सर्वश्री प्लूटों तथा आरस्तू की कृतियों में हमें सर्वप्रथम मानव-जीवन तथा समाज के सम्बन्ध में सम्पूर्ण देखने को मिलता हैं।

अपने समय के परम्परागत मार्ग से दूर हटकर सामाजिक विचारधारा को एक नवीन रुप देने का श्रेय श्री प्लूटों (427-347 ई0 पूर्व) को था। आपकी पुस्तक Republic एक अमर कृति हैं। उसमें श्री प्लूटों ने मानव-प्रकृति या व्यवहार के सम्बन्ध में जो मत प्रकट किए हैं वे इस बीसवी सदी की मनोवैज्ञानिक या समाजशास्त्रीय खोज के भी पूर्णतया विरोधी नहीं हैं आपने इस सिद्धान्त को प्रतिपादित किया कि मानव-व्यवहार उस समाज की उपज हैं जिसमें कि एक व्यक्ति जन्म लेता और पलता हैं व्यक्ति तो समाज से जैसा सीखेगा वैसा ही व्यवहार करेगा। उसी प्रकार श्री प्लूटों के विचारानुसार समाज एक शरीर की भांति हैं। और इसीलिए इसके विभिन्न अंग एक दूसरे से सम्बन्धित और एक-दूसरे पर आधारित हैं।

श्री प्लूटों के सर्वाधिक प्रसिद्ध शिष्य श्री अरस्तू (384.322B.C.) को अपने समय का सर्वश्रेष्ठ विचारक कहा जा सकता है। आपकी पुस्तकों में म्जीपबे तथा चवसपजपबे का महान् कृतियों के रुप में आज भी समादर होता हैं। मानव'प्रकृति के सम्बन्ध में आपका निष्कर्ष यह है कि मनुष्य एक सामाजिक या 'राजनीतिक' प्राणी हैं। उसे दूसरे व्यक्तियो के साहचर्य (Company) की आवश्यकता हैं। इसीलिए "कोई भी व्यक्ति सम्पूर्ण संसार को अपना कहने से इनकार कर देगा यदि उसे यह मालूम हो जाए कि उसे संसार में अकेला ही रहना होगा"। मानव -व्यवहार के सम्बन्ध में अपने गुरु श्री प्लूटों द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त को श्री अरस्तू ने उलट दिया था। श्री प्लूटों के अनुसार 'मानव-व्यवहार उसके अपने समाज की ही उपज है', जबकि श्री अरस्तू के अनुसार 'समाज की प्रकृति व्यक्ति के स्वभाव पर निर्भर हैं।'

श्री अरस्तु के बाद तथा श्री कॉम्टे के पहले अन्य जो सामाजिक दार्शनिक हुए हैं उनमें सर्वश्री लुक्रटियस ,सिसरों (106.43B.C.),मार्क्स आरेलियस (121.180 A.D.), सन्त अगस्टीन (356.430 A.D.), थॉमस हॉब्स (1588.1679 A.D.), जॉन लॉक (1632.1704 A.D.), रुसों (1712.1778 A.D.), मांटेस्क्यू (1689. 1755 A.D.) आदि का नाम विशेष रुप से उल्लेखनीय हैं। इनमें सर्वश्री हॉब्स, लॉक व रुसों द्वारा राज्य या समाज की उत्पति से सम्बन्धित 'सामाजिक समझौते के सिद्धान्तों' का उल्लेख समाजशास्त्रीय साहित्य में आज भी देखने को मिलता है। उसी प्रकार श्री मांटेस्क्यू की अमर कृति को उचित ही प्रथम वर्णनात्मक सामाजिक विज्ञान एवं प्रथम दर्शन का विज्ञान कहा गया हैं। इनका निष्कर्ष यह था कि सामाजिक घटनाएँ (Phenomena), अन्य घटनाओं की भाँति ही वैज्ञानिक नियमों के अधीन हैं। श्री मॉंटेस्क्यू ने सामाजिक जीवन व संस्थाओं पर पड़ने वाले जलवायु के प्रभावों से सम्बन्धित सिद्धान्त को भी प्रस्तुत किया।

इसके बाद 'समाजशास्त्र' के जन्मदाता श्री अगस्त कॉम्टे (1798.1857) सामने आते है इनके विषय में श्री हैरी एल्मर बार्न्स ने लिखा है कि "नए और मौलिक सामाजिक सिद्धान्तों के विकास की अपेक्षा श्री कॉम्टे की प्रमुख देन उनकी समन्वय (Sysmthesis) तथा संगठन की असाधारण योग्यता में थी।[1]" श्री बार्न्स ने यह दर्शाया है कि श्री कॉम्टे ने श्री अरस्तू से लेकर सेण्ट साइमन तक के सामाजिक दर्शन के लेखकों से बहुत कुछ ग्रहण किया हैं। कुछ भी हो, श्री कॉम्टे केवल समाजशास्त्र का ही नहीं अपितु प्रत्यक्षवाद का भी जन्मदाता कहा जाता हैं। उनके अनुसार प्रत्यक्षवाद का एक अर्थ 'वैज्ञानिक' हैं। आपका विचार है कि समग्र ब्रह्माण्ड 'अपरिपर्वनीय प्राकृतिक नियमों (Invariable natural laws) द्वारा व्यवस्थित तथा निर्देशित होता हैं और यदि हम इन नियमों को समझना चाहते हैं तो धार्मिक (Theological) या तात्विक (Metaphysical) आधारों पर नहीं अपितु विज्ञान की विधियों द्वारा ही समझा जा सकता हैं। यह विज्ञान की विधि या पद्धति निरीक्षण, परीक्षण, प्रयोग और वर्गीकरण की एक व्यवस्थित कार्य-प्रणाली होती हैं। इसी कार्य प्रणाली के आधार पर सब कुछ समझना और उससे ज्ञान प्राप्त करना ही प्रत्यक्षवाद हैं।

सेण्ट साइमन द्वारा प्रस्तुत विचारों के आधार पर श्री कॉम्टे ने विज्ञान के इतिहास का सर्वेक्षण किया एवं विज्ञानों का एक संस्तरण (Hierarchy) प्रस्तुत किया जो इस प्रकार था- गणितशास्त्र और खगोलशास्त्र, भौतिकशास्त्र, रसायनशास्त्र एवं प्राणिशास्त्र। गणितशास्त्र, खगोलशास्त्र मनुष्य से बहुत दूर थे जबकि भौतिकशास्त्र, रसायनशास्त्र तथा प्राणिशास्त्र क्रमशः एक पदार्थ (Matter) और एक सावयव (Organism) के रुप में मनुष्य के निकट आते गऐ। अतः श्री कॉम्टे ने यह अनुभव किया कि यही उचित समय हैं जबकि विज्ञानों के एक विज्ञान को प्रतिष्ठित किया जाए जोकि अन्य विज्ञानों की खोज से लाभ उठाता हुआ मनुष्य

1. H.F. Barnes, An Introduction to the History of Sociology, Uni To Chicogo press 1958,p.83

और उसकी समस्त कृतियों (Man and all his works) का अध्ययन कर सके। इसी विज्ञान को पहले -पहल श्री कॉम्टे ने 'सामाजिक भौतिकी' और फिर सन् 1838 में समाजशास्त्र की संज्ञा दी। उनके अनुसार समाजशास्त्रीय अध्ययन का उद्देश्य ज्ञान विस्तार के साथ -साथ मानवीय (Humanitarian) भी होना चाहिए। इस बात को उन्होने इस प्रकार प्रस्तुत किया है "भविष्य वाणी करने के लिए ज्ञान प्राप्त करना और नियन्त्रण करने के लिए भविष्यवाणी करना" (To know in order to predict and to predic in order to control) श्री कॉम्टे का विश्वास था कि समाजशास्त्रीय अध्ययन द्वारा प्राप्त प्रत्यक्ष (Positive) ज्ञान के आधार पर ही मनुष्य के लिए अपनी जटिल समस्याओं पर नियन्त्रण पाना सम्भव होगा।

समाजशास्त्रीय सिद्धान्त के क्षेत्र में श्री कॉम्ट का एक महत्वपूर्ण योगदान उनके द्वारा प्रस्तुत 'तीन स्तरों का नियम'(Laws of three stages) हैं। श्री कॉम्टे ने लिखा हैं, "सभी समाजों में और सभी युगों में मानव के बौद्धिक विकास का अध्ययन करने पर उस महान् आधारभूत नियम का पता चलता है। जिसके अधीन मनुष्य की बुद्धि आवश्यक रुप से होती है .... यह नियम इस प्रकार है हमारी प्रत्येक प्रमुख अवधारणा, हमारे ज्ञान की प्रत्येक शाखा, एक के बाद एक तीन विभिन्न सैद्धांन्तिक दशाओं से होकर गुजरती हैं-धार्मिक अथवा काल्पनिक (Theological or fictitious) अवस्था, तात्विक अथवा अमूर्त (Metaphysical or absract) अवस्था एवं वैज्ञानिक अथवा प्रत्यक्ष (Scientific or Positive) अवस्था।

श्री कॉम्टे के अनुसार समाज एक सामूहिक सावयव (Society is a collective organism) न कि एक वैयक्तिक सावयव (individual organism) और समाज का प्रारम्भिक सावयवी गुण है सार्वभौमिक मतैक्य (Universal Consensus) जिसका कि अर्थ है समाज के अन्तःनिर्भरशील भागों में समांजस्य का होना। साथ ही श्री कॉम्टे ने 'मानवता की आवश्यक तथा निरन्तर गति'(The necessary and

continuous movement of mankind) के सिद्धान्त को भी प्रस्तुत किया और यह घोषणा की कि यह प्रमाणित करना सरल है कि समाज का क्रमिक परिवर्तन सदैव ही एक निश्चित क्रम से हुआ हैं।

समाजशास्त्र के क्षेत्र में श्री कॉम्ट के सिद्धान्तों को और भी स्पष्ट, उन्नत तथा विस्तृत रुप देने का कार्य ब्रिटिश समाजशास्त्री व दार्शनिक श्री हरवर्ट स्पेन्सर (Herbert Spencet: 1820-1902) ने अपने हाथों में लिया और 19वीं शताब्दी के समाजशास्त्रीय सिद्धान्त को एक नया मोड़ प्रदान किया गया। आप द्वारा प्रस्तुत सामाजिक सन्दर्भ में उद्विकास का नियम (Laws of Evolution) एक उल्लेखनीय सिद्धान्त हैं। श्री डार्विन द्वारा प्रतिपादित प्राणिशास्त्रीय उद्विकास के सिद्धान्त के आधार पर ही श्री स्पेन्सर ने सामाजिक उद्विकास के सिद्धांत को प्रस्तुत किया जिसके अनुसार अपने विकास के दौरान समाज एक अनिश्चित असम्बद्ध समानता से निश्चित सम्बद्ध भिन्नता में बदलता है' (Passes from an indefinite incoherent homogeneilty to a definitecoherent heterogeneity)। वास्तव में श्री स्पेन्सर की सर्वाधिक ख्याति उनके द्वारा प्रतिपादित समाज की जीव सावयवी (Bio-organismic) अवधारणा के कारण है जिसके अनुसार समाज भी एक सावयव इस अर्थ में है कि इन दोनों में अनेक समानतायें हैं। इन समानताओं के साथ-साथ इन दोनों में एक उल्लेखनीय समानता यह भी है कि सावयव की भाँति समाज की व्यवस्था या संरचना की स्थिरता या निरन्तरता इस बात पर निर्भर है कि प्रत्येक अंग अपने-अपने निर्धारित प्रकार्यो को ठीक-ठीक करता रहें। परन्तु इस प्रकार प्रकार्य (Function) करना संरचना के कारण ही सम्भव होता है या दूसरी ओर प्रकार्यों में परिवर्तन हुए बिना संरचना में परिवर्तन घटित नहीं होता हैं। सर्वश्री कांसर तथा रोजबर्ग (Coser and Rosenberg) का विचार है कि जब श्री रॉबर्ट मर्टन ने, जिन्हें कि एक महान् अमेरिकन सिद्धांतकार (Theorist) के रुप में आज माना

जाता है, अपने संरचनात्मक प्रकार्यवाद की व्याख्या बहुत-कुछ उन्हीं आधारों पर की है जैसा कि स्पेन्सर ने ''[1]। समाजशास्त्रीय सिद्धांत के विकास में श्री स्पेन्सर का महत्वपूर्ण योगदान इसी से स्पष्ट हो जाता हैं।

19 वीं शताब्दी के मध्य तक समाजशास्त्र का विस्तार अमेरिका मे भी हो चुका था और अमेरिकन समाजशास्त्रीय सिद्धांत के क्षेत्र में एक उल्लेखनीय नाम श्री लेस्टर वार्ड (1841-1913) का है जिन्हें कि अमेरिकन समाजशास्त्र का जनक (Father of American Sociology) कहा जाता है। श्री सैमुअल छूगरमैन (Samuel Chugerman) ने अपनी पुस्तक (1939) Lester F. Ward, TheAmerican Aristotle के शीर्षक में ही श्री वार्ड की 'अमेरिकन अरस्तू' की संज्ञा दी हैं। आपने श्री स्पेन्सर द्वारा प्रस्तुत समाज के उद्विकासवादी सिद्धांत की अंशतः ग्रहण किया। उनके अनुसार श्री स्पेन्सर का यह सिद्धांत पूरी तरह सही नहीं है कि समाज और सावयव दोनों के उद्विकास की प्रक्रिया बिल्कुल एक सी है। समाज की इकाई मनुष्य हैं एवं मनुष्य दूसरे प्रकार के प्राणियों से इस रुप में भिन्न हैं कि वह तार्किक रुप में सोच सकता और काम कर सकता हैं। इसका प्रभाव उसके उद्विकास की प्रकृति पर भी पड़ता है। उसी प्रकार श्री वार्ड द्वारा प्रस्तुत रचनात्मक संश्लेषण (Creative synthesis) का सिद्धांत एक सर्वव्यापी सिद्धांत हैं जोकि, श्री वार्ड के अनुसार, प्रकृति के प्रत्येक विभाग में एवं उद्विकास के प्रत्येक स्तर पर क्रियाशील रहता हैं।

इस अवधारणा को आपने प्रख्यात जर्मन दार्शनिक श्री बुण्ड से लिया था जिनके अनुसार ऐसा कोई स्वरुप नहीं है जोकि अपने कारकों के योग मात्रा से कुछ अधिक न हो। इसी नियम के आधार पर श्री वार्ड ने उद्विकास की उस

---

1. L.A. Coser and B. Rosenbers, cit. p.5

प्रक्रिया को समझाया है जिसके द्वारा साधारण या सरल तत्वों का उच्चतर या जटिल स्वरूप हो जाता हैं।

श्री वार्ड द्वारा प्रस्तुत स्त्री-गुणसूत्र का सिद्धान्त (Gynaecocentric Theory) भी उल्लेखनीय हैं । उस समय प्रचलित मान्यताओं के विपरीत यह सिद्धांत यह मानता है कि जैविक योजना (Organic shcems) में स्त्रियां प्राथमिक जबकि पुरुष द्वितीक या गौण हैं । इस प्रकार प्राकृतिक तौर पर स्त्रियां पुरुषों की अपेक्षा श्रेष्ठ हैं, पर पुरुषों ने उन्हें अपने अधीन कर लिया हैं।

19 वी शताब्दी के व्यक्तिवादी सिद्धांतों के संयोजक के रुप में श्री विलियम जी0 समनर(1840-1910),जोकि अमेरिका में विश्वविद्यालय स्तर के समाजशास्त्र के शिक्षकों में सर्वप्रथम थें, का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं । एक सामाजिक इकाई के रुप में व्यक्ति से सम्बन्धित श्री समनर के सिद्धान्त व्यक्तिवाद (Individualism) का चरम रुप हैं । आपने आत्म-उपलब्धि, कठोर परिश्रम, अनुशासन तथा प्रतिस्पर्दा के गुणों पर अत्यधिक बल दिया । परन्तु श्री समनर की वास्तविक देन उनकी प्रख्यात कृति Folkways में प्रस्तुत रुड़ियों का सिद्धांत (Theory of the Mores) हैं । समाजशास्त्रीय साहित्य में Folkways (जनरीतियॉ) तथा Mores (रूड़ियॉ) इन दो अवधारणाओं को सम्मिलित करने का श्रेय समनर को ही हैं ।

समाजशास्त्रीय सिद्धांतों को मनोवैज्ञानिक आधार प्रदान करने का श्रेय श्री गेबरियल टार्ड (1843-1904) को है जिन्होंने अनुकरण को सामाजिक जीवन के नियम के रुप में (Imtation as the law of social life) प्रस्तुत किया । अपनी प्रख्यात पुस्तक Law of Imitation में आपने अनुकरण के सिद्धान्त या नियम को सविस्तार समझाया हैं और उनका निष्कर्ष यही है कि वास्तव में समाज साकार अनुकरण हैं।

उनके विचारानुसार अनुकरण समाज के उच्च स्तर से नीचे की ओर, अन्दर से बाहर की ओर एवं रेखागणितीय अनुपात (Geometrical Progression) से फैलता हैं।

फ्रांस में श्री कॉम्टे के 'उत्तराधिकारी' के रुप में समाजशास्त्रीय सिद्धांत के क्षेत्र में जिनका अनुपम योगदान रहा वे थे श्री इमाइल दुर्खीम (1858.1917)। अपनी प्रख्यात कृतियाँ De la division du travail social (The division of Labour in Society), Le Suicide (suicide) तथा Les Formes elementaries de la vie religieuse (The Elementary forms of Religious Life) में श्री दुर्खीम ने क्रमशः श्रम-विभाजन के सिद्धांत, आत्महत्या के सामाजिक सिद्धांत तथा धर्म के सामाजिक सिद्धांत को विकसित किया हैं। श्रम-विभाजन के सिद्धांत में श्री दुर्खीम ने यह दर्शाने का प्रयास किया है कि श्रम विभाजन का प्रत्यक्ष सम्पर्क जनसंख्या के धनत्व से है एवं हर दशा में श्रम-विभाजन के कुछ सामाजिक परिणाम है जिनमें सबसे प्रमुख समाज मे यांत्रिक एकता (Mechanical Solidarity) के स्थान पर सावयवी एकता या संगठन (Organic Solidarity) का पनपना है। आत्महत्या के सिद्धांत में समाज (चाहे वह पारिवारिक समाज हो या धार्मिक समाज या राजनीतिक समाज) को आत्महत्या का कारण माना गया है। उसी प्रकार अपने धर्म के सिद्धांत में श्री दुर्खीम का अन्तिम निष्कर्ष यह है कि 'समाज ही वास्तविक देवता है'(Society is the real god) एवं 'स्वर्ग का साम्राज्य एक महिमान्वित समाज ही है'(The Kingdom of Heaven)। इस प्रकार श्री दुर्खीम ने अपने सभी सिद्धांतों में समाज या समूह के महत्व को दर्शाने का प्रयास किया हैं।

सर्व श्री स्पेन्सर, समनर आदि के बाद समाजशास्त्रीय सिद्धांत के क्षेत्र में संघर्ष के सिद्धांत (Conflict Theory) को अत्यधिक बल देने वाले विचारकों में श्री कार्ल मार्क्स (1818-1883) का नाम उल्लेखनीय हैं। उनके द्वारा प्रस्तुत द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का सिद्धांत (Theory of Dialectical materialism) तथा वर्ग संघर्ष का सिद्धांत (Theory of class struggle) इस सन्दर्भ में विशेष रुप से उल्लेखनीय हैं।

श्री मार्क्स के अनुसार समाज दो महान् वर्ग-शोषक और शोषित- में विभाजित रहता है और इनके बीच संघर्ष के फलस्वरुप ही एक नए युग का उदय होता हैं। उसी प्रकार सामाजिक परिर्वतन के प्रौद्योगिकीय निर्णायकवादी सिद्धांतों (Technoligical Deterministic Theories of social changes) में श्री कार्ल मार्क्स एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

20 वीं शताब्दी के समाजशास्त्रीय सिद्धांत के क्षेत्र में सामाजिक सिद्धांतों को लाने का श्रेय श्री चार्ल्स कूले (1864-1929) को ही हैं। अपने समाजीकरण के सिद्धांत (Theory of Socialization) को प्रस्तुत करते हुए श्री कूले ने दो अत्यन्त महत्वपूर्ण अवधारणाओं 'प्राथमिक समूह' (Primary Groups) तथा 'स्वयं का आईना'(Looking-glass self) को विकसित किया हैं। अपनी प्रख्यात पुस्तकों Human Nature and the social order (1902) Social Organization (1909) ,oa Social process (1918) में श्री कूले ने जिन विचारों को प्रस्तुत किया था उनमें से अधिकांश विचारों के आधार पर वर्तमान समय के अनेक सिद्धांतों का विकास हुआ हैं।

इसके बाद समाजशास्त्रीय सिद्धांत को एक बहुत बड़ी प्रेरणा इस क्षेत्र में श्री थॉर्सटीन वेब्लन (1857-1929) के प्रवेश से मिली। आपकी प्रथम पुस्तक The Theory of the Leisure class ने समाजशास्त्रीय जगत् में एक आलीड़न की सृष्टि की। अपने इस सिद्धांत में श्री वेब्लन ने समाज के उस भाग को जिसका कि व्यक्तिगत सम्पत्ति की संस्था तथा उत्पादन के साधनों से सम्बन्धित संस्था पर एकाधिकार होता है- विलासी वर्ग (Leisure Class) कहा है। इस वर्ग के सदस्य अनुत्पादक आलसी तथा विलासप्रिय व्यक्ति होते है एवं उनमें दृष्टि आकर्षक उपभोग के साथ-साथ दृष्टि-आकर्षक विलासिता (Conspicuous Consumption and conspicuous leisure) की प्रवृति होती हैं। श्री वेब्सन द्वारा प्रस्तुत अन्य सिद्धांतों में शिल्प कौशल की मूलप्रवृति का सिद्धांत (Theory of the Instinct

of Workmanship) वेब्लन के नियम (Veblenian Canons) तथा सामाजिक परिवर्तन का सिद्धांत विशेष रुप से उल्लेखनीय हैं।

जब-जब समाजशास्त्रीय सिद्धांत के विकास का इतिहास लिखा जाएगा, तब-तब उनमें इटालियन सामाजिक सिद्धांतकार श्री बिलफ्रेडो परेटो (1848-1923) के नाम को भी सम्मानित स्थान अवश्य ही मिलता रहेगा। आपने अपने 'तार्किक प्रयोगात्मक समाजशास्त्र' (Logico-experimental sociology) को अनेक उपयोगी सिद्धांतों से समृद्ध करने का प्रयास किया था। तर्क संगत व अतर्कसंगत क्रियाओं की अवधारणा (The Concept of logical and non-logical actions) को विकसित करते हुए उन्होने जिस क्रिया- सिद्धांत (Action Theory) का आधार तैयार किया।

वह बाद में विकसित होने वाले अनेक क्रिया-सिद्धांतों, जैसे श्री टालकॉट पारसन्स द्वारा प्रतिपादित किया सिद्धांत को अत्यधिक प्रभावित किया। उसी प्रकार श्री परेटो ने विशिष्ट चालक व भ्रान्ततर्क (Residues and Derivations) की अवधारणाओं को प्रस्तुत करते हुए मानव की विवेकहीनता (Irrationality of man) को स्पष्ट किया हैं। इसके अतिरिक्त 'अभिजातवर्ग के परिभ्रमण के सिद्धांत' में श्री परेटो इस निष्कर्ष पर पहुँचें है कि 'इतिहास कुलीनतन्त्रों का कब्रिस्तान हैं।' (History is a Grabeyard in Aristocracis)।

समाजशास्त्रीय सिद्धान्त के विकास में एक महत्वपूर्ण कड़ी जर्मन राजनीतिक अर्थशास्त्री एवं समाजशास्त्री श्री मैक्स बेबर (1864-1920) द्वारा प्रस्तुत सिद्धांत हैं। आपकी प्रख्यात रचना The Protespant Ethic and spirit of Capitalism ने उस आधार को प्रस्तुत किया जिस पर कि समाजशास्त्र की एक विशेष शाखा धर्म का समाजशास्त्र (Sociology of Religion) पनप सका। विश्व के छः महान धर्मों का अध्ययन करके धार्मिक आचार और आर्थिक व्यवस्था के बीच पाए जाने वाले सदस्यों के विषय में श्री मैक्स बेबर जिन निष्कर्षों पर पहुँचें हैं उनके पीछे, श्री पारसन्स के अनुसार अध्ययन -पद्धति सम्बन्धी गहरी अनार्दृष्टि (Insight) हैं। उसी

प्रकार आप द्वारा प्रस्तुत सामाजिक क्रिया का सिद्धांत (Social Action Theory) का भी आधुनिक समाजशास्त्रीय सिद्धांत के विकास में अनूठा योगदान है । श्री पारसन्स द्वारा प्रस्तुत क्रिया-सिद्धांत भी श्री मैक्स बेबर के इस सिद्धांत से स्पष्टतः प्रभावित प्रतीत होता है।

इसके बाद सन् 1917 आते-आतें समाजशास्त्रीय सिद्धांत के विकास को एक बहुत ही नया मोड़ मिला जबकि प्रख्यात समाजशास्त्री श्री विलियम थॉमस (1863-1947) ने प्रो० फ्लोरियन जैनेनिकी (Florian Zaniecki) के साथ मिलकर अपना गौरव-ग्रन्थ The Polish Peasant in Europe and America को प्रकाशित किया । श्रीमती मार्गरिट विलसम वाइ्न (MargaretWilson Vine)ने उनके विषय में लिखा है कि सिद्धांतकारों में श्री थॉमस का स्थान वास्तव में अनूठा हैं । इनका अध्ययन क्षेत्र इतना विस्तृत था कि आजकल के केवल कुछ समाजशास्त्री ही उनकी सम्पूर्ण कृति से परिचित हैं । 'चार इच्छाएं (Four wishes), सामाजिक विघटन'(Social Disorganization) एवं 'परिस्थिति की परिभाषा (Definition of the Situation) आदि से सम्बन्धित उनकी अवधारणाएं वास्तव में समाजशास्त्रीय साहित्य की सम्पदाएं हैं । आपने मानव-व्यवहार की परिस्थितिगत दृष्टिकोण (Situational Approach) से देखा एवं समझा हैं।

समकालीन अमेरिकन समाजशास्त्र के क्षेत्र में श्री पिटिरिम सोरोकिन (1889-1971) के प्रवेश करने से समाजशास्त्रीय सिद्धांतों को नया आधार मिला। आपने अपनी प्रख्यात पुस्तक Social and cultural dynamics (1927) में सामाजिक परिवर्तन के एक नए सिद्धांत की प्रतिपादित किया एवं श्री हैम स्पीयर के शब्दों में, इस निष्कर्ष पर पहुचें कि ऐतिहासिक दृष्टि से देखने पर यह स्पष्ट पता चलता है कि कोई प्रगति नहीं हुई हैं । न कोई चक्रीय परिवर्तन हुआ हैं । जो कुछ भी हुआ है। जो (Fluctuation) वह केवल मात्रा संस्कृति के बुनियादी स्वरुपों का उतार-चढ़ाव

मात्रा हैं। सामाजिक क्रान्ति के सम्बन्ध में श्री सोरोकिन का गहन अध्ययन आपकी पुस्तक The Sociology of Revolution (1925) में मिलता हैं।

इसके बाद में श्री टालकॉट पारसन्स द्वारा पुस्तक सामाजिक क्रिया का सिद्धांत (Theory of Social Action), श्री हाइमैन द्वारा प्रस्तुत सन्दर्भ-समूह व्यवहार से सम्बन्धित सिद्धांत (Theory of Reference Group Behaviour),श्री मर्टन द्वारा।

प्रस्तुत संरचानात्मक प्रकार्यात्मक विश्लेषण (Structural-Functional Analysis) तथा सामाजिक सरंचना व विसंगति (Social Structure and Anomie) आदि से सम्बन्धित अध्ययन समाजशास्त्री सिद्धांतों के विकास में नई प्रवृति व प्रगति के परिचायक हैं।

वोर्गडिस ने सामाजिक विचार को परिभाषित करते हुए लिखा है कि-" सामाजिक विचार मानव इतिहास में यहां-वहां एक या कुछ व्यक्तियों द्वारा सामाजिक समस्याओं के सम्बन्ध में सोचना या विचारना है"।[1] तो दूसरी ओर मुखर्जी आर0एन (1960: 81) ने सामाजिक विचार अथवा विचार धारा को मानवीय विचार धारा की वह शाखा बताया है जो कि अपनी सामाजिक और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर मानवीय अन्त सम्बन्धों तथा अतः क्रियाओं से विशेष रूप सम्बन्धित हैं।"[2]

डॉ0 अम्बेडकर के सामाजिक विचारो का अध्ययन करने से पूर्व सामाजिक विचारों की प्रकृति व विशेषताओं पर प्रकाश डालना अति आवश्यक हैं। उपरोक्त परिभाषाओं से ही सामाजिक विचार की प्रकृति स्पष्ट है ,फिर भी वह उसकी निम्न लिखित विशेषताओं से और भी स्पष्ट हो जायेगी :-

1. बोर्गडिस,इ0एस0 :
2. मुखर्जी आर0एन (1960: 81)

1. सामाजिक विचार की उत्पत्ति सामाजिक समस्याओं के निराकरण करने की आवश्यकता अनुभव करने के फलस्वरुप होती हैं । मानव की यह स्वाभाविक-वृत्ति है कि जब तक उसके सामने कोई समस्या नहीं आती तब तक उस समस्या के सम्बन्ध में न तो वह विचार करता है और न ही इस तरह का विचार करने की कोई आवश्कयता ही उसे अनुभव होती है, परन्तु जैसे ही उस पर कोई आपत्ति आ पड़ती है वह तुरन्त ही उसके निवारणार्थ उपाय खोजने लगता है । मनुष्य के जीवन की कठिनाइयों को राहत मिलती है, और साथ ही अपने अन्य साथियों के साथ उसकी अनुकूलन की प्रक्रिया भी सरल हो जाती हैं।
2. सामाजिक विचार प्रत्येक समाज में पृथक-पृथक समय में भिन्न-भिन्न होते हैं । प्रत्येक समाज की सामाजिक, ऐंतिहासिक तथा सांस्कृतिक पृष्ठभूमि अलग-अलग होती है और वह भी समय के बदलने के साथ साथ बदलती हैं । अतः इन परिवर्तनों के साथ-साथ सामाजिक सम्बन्धों और समस्याओं दोनों की ही प्रकृति और स्वरूप में परिवर्तन हो जाता है । जिसके फलतः सामाजिक विचार भी बदल जाते हैं।
3. सामाजिक विचार का सम्पर्क केवल सामाजिक समस्याओं से ही नहीं अपितु सामाजिक व्यवस्था और संगठन, सामाजिक नियोजक, सामाजिक प्रगति या सामाजिक जीवन के अन्य किसी पक्ष से भी हो सकता है । साधारण तौर पर जिन पर उसके दृष्टिकोण से, ध्यान देना आवश्यक हैं । उनमें से कुछ कारण निम्न हैं-

    (अ) सामाजिक जीवन और प्रक्रियाओं को समझने के लिए

    (ब) दूसरो के साथ अपना सम्बन्ध संतुलित करने के लिए

    (स) सामाजिक समस्याओं का हल को ढूँढ़ने के लिए तथा सामाजिक नियोजन में हाथ बटाने के लिए तथा

(द) अपनी स्वार्थसिद्ध हेतु दूसरे पर नियंत्रण पाने के लिए आदि।

4. प्रत्येंक विचार किसी न किसी रुप में सामाजिक अनुभवों से सम्बन्धित या उन पर आधारित होता है। यदि डॉ0 अम्बेडकर की विचार धारा हिन्दू सामाजिक व्यवस्था के विरुद्ध थी तो उसका प्रमुख कारण उनके जीवन के अपने अनुभव ही थें। अपनी जीवन अवधि में उन्होने बार-बार अनुभव किया कि दलितों की अत्यन्त महत्वपूर्ण आवश्कयताओं के प्रति हिन्दुओं (सवर्णो) का दृष्टिकोण अत्यन्त निर्दयता पूर्ण है और दलितों का खून चूस-चूस कर अपनी समवृद्धि की लालसा उनकी इस तेजी से बढ़ती जा रही हैं कि उनकी वर्ण व्यवस्था का पूर्णतया विनाश न होने पर अस्पृश्यों की दशा सुधर नहीं सकती।

इस प्रकार डॉ0 अम्बेडकर के सामाजिक अवलोकनों तथा अनुभवों ने उन्हें ब्राह्मणवाद का कट्टर विरोधी बनाया तभी तो पं0 जवाहर लाल नेहरु ने कहा, "हिन्दू धर्म के उत्पीड़न के खिलाफ डॉ0 अम्बेडकर विद्रोह के प्रतीक के रुप में याद किए जायेगें। उन्होने उन सबके खिलाफ विद्रोह किया जिसके विरुद्ध हम सबको बगावत करनी चाहिए"।[1]

5. सामाजिक विचार मानव की विकासवादी प्रवृति के परिचायक हैं- मानव की प्रवृति स्वाभाविक रुप से विकासवादी हैं। इसी विकासवादी प्रवृत्ति से प्रेरित होकर वह सदैव ही यह प्रयत्न करता रहा है कि किस भांति अपनी वर्तमान सामाजिक व्यवस्था को सुधार कर नवीन और उच्चत्तर सामाजिक व्यवस्था को स्थापित करें। इस हेतु अपने ऐतिहासिक तथा सामाजिक अनुभवों के आधार पर वर्तमान परिस्थितियों का चिन्तन व मनन अध्ययन तथा विश्लेषण करना पड़ता हैं। यही चिन्तन,मनन,अध्ययन तथा विश्लेषण सामाजिक विचार की आधारशिला बनाता चला जाता हैं।

1. पंडित जवाहर लाल नेहरु 1956 : डा. अवसान, 6 दिसम्बर 1956

उस कल्पना का निर्माण कर सकते है। इन अनुसंधान कार्यों के माध्यम से विभिन्न विचारों की सत्यता की परख हो सकती हैं।

4. सामाजिक विचारधारा सामाजिक पृष्ठभूमि या अवस्थाओ को समझने में मदद करता है। हम यह जानते है कि एक निश्चित सामाजिक विचार एक विशिष्ट सामाजिक परिस्थिति की ही उपज होता हैं। अगर मार्क्स अपने जमाने में पूंजीवाद का अनियमित विकास एवं पूंजीपतियों द्वारा श्रमिको के घोर शोषण को स्वयं न देखते तथा उनकी विचारधारा में श्रमिक वर्ग के लिए इतनी सहानुभूति एवं पूंजीपति वर्ग के प्रति असीमित घृणा का भाव कदापि न झलकता। अतः सामाजिक विचारों के अध्ययन से उस समय विशेष की सामाजिक परिस्थितियों को समझना सरल हो जाता हैं।

5. सामाजिक विचार मानवीय विचार धारा में होने वाले क्रम को समझने में तथा तुलनात्मक अध्ययन करने में भी सहायक सिद्ध होता हैं। समय बदलने एवं मानव उपलब्धियों कें विकास के साथ-साथ विचारको के विचार भी परिवर्तन होता रहता है। इस परिवर्तन के क्रम को सामाजिक विचारों के अध्ययन से समझा जा सकता हैं। सामाजिक विचारों की सार्थकता इसी बात पर निर्भर है कि वह हमे यह बता सके कि पहले हम क्या और किस रुप में सोचते थे और आज किस रुप में।

<u>सामाजिक विचारों में आधुनिक प्रवृत्तियाँः-</u>

क्योंकि समाजशास्त्र एक विज्ञान हैं। अतः सामाजिक विचार विज्ञान की श्रेणी में आते हैं हम यह जानते है कि वैज्ञानिक सिद्धांत मूलतः अनुभाविक या प्रयोग सिद्ध एवं व्यवहारिक होते हैं। इसी समाजशास्त्रीय क्षेत्र में आधुनिक प्रवृत्ति यह है कि इसके विचारक आज पहले जमाने की भाँति तार्किक या दार्शनिक आधारों पर नहीं अपितु निरीक्षण परीक्षण प्रयोग व वर्गीकरण की अध्ययन पद्धति को अपनाते हुए वास्तविक, पर्याप्त व निर्भर योग्य तथ्यों के आधार पर अनुभाविक या प्रयोगसिद्ध सामान्यीकरण के द्वारा ऐसे सिद्धांतों के प्रतिपादित करने में रुचि ले रहे हैं

कि घटनाओं के कार्य-कारण सम्बन्ध को तर्कसंगत रुप में स्पष्ट कर सकें। प्रो0 डोन मार्टिनडेल ने उचित ही कहा है कि, "अगर एक विज्ञान कभी अपने लक्ष्यों की पूर्ति पूर्णतः कर लेता है तो वह विचारों के एक ऐसे समूह का प्रतिनिधित्व करता है जोकि एक तर्कसंगत रुप में आवद्ध व्यवस्था के अर्न्तगत पनपता है एवं जो उन तथ्यों की सम्पूर्ण व्याख्या करता हैं। जिनमे कि वह सम्बन्धित हैं। इस प्रकार एक वैज्ञानिक सिद्धांत, जिसमें कि समाजशास्त्रीय विचार भी सम्मिलित हैं, तार्किक एवं आनुभाविक आज झुकाव इन्हीं शर्तो का पूरा करने की दिशा में हैं "[1]।

प्रो0 डोन मार्टिन डेन ने इस क्षेत्र में एक अन्य आधुनिक प्रवृति का भी उल्लेख किया है और वह है, विभिन्न विचारों का समन्वय या शब्दों, अवधारणाओं तथा आनुभाविक सामान्यीकरण के सामान्य भंडार को सभी सम्प्रदायों के सदस्य अधिकाधिक व्यवहार में ला रहे हैं। वास्तव में एक क्षेत्र के प्रतिस्थापित तथ्यों की व्याख्या करने की योग्यता एक विचार को स्वीकार योग्य बनाने की दिशा में पहला कदम हैं।"[2]

उदाहरण के लिए व्यक्तित्व की समस्या को संघर्ष विचारकों ने उभारा, स्वरुपात्मक सम्प्रदाय ने और अधिक गम्भीरता से परखा एवं सामाजिक व्यवहारवाद के प्रतीकात्मक-अन्तक्रियावादी एवं सामाजिक क्रियावादी विचारकों द्वारा उसका पूर्ण अध्ययन किया गया और प्रकार्यवादियों ने इसी समस्या का जांच कार्य फिर से प्रारम्भ कर दिया।"[3] इसी प्रकार श्री पारसन्स के क्रिया 'विचार' में सर्व श्री दुर्खीम, पेरोटो, मैक्सबेबर के क्रिया सम्बन्धी विचार का एक अपूर्व समन्वय देखने को मिलता हैं।

सामाजिक विचार के क्षेत्र में आधुनिक प्रवृतियां का प्रतिनिधत्व करने वाले विचारकों में श्री मर्टन का नाम विशेष रुप से उल्लेखनीय हैं। उनकी प्रख्यात कृति

1. प्रो डोन मार्टिन डेन : औफसिट पी. 138
2. प्रो डोन मार्टिन डेन : औफसिट पी. 541
3. प्रो डोन मार्टिन डेन एविड पृष्ठ, 541

का अध्ययन करने पर कुछ अन्य आधुनिक प्रवृतियों का भी पता चलता है। उनमें प्रथम यह है कि आज सामाजिक व्यवस्थाओं से सम्बन्धित सामान्य सिद्धांतों की अपेक्षा आधुनिक विचारकों की रुचि, मध्य अभिसीमा के सामाजिक विचारों को प्रतिपादन करने की दिशा में बड़ती जा रही हैं। सर्वश्री ग्राउन्डनर, ब्लाउ, क्रोजियर आदि द्वारा नौकरशाही से सम्बन्धित, श्री रेमण्ड मैक द्वारा व्यवसायिक उपव्यवस्था से सम्बन्धित श्री पेल्सीग्रीन द्वारा गतिशीलता से सम्मार्न्धन मध्य-आर्य सीमा के विचारों का प्रतिपादन इस ओर अनेक आधुनिक विचारको के झुकाव के अच्छे प्रमाण हैं। श्री मर्टन ने लिखा है कि , "अगर आज हम मध्य अभिज्ञा के विचारो के बजाय सामाजिक व्यवस्था से सम्बन्धित केवल सामान्य विचारों को प्रतिपादित करने में ही अपना सम्पूर्ण ध्यान लगा दे, तो यह डर है कि इस 20 वीं शदी में भी हम भूतकाल की भाँति केवल ऐसे बृहत दार्शनिक व्यवस्थाओं को ही विकसित कर सकेगें। जिन में झुकाव शीलता, शिल्पकला सम्बन्धी चमक दमक एवं वैज्ञानिक वांझपन होगा"[1]। श्री मर्टन एक अन्य आधुनिक प्रवृति की ओर भी संकेत करते है और वह है सामाजिक विचारों का संकेतन। आपके शब्दों में "संकेतन अनुसंधान के फलदायक तरीकों एवं मौलिक जांच परिणामों की क्रमबद्ध तथा सुसंगत व्यवस्था हैं। इस प्रक्रिया द्वारा भूतकाल के अनुसंधान में जो कुछ निर्विवाद है उसका समीकरण एवं संगठन सम्भव होता है, न कि शोध के नये दॉव पेचों की खोज"।[1] आज इसीलिए सामाजिक सिद्धांतकार अपने विचारों में बड़े-बड़े वर्णात्मक मान्यताओं, मौलिक तर्क वाक्यों और जांच परिणामों को कुछ व्यवस्थित व सुसंहत प्रतीकों या संकेतो द्वारा व्यक्त करते हैं। ताकि शब्दों के मायाजाल में फंसकर वास्तविक निष्कर्ष कहीं अस्पष्ट न हो जायें। स्पष्ट है कि आधुनिक समय में सामाजिक विचारों को पहले से अधिक तकनीकी स्तर पर लाने की प्रवृति बड़ रही हैं।

---

1. मर्टन, आर. के : पृष्ठ-51

अतः स्पष्ट है कि आधुनिक समय में अधिक वैज्ञानिक, प्रयोग सिद्ध, व्यवस्थित सुसंहत एवं समन्वत मध्य अभिसीमा वाले सामाजिक विचारो को प्रतिपादित करने की प्रवृति उत्तरोत्तर बड़ती जा रही हैं। फिर भी इस दिशा में अब भी बहुत आगे बड़ना शेष हैं। सम्भवतः भविष्य में सामाजिक विचारों की इस प्रगति का पथ प्रसस्त हो। प्रो0 डोन मार्टिन डेल ने ठीक ही कहा है कि ,"सामाजिक विचार आज भी एक न्यूटन या मैक्सबेल को जन्म दे सकता है जो संयोग से उत्पन्न सामग्री को ग्रहण करेगा, धैर्यपूर्ण परिश्रम से कार्य करेगा, उन्हें स्फटिक की भाँति अपने तक से स्पष्ट करेगा एवं अपने प्यार की आग में उन्हें पिघला कर एकीभूत करेगा।"[2]

प्रस्तुत शोध अध्ययन में शोधविषयक अवधारणा यहां यह है कि डा0 अम्बेडकर ने अपने जीवन में हिन्दू समाज में सर्वजनों के उत्थान प्रगति तथा विकास में सामाजिक व्यवस्था सम्बन्धी जिन समस्याओं का अवलोकन किया, अनुभव किया उनका अध्ययन किया और उस पर समाधान के हल प्रस्तुत किए विशेषकर सामाजिक आर्थिक राजनैतिक एवं धार्मिक परिप्रेक्ष्य में उनमें विचारों का अध्ययन करने से सम्बन्धित हैं। विशेष कर-सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं धार्मिक परिप्रेक्ष्य में।

(4) अध्ययन के उद्देश्य :

यू तो प्रत्येंक शोध अध्ययन कतिपय उद्देश्य की पूर्ति तथा प्राप्ति के लिए सम्पादित किया जाता है, परन्तु प्रस्तुत शोध अध्ययन का मूल उद्देश्य डा0 भीमराव अम्बेडकर के सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक एवं धार्मिक विचारों का विशेष रुप से अध्ययन करना था, साथ ही निम्न गौण उद्देश्य भी अध्ययनार्थ प्रस्तावित थें :-

1. डॉ0 भीमराव अम्बेडकर का बाल्यकाल, प्रारम्भिक एवं उच्च शिक्षा, शिक्षा काल में कठिनाईयां तथा विभिन्न व्यक्तियों से सम्पर्क और उनका प्रभाव तथा व्यक्तित्व का अध्ययन करना।
2. डॉ0 अम्बेडकर के सामाजिक विचारों की समीक्षा करना।
3. डॉ0 अम्बेडकर के आर्थिक विचारों का अध्ययन करना।
4. डॉ0 अम्बेडकर की राजनीतिक मान्यताओं का उल्लेख करना।
5. डॉ0 अम्बेडकर के धार्मिक विचारों की समीक्षा करना।

शोध पद्धति

मानव विश्व का सर्वाधिक बौद्धिक, चिन्तनशील एवं जिज्ञासु प्राणी है उसकी इसी जिज्ञासु प्रवृत्ति के कारण वह समाज में व्याप्त सामाजिक समस्याओं एवं उनके इसी निराकरण के लिये सजग प्रहरी बन कर समाधान खोजने के लिये निरन्तर प्रयत्नशील रहता हैं। यहाँ तक कि समस्या से सम्बन्धित ज्ञान का स्पष्टीकरण करना, नवीन ज्ञान की खोज करना तथा उसका सत्यापन करना, उसके लिये एक जटिल समस्या होती हैं। समस्या से सम्बन्धित पक्षों के विषय में यथार्थ ज्ञान किन-किन तरीकों तथा प्रविधियों द्वारा किया जायें। ताकि अनुभव सिद्ध तथ्यों को ज्ञात करके निरीक्षण तथा सत्यापन के आधार पर मानव व्यवहार से सम्बन्धित क्रियाशील अन्तनिहित प्रक्रियाओं की जानकारी प्राप्त की जा सके एवं विभिन्न सामाजिक प्रधटनाओं एवं नवीन तथ्यों के बीच पाये जाने वाले प्रक्रियात्मक सम्बन्धों की खोज की जा सकें। इसके लिये उसे यह सोचना पड़ता है कि ऐसा करने के लिये शोध अध्ययन किस प्रकार किया जाये? ताकि संग्रहीत सूचनाऐं विश्वसनीय, तर्कसंगत तथा वस्तुनिष्ठ रुप में प्राप्त हो सके क्योंकि, "

किसी भी अध्ययन विषय का विकास उसकी उचित अध्ययन विधियों के विकास पर निर्भर करता है, न कि विषय सामग्री पर''[1] इसलिये सामाजिक अध्ययन पद्धतियों का उल्लेख करते हुए सर्वश्री सैलटिज जहोदा तथा कुक ने इन्हें बौद्धिक (नोरमेटिव) तथा व्यवहारिक (एप्लाइड) दो भागों में वर्गीकृत किया हैं।

सामान्य शब्दों में बौद्धिक उद्देश्य को सैद्धान्तिक ज्ञान और व्यवहारिक उद्देश्य को उपयोगितावादी कहा जा सकता है। इनका स्पष्टीकरण करते हुये प्रोफेसर कपिल ने लिखा है कि बौद्धिक शोध के अन्तर्गत सामाजिक जीवन, सामाजिक समस्याओं तथा प्रघटनाओं के सन्दर्भ में मौलिक सिद्धान्तों व नियमों की गणवेषणा की जाती है, जो इस ओर संकेत करती है कि एक अनुसंधानकर्ता को क्या करना चाहिये? जबकि व्यवहारिक शोध के अन्तर्गत मानव व्यवहार से सम्बन्धित समस्या का गहन अध्ययन करके उसका समाधान प्रस्तुत किया जाता हैं, जिसमें व्यवहारिक सुझाव दिये जा सकें। ''स्पटतः व्यवहारिक शोध के अन्तर्गत किन्हीं उद्देश्यों की पूर्ति के लिये अतिरिक्त (नवीन) ज्ञान की प्राप्ति की जाती है।''

परन्तु सर्वश्री करलिंगर एफ.एन.(1964:27) के अनुसार अनुसंधान कार्य प्रायः-

निम्नलिखित तीन श्रेणियों में विभक्त किया जा सकते हैं :-

1. विशुद्ध मौलिक अनुसंधान, 2. क्रियात्मक अनुसंधान,

3. व्यवहारिक अनुसंधान

जिस प्रकार विधाता की सर्वोत्तम सृष्टि मानव हैं, उसी प्रकार मानव की सर्वोत्तम सृष्टि मानव समाज व उसकी विचित्र धटनाऐं हैं। यह मानव बुद्धिजीवी है, जिज्ञासा से भरपूर ज्ञानपिपासु हैं इसीलिये यह सच ही कहा गया है कि मानव केवल प्रकृति का ही नहीं स्वयं अपना भी अध्ययन करता हैं। आकाश, धरती, पेड़-पौधे, पशु-पक्षी, नदी और समुद्र का अध्ययन उसके सम्मुख अनेक

---

1. करलिंगर एफ0एनु0 दि फाउण्डेशन ऑफ विहेवियरल रिसर्च, रिनेहार्ट एण्ड न्सिटन प्रेस हाल्ट न्यूयार्क, 1964,पृष्ठ 4

आश्चर्यजनक अनुभवों को उपस्थित करता है और उसके ज्ञान-विज्ञान के भण्डार को भरता रहता है, परन्तु स्वयं अपना, अपने समाज का, अपने व्यवहारों का या फिर सामाजिक धटनाओं का अध्ययन मानव के लिये और भी रोचक, अत्यन्त आश्चर्यजनक अनुभवों से भरपूर और अनेक अनोखेपन से समृद्ध होता हैं। पर यह अध्ययन मनमाने ढंग से नहीं अपितु निरीक्षण, परीक्षण व प्रयोग पर आधारित वैज्ञानिक पद्धति के द्वारा किये जाने पर ही सत्य को ढूँढा जा सकता हैं। सामाजिक धटनाओं के सम्बन्ध में सत्य की खोज ही सामाजिक शोध हैं।

"मानव क्रिया के सभी क्षेत्रों में शोध का अर्थ ज्ञान तथा बोध की निरन्तर खोज है परन्तु वही ज्ञान व बोध वैज्ञानिक होते है जिनमें वैज्ञानिक शोध के दो आवश्यक तत्व अवश्य विद्यमान हों- इनमें से प्रथम तत्व है निरीक्षण-इसके द्वारा प्रत्यक्ष रुप से देखकर हम कतिपय तथ्यों के विषय में ज्ञान प्राप्त करते हैं। दूसरा तत्व है- कारण दर्शाना-जिसके द्वारा इन तथ्यों का अर्थ, उनका पारस्परिक सम्बन्ध एवं विद्यमान वैज्ञानिक ज्ञान से उनका सम्बन्ध निश्चित किया जाता हैं।"[1] यही दोनों तत्व आदि सामाजिक तथ्यों के सम्बन्ध में किये गये अनुसंधान में विद्यमान हैं तो उसे सामाजिक शोध कहते हैं।

इस दृष्टि सें सामाजिक शोध किसी सामाजिक समस्या को सुलझाने या किसी उपकल्पना की परीक्षा करने, नवीन घटनाओं को खोजने या कतिपय घटनाओं के बीच नवीन सम्बन्धों को ढूँढने उद्देश्य से किसी यथार्थ विधि का उपयोग हैं। यह यथार्थ विधि इस प्रकार की होनी चाहिये जो कि वैज्ञानिक शर्तो को पूरा करती हो तथा जिसकी सहायता से अनुसंधान किये गये विषय का सत्यापन सम्भव हो। दूसरे शब्दों में सामाजिक धटनाओं या विद्यमान सिद्धान्तों के

1.सिंह, एस.डी. 1980 वैज्ञानिक सामाजिक अनुस्थान अवाम सर्वेक्शन, के मूल तदवा कमल प्रकाशन, इन्दौर एम0पी0 पृष्ठ 50

सम्बन्ध में नवीन ज्ञान की प्राप्ति के लिये प्रयोग में लाई गई वैज्ञानिक विधि सामाजिक शोध हैं।

अतः स्पष्ट हैकि सामाजिक शोध एवं वैज्ञानिक नियमानुसार, उस मानवीय क्रियाकलाप की ओर संकेत करता है जिसके द्वारा सामाजिक जीवन में हमारे ज्ञान की वृद्धि सम्भव होती है तथा अनेक धटनाओं व उनके कारणों में पाये जाने वाले पारस्परिक सम्बन्ध के विषय में हम नवीन जानकारी प्राप्त करते हैं।

सामाजिक शोध के बारे में सबसे उल्लेखनीय बात यह है कि ज्ञान प्राप्ति की वह विधि है जो कि निरीक्षण, वर्गीकरण, प्रयोग तथा निष्कर्षीकरण की सामान्य वैज्ञानिक पद्धति पर आधारित होती है यदि उसी पद्धति के द्वारा न केवल अज्ञात सामाजिक धटनाओं को खोजा जा सकता है परन्तु ज्ञात सामाजिक धटनाओं की भी विवेचना या विश्लेषण किया जाता है।

इस अर्थ में सामाजिक शोध "एक वैज्ञानिक योजना है जिसका कि उद्देश्य तार्किक तथा क्रमबद्ध पद्धतियों के द्वारा नवीन तथ्यों का अन्वेषण अथवा पुराने तथ्यों की पुनः परीक्षा एवं उनमें पाये जाने वाले अनुक्रमों, अन्तः सम्बन्धों, कारण सहित व्याख्याओं तथा उनको संचालित करने वाले स्वाभाविक नियमों का विश्लेषण करना है।"[1] इसीलिये श्री मौसर (1961:3) ने ठीक ही कहा है कि, "सामाजिक घटनाओं व समस्याओं के सम्बन्ध में नवीन ज्ञान की प्राप्ति के लिये किये गये व्यवस्थित अनुसंधान को हम सामाजिक शोध कहते हैं।"[2]

सामाजिक अनुसंधान कोई सरल व सीधा कार्य नहीं है और इसलिये प्रत्येक व्यक्ति इसे कर भी नहीं सकता। केवल कुछ पुस्तकीय ज्ञान ही शोध कार्य के लिये पर्याप्त नहीं है। इसके लिये अन्य अनेक बाहय तथा आन्तरिक गुणों का होना आवश्यक हैं। इसका कारण भी स्पष्ट है। सामाजिक शोध सामाजिक घटनाओं से सम्बन्धित होता है और सामाजिक घटनाएें, अमूर्त, परिवर्तनशील, जटिल तथा

---

1. मुखर्जी,आर.एन.(2001), अष्टम संस्करण शोध व सांख्यिकी, मातृ आशीष तिलक कालोनी, सुभाष नगर, बरेली,

व्यक्ति प्रधान होती है। इसीलिये इनका अध्ययन प्राकृतिक घटनाओं के अध्ययन से कहीं अधिक कठिन होता हैं। सबसे बड़ी बात है कि सामाजिक घटनाओं के अध्ययन का तात्पर्य वास्तव में मानव द्वारा मानव के विषय में अध्ययन है जैसा कि इस शोध का विषय है- "डॉ0 अम्बेडकर के सामाजिक विचारों का एक समाजशास्त्रीय अध्ययन।"

"भारत में सामाजिक शोध का विचार वास्तव में एक हाल का विषय हैं। इससे पूर्व कुछ सरकारी प्रयत्नों से किए गये शोध कार्य ही प्रमुख थें। वास्तविकता तो यह है कि स्वयं समाजशास्त्र का आगमन इस देश में काफी देर से हुआ है और उसी कारण सामाजिक शोध के प्रति लोगों का झुकाव भी पहले अत्याधिक सीमित था। अर्थशास्त्री श्रमिक तथा ग्रामवासियों के जीवन से सम्बन्धित कुछ शोध कार्य अवश्य करते थे, पर अविकसित अध्ययन पद्धति एवं प्रविधियां उनके शोध कार्यो को यथार्थ रुप में वैज्ञानिक बनाने में सहायक नहीं होती थी।"[1]

शोध विधिः-

सामाजिक शोध के आशय पर अनेक समाज शास्त्रीयों ने प्रकाश डाला है उसमें से कुछ महत्वपूर्ण मनतव्य इस प्रकार हैं। यंग, पी.वी. (1960:44) के अनुसार, "सामाजिक शोध एक वैज्ञानिक योजना है जिसका कि उद्देश्य तार्किक तथा क्रमबद्ध पद्धतियों के द्वारा नवीन तथ्यों का अन्वेषण अथवा पुराने तथ्यों को पुनः परीक्षा एवं उनमें पाये जाने वाले अनुक्रमों, अन्तः सम्बन्धों, कारण सहित व्याख्याओं तथा उनके संचालित करने वाले स्वाभाविक नियमों का विश्लेषण करना है।"[2] तो दूसरी ओर श्री मोसर,सी.ए. (1961:3) ने लिखा है कि सामाजिक घटनाओं व समस्याओं के सम्बन्ध में नवीन ज्ञान की प्राप्ति के लिए

---

1. यंग पी0वी0 (1960): साईन्टीफिक सोसल सर्वे एण्ड रिसर्च, एसिया पवलिसिंग हाऊस, बोम्बे, पृष्ठ-44
2. यंग, पी0वी0 (1960:44): सोसल सर्वेएण्ड रिसर्च, एशिया पवलिसिंग हाऊस, बम्बई

किए गये व्यवस्थिति अनुसन्धान को हम सामाजिक शोध कहते हैं''[1]। लगभग इसी प्रकार की व्याख्या बोर्गाडिस ने अपनी पुस्तक समाजशास्त्र के पृष्ठ 543 पर इस प्रकार की हैं,'' एक साथ रहने वाले लोगों के जीवन में क्रियाशील अन्तर्निहित प्रक्रियाओं का अनुसन्धान ही सामाजिक शोध हैं।'' इस प्रकार यह स्पष्ट है कि सामाजिक शोध वह वैज्ञानिक विधि हैं जिसके द्वारा सामाजिक घटनाओं व समस्याओं के कारणों, अन्तःसम्बन्धों तथा उनमें अन्तर्निहित प्रक्रियाओं का अध्ययन, विश्लेषण व निरुपण किया जाता हैं।

सामाजिक शोध के उद्देश्यों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता हैं :-

(प) सैद्धातिक उद्देश्य :-

(अ) केवल सामाजिक शोध ही नहीं, सभी प्रकार के शोध मूल रुप से ज्ञान की वृद्धि में साधन होते हैं। इस दृष्टिकोण से सामाजिक शोध का सैद्धातिक उद्देश्य सामाजिक जीवन, धटनाओं, तथ्यों या समस्याओं के विषय में ज्ञान प्राप्त करना हैं।

(ब) सामाजिक शोध का दूसरा उद्देश्य विभिन्न समाजिक घटनाओं तथा तथ्यों में पाये जाने वाले प्रकार्यत्मिक सम्बन्धों को ढूँढ़ना हैं।

(स) सामाजिक शोध का तीसरा उद्देश्य उन स्वाभाविक नियमों को ढूँढ निकलना हैं जिनके द्वारा सामाजिक घटनाएं या जीवन निर्देशित व नियामित होता हैं।

(द) श्रीमती यंग के अनुसार सामाजिक शोध का एक उद्देश्य प्रयोगसिद्ध तथ्यों के आधार पर वैज्ञानिक अवधारणाओं का निर्माण करना भी हैं।

(ii) व्यवहारिक उद्देश्यः इसका तात्पर्य यह है कि सामाजिक शोध सामाजिक जीवन तथा विभिन्न घटनाओं के सम्बन्ध में हमें जो जानकारी प्रदान करता है उसका उपयोग हम अपने व्यवहारिक जीवन में भी कर सकते हैं।

1. मौसर, सी0ए0 (1961:3)सर्वेमेथड इन सोसल इन्वेस्टीगेशन, हेनरमेन लन्डन, पृष्ठ-3

(क) सामाजिक शोध से प्राप्त ज्ञान सामाजिक समस्याओं को हल करने में सहायता करता है। (ख) सामाजिक शोध से प्राप्त ज्ञान, सामाजिक तनाव को दूर करके सामाजिक संगठन को बनाये रखने में मदद करता हैं। (ग) सामाजिक शोध से प्राप्त ज्ञान सामाजिक योजनओं के बनाने में मदद कर सकता है। (घ) सामाजिक शोध से प्राप्त ज्ञान सामाजिक नियंत्रण में सहायक सिद्ध हो सकता हैं।

सामाजिक शोध के क्षेत्र के सम्बन्ध में और भी स्पष्ट ज्ञान इसके अध्ययन विषय की विवेचना से हो सकता है। अमेरिकन सोसलोजकिल सुसाइटी ने सामाजिक शोध के क्षेत्र के अन्तर्गत निम्नलिखित अध्ययन विषयों को सम्मिलित करने के पक्ष में राय दी हैः-

(1) मानव प्रकृति तथा व्यक्तित्व का अध्ययन

(2) जन समूह तथा सांस्कृतिक समूह का अध्ययन

(3) परिवार की प्रकृति, अन्तःनिहित नियम, संगठन व विघटन का अध्ययन

(4) सामाजिक संगठन तथा संस्थाओं का अध्ययन

(5) जन संख्या तथा प्रादेशिक समूहों का अध्ययन

(6) ग्रामीण समुदायों का अध्ययन

(7) सामूहिक व्यवहारों का अध्ययन, संघर्षो का अध्ययन

(8) सामाजिक समस्याओं, व्याधिकी तथा अनुकूलन का अध्ययन

(9) सिद्धान्त तथा पद्धतियों के नवीन सामाजिक नियमों की खोज

सामाजिक शोध का उद्देश्य सामाजिक घटनाओं का वैज्ञानिक अध्ययन करके उनके विषय में वास्तविक ज्ञान प्राप्त करना हैं। इस प्रकार का वैज्ञानिक अध्ययन मनमाने ढंग से नही किया जा सकता और न ही काल्पनिक घोड़ा दौड़ाकर अथवा दार्शनिक विचारों का सहारा लेकर किसी यथार्थ और प्रयोगसिद्ध निष्कर्ष तक पहुँचा जा सकता है। श्री अगस्त काम्टे का यह निश्चित मत था कि "वैज्ञानिक

अध्ययन में सट्टेबाजी का कोई स्थान नहीं होता। दूसरे शब्दों में आध्यात्मिक व दार्शनिक चिंतन द्वारा प्राप्त निष्कर्ष सत्य या काल्पनिक होना संयोग की बात है और उनके सत्य असत्य का निर्णय अगर असम्भव नहीं तो कठिन तो अवश्य ही हैं। कुछ भी हो वैज्ञानिक अध्ययन संयोग या अनुमान पर कदापि निर्भर नहीं हो सकता और न ही होना चाहियें। इसलिये निश्चित व व्यवस्थित अध्ययन प्रणालियों को अपनाता है। इन्हीं को शोध पद्धति कहते है और ये विधियां ही वैज्ञानिक अनुसंधान के आधार हैं। ये पद्धतियां आधारभूत रुप में सभी विज्ञानों में समान या एक जैसी होती है, केवल अध्ययन वस्तु की प्रकृति के अनुरुप इनके रुप या स्वरुप में कुछ आवश्यक परिवर्तन प्रत्येक विज्ञान में कर लिया जाता हैं। इस प्रकार हम कह सकते है कि पद्धति (Method) वह प्रणाली (Procedure) है जिसके अनुसार कार्य का संगठन, तथ्यों की विवेचना तथा निष्कर्षो का निर्धारण किया जाता हैं।

सामाजिक शोध मुख्यतः तीन प्रकार के हो सकते है :-

1.मौलिक या विशुद्ध शोधः-

इस प्रकार के सामाजिक शोध में, सामाजिक जीवन व घटनाओं के सम्बन्ध में मौलिक सिद्धान्तों व नियमों का अनुसन्धान किया जाता है, और इस अनुसन्धान का उद्देश्य नवीन ज्ञान की प्राप्ति न वृद्धि तथा पुराने ज्ञान की पुनः परीक्षा द्वारा उसका शुद्धीकरण होता है।

2.व्यवहारिक शोधः-

श्रीमती यंग (1960) ने उचित ही लिखा है कि ," खोज का एक निश्चित सम्बन्ध लोगों की प्राथमिक आवश्यकताओं तथा कल्याण से होता है वैज्ञानिक की मान्यता यह है कि समस्त ज्ञान सारभूत रुप से उपयोगी इस अर्थ में है कि वह एक

सिद्धान्त के निर्माण में या कला के व्यवहार में लाने में सहायक होता हैं। सिद्धान्त तथा व्यवहार आगे चलकर बहुधा एक दूसरे में मिल जाते है''।[1]

3. क्रियात्मक शोधः-

सर्व श्री गुड एण्ड हाट (1962:362) के अनुसार ''क्रियात्मक शोध उस कार्यक्रम का अंश होता है जिसका कि लक्ष्य विद्यमान अवस्थाओं को परिवर्तित करना होता है, चाहे वह गन्दी बस्तियों को अवस्थाऐं हो या प्रजातिय तनाव पक्षपात हो या एक संगठन की प्रभाव शीलता हों''।[2]

भारत में सामाजिक शोध की कतिपय रुप से आवश्यकता है जो निम्नालिखित है :-

(क) अज्ञानता को नष्ट करने के लिए स्वतंत्रता प्राप्त के पश्चात 67 वर्ष का लम्बा समय गुजर चुका है ,फिर भी जनता की अज्ञानता को आज भी आशानुरुप दूर नहीं किया जा सका हैं । यह अज्ञानता कुछ तो अशिक्षा के कारण हैं, कुछ परम्पराओं के प्रति हमारे अन्धविश्वास के कारण । अधिकांश जनता, यहाँ तक कि उच्च शिक्षित लोग भी, आज जातिवाद, भाषावाद, क्षेत्रवाद, प्रान्तवाद आदि किसी न किसी वाद का शिकार हैं जिसके कारण अनावश्यक संघर्ष की स्थितियां उत्पन्न होती है और राष्ट्रीय एकता के लए खतरा पैदा हो जाता है। ये सभी सामाजिक सम्बन्धों के स्वरुप स्वरुपों के सम्बन्ध में हमारी अज्ञानता के दुष्परिणाम कहे जा सकते हैं।

(ख) अन्ध विश्वासों का नास करने के लिए रुढ़िवादिता तथा अन्धविश्वास आज भी भारतीय जनजीवन की एक उल्लेखनीय विशेषता हैं। अतः इस मामले में भी सामाजिक शोध की सहायता की आवश्यकता हैं ।

---

1. यग,पी.वी. (1960): सोसल सर्व एण्ड रिसर्च, एशिया पवलीकेशन हाऊस,बम्बई, पृष्ठ-45
2. गुड एण्ड हाट(1972:362) मैथड आफ सौसल रिसर्च, मेंकग्रो हिल बुक कम्पनी, न्यूयार्क

(ग) योजनाओं की सिद्धि के लिए:-

विकासशील देश की प्रगति व्यवस्थित योजनाओं की सफलता पर निर्भर करती है और भारत के लिए भी यही बात कहीं जा सकती हैं, पर यह सामाजिक या आर्थिक योजनाऐं तब तक सफल नहीं हो सकती जब तक जनता का सक्रिय सहयोग प्राप्त न हों। यह सहयोग तभी हो सकता है जब कि योजना के प्रति आम जनता में एक जागरुकता पनपे और वे अपनी योजना को अपनी योजना मान लें।

(घ) सामाजिक परिवर्तन की दिशा को समझने के लिए :-

प्रगतिशील देश में पहले की अपेक्षा अब परिवर्तन की गति तेज होना स्वाभाविक हैं। पर यह प्रगति किस दिशा में हो रही है, जब तक हमें यह ज्ञान न हो तब तक हम सामाजिक प्रगति के निर्धारित लक्ष्य की ओर व्यवस्थित रुप में आगे नहीं बढ़ सकतें। इसका ज्ञान हमें शोध करने से ही आत्मसात् होता हैं।

(ङ.) सामाजिक समस्याओं का सफल फल निकालने के लिए:-

निर्धनता अपराध, बैकारी, बीमारी, वर्ग संघर्ष, राजनैतिक तनाव आदि अनेक एसी समस्या है जो कि प्रायःसभी समाजों में सामान्य रुप से पाई जाती हैं। अतः आवश्यकता इस बात की है कि भारतीय सामाजिक परिस्थितियों की पृष्ठभूमि में विभिन्न सामाजिक समस्याओं के सम्बन्ध में समुचित शोध कार्यो का आयोजन किया जाये जिससे कि उनके सम्बन्ध में प्राप्त वास्तविक ज्ञान के आधार पर समस्याओं के वैज्ञानिक हलो को ढूढ़ने में सफलता प्राप्त हो सकें।

(च) प्रभावपूर्ण सामाजिक नियंत्रण के लिए:-

प्रत्येक प्रगतिशील देश में सामाजिक नियंत्रण की समस्या नये रुप में सामने आती हैं। इसके लिए इन नये साधनों के विषय में और साथ ही अनुशासन हीनता के

सम्बन्ध में गहन अनुसंधान की आवश्कयता पड़ती है। सामाजिक शोध इस दिशा में इसलिए अत्यन्त सिद्ध हो सकता हैं।

(छ) <u>राष्ट्रीय एकता की वृद्धि के लिए:-</u>

भारतवर्ष एक कल्याण कारी राज्य के रुप में विकसित होने का बीड़ा उठा चुका हैं परन्तु आज जन जीवन में व्याप्त भाषा सम्बन्धी मतभेद, जातिपात के भेदभाव, साम्प्रदायक आदि व्याधि की परिस्थितियों उन प्रयत्नों को निरन्तर विफल कर रही हैं। यह आवश्यक है कि हमें इनके सम्बन्ध में पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो ताकि हम जड़ से उखाड़ कर धीरे-धीरे नवीन परिस्थितियों का सृजन कर सकें। इस काम के लिए सामाजिक शोध हमारी बड़ी मदद कर सकता हैं।

<u>शोध में प्रयुक्त अध्ययन पद्धतियां :-</u>

(अ) वैयक्तिक विधि:- को एक गुणात्मक विधि कहा जा सकता हैं। वैयक्तिक अध्ययन एक गहन अध्ययन विधि है और वह इस अर्थ में कि इस विधि के अर्न्तगत अनेक विषयों के बारे में जानने की इच्छा को त्याग कर 'एक' के ही विषय में सबसे अधिक जानने का प्रयास किया जाता है। इसलिए इसे वैयक्तिक अध्ययन कहा जाता हैं। श्री एमें वाटसन (1961:32:33) ने वैयक्तिक अध्ययन विधि को लिखा है कि ,"जब हम किसी ईकाई को, उसकी सामाजिक, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में रखकर परिपूर्ण रुप में अध्ययन करते है तो उसे वैयक्तिक अध्ययन कहते है। ऐसी ईकाई हम किसी व्यक्ति विशेष को, परिवार, समूह, संस्था या समुदाय को बना सकते है। वैयक्तिक अध्ययन में हम एक विशेष प्रकार के सतत, अनुभवों, सामाजिक शक्तियों तथा प्रभावों की पृष्ठभूमि में किसी ईकाई का गहन तर्क युक्त अध्ययन ही वैयक्तिक अध्ययन है"[1]। वरनाल्ड (1928:306) के मतानुसार ,"सर्वप्रथम इसका प्रयोग अनुमान द्वारा किसी नवीन उपकल्पना पर

---

1. श्री एमे. वाटसन(1961:32:33) डिक्सनरी आफ सोशियोलोजी

पहुँचने की अपेक्षा प्रस्तावना एवं मत को समझने व समर्थन करने के लिया किया गया था"[1]। गुडएण्ड हाट (1952:320) के अनुसार," वैयक्तिक अध्ययन किसी सामाजिक ईकाई, चाहे वह एक व्यक्ति, परिवार, संस्था,वर्ग या जाति हो,के जीवन का शोध उसकी विवेचना करने की पद्धति को कहते है।"[2]

एक व्यक्ति को अपने अध्ययन की एक इकाई मानते हुए वैयक्तिक अध्ययन पद्धति को एक उदाहरण द्वारा सरलता से समझा जा सकता है। एक सन्यासी के अध्ययन के लिए उसके सम्पूर्ण जीवन का अध्ययन करने के लिए एक शोधार्थी को उन परिस्थितियों का अध्ययन करना पड़ेगा जिनके कारण वह सन्यासी बना है। इन सब का अध्ययन करने के लिए न केवल सन्यासी से ही सूचनाएं प्राप्त करनी होगी वरन् उसके परिवार के अन्य सदस्यों, मित्रों, पड़ोसियों से सूचनाऐं प्राप्त करनी पड़ेगी। इतना ही नहीं, उसकी शैक्षिक संस्थाएं, दफ्तर आदि जिससे भी उसका सम्बन्ध रहा हो साथ ही उसकी डायरियां, उसकी पुस्तकें, उसके लेख, उसके भाषण व उस पर लिखी गई पुस्तकें, उसके कार्य कलाप आदि से भी सूचनाऐं प्राप्त करना आवश्यक हैं। संक्षेप यह वैयक्तिक अध्ययन पद्धति हैं।

श्री जान डलार्ड व्यक्ति के जीवन इतिहास के जानने के लिए निम्न योजना आवश्यक बताई है :-

1. सर्वप्रथम यह जानना होगा कि जीवन इतिहास से सम्बन्धित व्यक्ति किस संस्कृति का प्रतिनिधि हैं।
2. उसकी भावनाओं व मानसिक प्रक्रियाओं पर पड़ने वाले सामाजिक प्रभावों का स्पष्ट रुप से दर्शाना चाहिए।
3. उसके जीवन पर पारिवारिक प्रभाव का उल्लेख होना चाहिए।

---

1. वरनोल्ड, एल.एल.(1928) पृष्ठ 306गुड एण्ड हाट (1952:320) मैथड इन सोशल रिसर्च, मेकग्रो हिल,न्यूयार्क ऐक्कॉक ,के.एल. डिजायन आफ सोसल रिसर्च पृष्ठ -5
2. गुड एण्ड हाट(1952:320) मैथड आफ सौसल रिसर्च, मेंकग्रो हिल बुक कम्पनी, न्यूयार्क

4. उसके सम्बन्ध में एकत्र तथ्यों को उसके जीवन के व्यवहार के साथ सम्बद्ध करके तुलनात्मक व्याख्या करनी चाहिए।
5. बचपन से लेकर अध्ययन करते समय तक उसके सम्पूर्ण जीवन को वस्तुनिष्ठ आधार पर क्रमबद्ध रुप में प्रस्तुत करना चाहिए । इसके जीवन को प्रेरणा देने वाली घटनाओं की विशेष व्याख्या करनी चाहिए।
6. जीवन इतिहास के तथ्यों को व्यवस्थित ढंग से प्रस्तुत करना चाहिए।

क्योंकि वैयक्तिक अध्ययन में एक इकाई का समस्या का गहन अध्ययन, व्यक्तिगत अध्ययन, सम्पूर्ण अध्ययन, ऐतिहासिक अध्ययन तथा गुणात्मक अध्ययन किया जाता हैं। जोकि सामग्री की सम्पूर्णता व्यक्तिगत भावनाओं एवं मनोवृत्तियों का अध्ययन, व्यक्तिगत अनुभवों का स्रोत, ईकाईयों का वर्गीकरण एवं विभाजन अतिगहन अध्ययन, अति महत्वपूर्ण प्रयत्नों का साधन तथा महत्वपूर्ण प्राकल्पनाओ का साधन आदि महत्व के प्रश्न इस पद्धति से जुड़े रहते हैं।

ऐतिहासिक पद्धतिः-

ऐतिहासिक पद्धति अध्ययन की वह प्रणाली है जिसके अर्न्तगत ऐतिहासिक घटनाओं या अतीत के तथ्यों के क्रम विकास नियमिताओं एवं सामाजिक प्रभावों के सन्दर्भ में वर्तमान सामाजिक-सांस्कृतिक घटनाओं की व्याख्या व विश्लेषण किया जाता है। यंग, पी.वी. (1960 :45) में एतिहासिक पद्धति के बारे में ठीक ही लिखा है कि ,"ऐतिहासिक पद्धति आगमन के सिद्धान्तों के आधार पर अतीत की उन सामाजिक शक्तियो की खोज है। जिन्होंने कि वर्तमान को ढाला हैं"।[1] इस पद्धति में-सामाजिक अर्न्तदृष्टि, ऐतिहासिक अभिस्थापन, विश्लेषात्मक व समन्वयात्मक दृष्टिकोण, वस्तुनिष्ठ अध्ययन, विश्वासनीय एवं सम्बद्ध तथ्यों का संकलन, व्यर्थ के सामान्य क्षेत्र से परिचित होना, व्यक्तिगत सीमाओं के बारे में जागरुकता, प्रचुर कल्पना शक्ति, पद्धति की अनिवार्य आवश्यकताएं होती हैं ।

चूँकि प्रस्तुत शोध अध्ययन की प्रकृति पूर्णतयः द्वितीयक स्रोतों से सम्बन्धित हैं इसलिय शोध अध्ययन पद्धति मूलतः वैयक्तिक एवं एतिहासिक है, जिन्हें अपनाया गया है। अध्ययन सामग्री के मूल स्त्रोत डॉ0 अम्बेडकर द्वारा लिखित पुस्तको, भाषणो, लेखों, पत्रों एवं अन्य क्षेत्रों में डॉ0 अम्बेडकर पर अन्य विद्धानों व राजनेताओं के लेख तथा विभिन्न सरकारी अभिलेख आदि से प्राप्त सम्बन्धित अध्ययन सामग्री को प्रयोग में लाया गया हैं।

2. अनुसंधान का प्रारुप

समाजशास्त्रीय शोध अध्ययनों में कई आधारों पर भिन्नता पाई जाती है। कुछ शोध कार्य किसी जिज्ञासा को शान्त करने के लिये तो कुछ केवल ज्ञान प्राप्ति के लिये किये जाते है, कुछ का लक्ष्य उपकल्पनाओं का निर्माण तथा कुछ का किसी उपकल्पना की सत्यता की जांच करना होता हैं । किसी शोध का लक्ष्य किसी घटना का यथार्थ चित्रण करना, किसी का सामाजिक समस्याओं के निराकरण हेतु विकल्पों का पता लगाना तथा कुछ का सामाजिक नियोजन एवं नियोजित परिवर्तन की प्रभावशीलता का पता लगाना और समाज कल्याण तथा विकास कार्यक्रमों के सफल संचालन में योगदान करना हैं। इन विभिन्न लक्ष्यों या प्रयोजनों के आधार पर सामाजिक शोध कार्य किया जाता हैं।

प्रत्येक सामाजिक शोध के कुछ निश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति तब तक नहीं की जा सकती जब तक योजनाबद्ध रुप में शोधकार्य का प्रारम्भ नहीं किया गया हों। इसी योजना की रुपरेखा की शोध प्ररचना कहते हैं। इसका तात्पर्य यह हुआ कि एक सामाजिक शोध की समस्या या उपकल्पना जिस प्रकार की होगी, उसी के अनुसार शोध प्ररचना का निर्माण किया जाता है जिससे शोध कार्य को एक निश्चित दिशा प्राप्त हो सके और शोधकर्ता इधर-उधर भटकारने से बच जायें।

जैसा कि पहले ही कहा गया है कि कोई भी सामाजिक शोध बिना किसी लक्ष्य या उद्देश्य के नहीं होता हैं । इस लक्ष्य का उद्देश्य विकास और स्पष्टीकरण शोध कार्य की अवधि में नहीं होता, अपितु वास्तविक अध्ययन प्रारम्भ होने से पूर्व ही इसका निर्धारण कर लिया जाता हैं। शोध के उद्देश्य के आधार पर अध्ययन विषय के विभिन्न विषय के कतिपय पक्षों को उद्घाटित करने के लिये पहले से ही बनाई गई योजना की रुप रेखा को शोध प्ररचना कहते हैं।

श्री एकॉफ ने प्ररचना का अर्थ समझाते हुए लिखा है कि "निर्णय क्रियात्मक करने की स्थिति आने से पूर्व ही निर्णय करने की प्रक्रिया को प्ररचना कहते हैं।"[1]

अतः यह स्पष्ट है कि सामाजिक शोध प्ररचना के अनेक प्रकार है और शोधकर्ता अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये सर्वाधिक उपयुक्त समझकर इनमें से किसी एक प्रकार का चयन कर लेता है और वह कौन सा प्रकार है यह ज्ञात होते ही शोध कार्य की प्रकृति व लक्ष्य स्पष्ट हो जाते है। जैसे, यदि हमें यह ज्ञात हो जाये कि शोध प्ररचना अन्वेषणात्मक है तो स्वतः ही यह स्पष्ट हो जाता है कि किसी सामाजिक घटना के अन्तर्निहित कारणों की खोज करना ही उस शोध का उद्देश्य हैं । इस प्रकार शोधकार्य तथ्यों का विवरण मात्र होगा अथवा नवीन नियमों को प्रतिपादित किया जायेगा, उसका उस शोध कार्य में परीक्षण व प्रयोग का अधिक महत्व होगा, इन सब बातों को ध्यान में रखकर शोध कार्य प्रारम्भ करने से पूर्व एक रुपरेखा बनाई जाती है, उसी को शोध प्ररचना कहते हैं।

समस्त शोधों का एक ही आधारभूत उद्देश्य ज्ञान प्राप्ति हैं परन्तु इस ज्ञान की प्राप्ति विभिन्न प्रकार से हो सकती है और उसी के अनुसार शोध प्ररचना का स्वरुप भो अलग-अलग होता हैं। समाजशास्त्रीय अध्ययनों में अन्वेषणात्मक,

---

1. ऐक्कॉफ ,के.एल. डिजायन आफ सोसल रिसर्च पृष्ठ -5

वर्णनात्मक, निदानात्मक तथा परीक्षाणात्मक शोध प्ररचनाओं को प्रयोग में लाया जाता हैं।

प्रस्तुत शोध अध्ययन में अन्वेषणात्मक शोध प्ररचना का प्रयोग किया गया हैं। अन्वेषणात्मक शोध प्ररचना के बारें में श्री सेलटिज व उनके साथियों ने लिखा है, ''अन्वेषणात्मक शोध प्ररचना उस अनुभव को प्राप्त करने के लिये आवश्यक हैं जो कि अधिक निश्चित अनुसंधान के हेतु सम्बद्ध उपकल्पना के निरुपण में सहायक होगा''[1]। इसी प्रकार के विचार श्री हंसराज ने अभिव्यक्त करते हुये प्रगट किये हैं, ''अन्वेषणात्मक शोध किसी भी विशेष अध्ययन के लिये उपकल्पना का निर्माण करने तथा उससे संबंधित अनुभव प्राप्त करने के लिए अनिवार्य है''[2]।

<u>शोधार्थी ने अन्वेषणात्मक शोध प्रारचना का प्रयोग निम्न कारणों से अपने अध्ययन में किया है :-</u>

(क) पूर्व निर्धारित प्ररचना का तात्कालिक स्थितियों के सन्दर्भ में परीक्षण करती है।

(ख) विभिन्न शोध पद्धतियों के प्रयोग की सम्भावनाओं का यह प्ररचना स्पष्टीकरण करती है।

(ग) सामाजिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण समस्याओं की ओर शोधकर्ता के ध्यान को आकर्षित करती हैं।

(घ) विस्तृत शोधकर्ता के लिए अपरिचित क्षेत्र में व्यवस्थित प्रकल्पना का आधार प्राप्त करता हैं।

(ड) शोध कार्य को एक विश्वसनीय रुप में प्रारम्भ करने में सहायता करती हैं।

---

1. सिलटिज, जहोज, डचकुकः रिसर्च मेथड इन सोसल रिलेसन, पृष्ठ- 33
2. हसंराज, द्विवेदीः थ्योरी एण्ड प्रक्टिस इन सोसल साइसेज, पृष्ठ-68

(च) अधिक महत्वपूर्ण विषयों पर ध्यान केन्द्रित करने के लिए शोधकर्ता को प्रेरित करती हैं।

तथ्यों के स्रोतः-

वास्तविक सूचना या तथ्यों के बिना सामाजिक अनुसन्धान या शोध वास्तव में एक अपुंग प्राणी की भाँति हैं। अनुसन्धान की सरलता इसी बात निर्भर रहती है कि अनुसन्धान कर्ता अपने अध्ययन विषय के सम्बन्ध में कितने वास्तविक निर्भर योग्य सूचनाओं और तथ्यों को एकत्रित करने में सफल होता है। अतः सूचना या तथ्यों के स्रोत्रा के महत्व को सामाजिक अनुसन्धान के क्षेत्र में कम नहीं किया जा सकता। साथ ही ये सूचनाऐं एक ही प्रकार की नहीं होती हैं।इनमें भी कई प्रकार के भेद होते है और इन प्रकारों के विषय में भी स्पष्ट ज्ञान का होना एक सफल शोधकर्ता के लिए आवश्यक हैं। किस स्रोत से किस प्रकार की सूचना उसे प्राप्त हो सकती है। इस बात की स्पष्ट जानकारी न होने पर अनुसन्धानकर्ता केवल इधर-उधर भटकता ही रहेगा और उसका काफी समय तथा श्रम व्यर्थ ही चला जायेगा। अतः सूचना या तथ्यों के प्रकार तथा स्रोतो के बारे में ज्ञान अतिआवश्यक हैं।

सामाजिक शोध में विभिन्न प्रकार की सूचननाओं या तथ्यों की आवश्यकता होती हैं। इन्हें दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। -

(1) प्राथमिक तथ्य या सूचनाऐं।

(2) द्वितीयक सूचनाऐं या तथ्य।

(i) प्राथमिक तथ्यः- वे मौलिक सूचनाऐं या आंकडे होते है जो एक शोधकर्ता वास्तविक अध्ययन स्थान पर जाकर विषय या समस्या से सम्बन्धित जीवित

व्यक्तियों से साक्षात्कार करके अथवा अनुसूची या प्रश्नावली या निरीक्षण द्वारा एकत्र करता हैं।

(ii) द्वितीयक तथ्यः-

वे सूचनाऐं और अथवा आकड़े है जो अनुसन्धानकर्ता को प्रकाशित व अप्रकाशित प्रलेखो, रिपोर्ट, सांख्यकी, पान्डूलिपि पत्र,डायरी आदि से प्राप्त होते हैं। द्वितीयक तथ्यों की उल्लेखनीय विशेषता यह होती है कि ये सूचनाए स्वयं अनुसन्धानकर्ता अपने कार्य में उपयोग करने के लिए एकत्र कर लेता है। प्रो0 नोगले(1938:202)ने द्वितीयक स्रोतो का परिभाषित करते हुए लिखा है कि ,"द्वितीय स्रोत के अर्न्तगत सरकारी तथा गैर सरकारी व्यक्ति, समस्याओं या व्यक्तियों द्वारा प्रकाशित या अप्रकाशित या लिखित प्रलेख सम्मिलित हैं"। यंग (1960:127) ने "सूचना स्रोतो को दो भागों में विभाजित किया है-प्रलेखों श्रोत के अर्न्तगत उसने पुस्तक रिकार्ड, पाण्डुलिपि, डायरी, पत्र आदि को सम्मिलित किया हैं। क्षेत्रीय स्रोत-के एक विषय के सम्बन्ध में वास्तविक जानकारी रखने वाले अथवा अध्ययन विषय से सम्बन्धित व्यक्तियों को सम्मिलित किया हैं"। इन सभी स्रोतों को मोटे तौर पर दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम- प्रलेखीय स्रोत तथा दूसरा- सार्वजनिक प्रलेखीय स्रोत।

उपरोक्त शोध अध्ययन में शोधार्थी ने व्यक्तिगत प्रलेखीय सूचनाओं का प्रयोग किया हैं, जिसमें एक व्यक्ति के द्वारा स्वयं अपने विषय में अथवा सामाजिक घटनाओं के विषय में उसके अपने दृष्टिकोण में लिखी गई हो। यह कोई आवश्यक नहीं है कि उन्हें लिखते समय लेखक का दृष्टिकोण वैज्ञानिक हो अथवा सामाजिक शोध या अनुसन्धान सम्बन्धी उद्देश्यों की पूर्ति के लिए ही उसने लिखा हो। अधिकांशतः ऐसा नहीं होता है और इन व्यक्तिगत प्रलेखों में लेखक के अपने दृष्टिकोण, मनोभाव, विचार व आदर्श ही मूर्ति होते हैं। फिर भी यदि

उसके द्वारा लेखक के मनोभाव या आन्तरिक जीवन या किसी सामाजिक संस्था या घटना के वर्णन पर प्रकाश पड़ता है तो वह स्वतः ही सामाजिक अनुसन्धान के लिए महत्वपूर्ण आधार बन जाता हैं। क्योंकि इन प्रलेखों द्वारा न केवल लेखक की व्यक्तिगत स्थिति या जीवन पर भी प्रकाश पड़ता है अपितु उस समाज या सामाजिक जीवन प्रक्रियाओं का स्पष्टीकरण होता है जिसका कि लेखक भी एक ईकाई का अंग हैं।

व्यक्तिगत प्रलेखों का महत्वः-

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि सामाजिक अनुसन्धान में व्यक्तिगत प्रलेखों का अपना महत्व है। व्यक्तिगत जीवन की घटनाओं के सम्बन्ध में ही नहीं अपितु सामाजिक प्रक्रियाओं को भी समझने में इनकी सहायता आवश्यक हैं, इन प्रलेखों द्वारा विचारों तथा मनोवृतियों का जितना स्पष्टीकरण सम्भव होता है अन्य किसी साधन के द्वारा नहीं, (3) व्यक्तिगत मनोभावों तथा दृष्टिकोणों को ठीक से जान लेने से सामाजिक शोध में घटनाओं का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करने में अत्यन्त सहायता मिलती है, (4) व्यक्तिगत प्रलेखों का एक और उल्लेखनीय महत्व है कि इनसे प्राप्त सूचनाऐं व तथ्य तुलनात्मक रुप से अधिक विश्वसनीय होते है, विशेषकर उन अवस्थाओं में जबकि लेखक उद्देश्य अपने लेखों को प्रकाशित करना नहीं चाहता। वास्तविक तथ्यों का ज्ञान उनके मूलरुप में व्यक्तिगत प्रलेखों द्वारा हमें जितनी सरलता से प्राप्त हो जाता है उतना और किसी क्षेत्र से नहीं।

प्रस्तुत शोध अध्ययन में शोधार्थी ने डॉ0 अम्बेडकर के द्वारा लिखित ग्रन्थो, रचनाओं, भाषणों, अवलोकनों तथा उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व के ऊपर लिखे गये ग्रन्थों रचनाओं तथा मन्तव्यों के अलावा स्वयं डॉ0 अम्बेडकर द्वारा लिखे गये पत्रों, प्रेस नोटो तथा समाचार पत्रों के संवाददाताओं के विवरणों को आधार

बनाकर, उनसे सूचनाऐं व तथ्य एकत्र कर उनके सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक तथा धार्मिक विचारों की पहिचान करने का प्रयास किया गया हैं।

4.सूचनाओं का वर्गीकरण

सामाजिक अनुसन्धान, शोध का आधार अध्ययन विषय से सम्बन्धित सूचनाऐं हैं परन्तु एकत्र की गई सूचनाऐं के ढेर से कुछ भी निष्कर्ष नहीं जा सकता और न हीं विषय के सम्बन्ध में कुछ भी जाना जा सकता है। सूचनाओं का पहाड़ कुछ नहीं करता कहता जब तक उसे कुद व्यवस्थित स्वरुप प्रदान नहीं किया जाए और इसके लिए सूचनाओं का वर्गीकरण आवश्यक होता हैं। जब हम सूचनाओं को उसमें पाई जाने वाली समानता या भिन्नता के आधार पर विभिन्न श्रेणियों में व्यवस्थित रुप में विभाजित करते हैं, तो वह वर्गीकरण कहलाता हैं। सूचनाओं के वर्गीकरण पर प्रकार डालते हुए श्री कोनोर (1936:18) ने लिखा है कि ,"वर्गीकरण सूचनाओं को उनकी समानता तथा निकटता के आधार पर तथा खण्डो में क्रमबद्ध करने तथा इकाईयों की भिन्नता के बीच पाये जाने वाले गुणों की एकात्मकता को प्रगट करने की एक प्रक्रिया हैं"।[1] "श्री एलहान्स ने सूचनाओं के वर्गीकरण के सम्बन्ध में कुछ ऐसे ही विचार व्यक्त किए हैं, "साध्श्यताओं व समानताओं के अनुसार सूचनाओं को खण्डों में व्यवस्थित करने की प्रक्रिया पारिभाषिक दृष्टि से वर्गीकरण कहलाती हैं।"[2]

सामाजिक अनुसन्धान में वर्गीकरण का अत्यन्त महत्व है क्योंकि इसके द्वारा जटिल, विखरे हुए, परस्पर असम्बद्ध सूचनाओं को थोड़े से समझने योग्य तथा तर्कसंगत खण्डो में रखना पड़ता है। सूचनाओं की समानता तथा विभिन्नता वर्गीकरण के द्वारा स्पष्ट हो जाती है। वर्गीकरण के द्वारा दो खण्डों के तुलनात्मक अध्ययन का कार्य सरल हो जाता है। वर्गीकरण

1. कोनोर, एल.आर. (1936:18) 'ए स्टेटिक्स इन थ्योरी एण्ड प्रेक्टिस'
2. एलहान्स, डी.एन. फन्डा मेन्टलस आफ स्टेटिक्स, पृष्ठ-56

के द्वारा एकत्र की गई सूचनाओं को विश्लेषण व व्याख्या के लिए सरल बनाता है तथा वर्गीकरण के द्वारा संकलित सूचना संक्षिप्त तथा बोध गम्य हो जाती हैं।

प्रस्तुत शोध अध्ययन में सूचनाओं को एकत्र कर शोधकर्ता ने उन्हें विषय-सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक एवं धार्मिक खण्डों में वर्गीकृत किया। इसके साथ साथ ऐसा करने से डॉ0 अम्बडेकर के विचारों को समझने में बुद्वि पर अनावश्यक जारे नहीं देना पड़ता और इस प्रकार वर्गीकरण वैज्ञानिक रुप से भी शुद्व हो गया।

5. <u>तथ्यों का विश्लेषण तथा व्याख्याः-</u>

श्रीमती पी0वी0 यंग(1960:509) ने लिखा है कि वैज्ञानिक विश्लेषण यह मानता है कि "तथ्यों के संकलन के पीछे स्वयं तथ्यों से कहीं अधिक महत्वपूर्ण व रहस्योदघाटक (Revealing) और कुछ भी हैं, यदि सुव्यवस्थित तथ्यों को सम्पूर्ण अध्ययन से सम्बन्धित किया जाये तो उनका महत्वपूर्ण सामान्य अर्थ प्रगट हो सकता है जिसके आधार पर घटना की सप्रमाण व्याख्यायें प्रस्तुत की जा सकती है"।[1] इस कथन का तात्पर्य यही है कि शोध कार्य में केवल तथ्यों का पहाड़ एकत्र कर लेने से ही अध्ययन विषय का वास्तविक अर्थ, कारण तथा परिणाम स्पष्ट नहीं हो सकता जब तक उन एकत्र तथ्यों को सुव्यवस्थित करके उनका विश्लेषण व व्याख्या न की जाये। प्रख्यात फ्रैन्च गणित शास्त्री श्री प्लेवेज केयर ने उचित ही लिखा है कि "जिस प्रकार एक मकान पत्थरों से बनता है उसी प्रकार विज्ञान का निर्माण तथ्यों से होता है, पर केवल तथ्यों का एक संकलन उसी भांति विज्ञान नहीं है जैसा पत्थरों का एक ढेर मकान नहीं है"।[2]

---

1. यंग, पी.वी. (1960): साईन्टीफिक सोसल सर्वे रिसर्च, एसिया पवलिसिंग हाऊस, बोम्बे, पृष्ठ -509
2. प्लेवेन केयर

अतः विज्ञान के लिये यह आवश्यक है कि एकत्र तथ्यों का एक संकलन सुव्यवस्थित करके उनका विश्लेषण व व्याख्या की जाये ताकि विषय के सम्बन्ध में सच्चे ज्ञान की प्राप्ति सम्भव हों।

तथ्यों के विश्लेषण व व्याख्या की आधारभूत आवश्यकता यह है कि यदि ऐसा न किया गया तो संकलित तथ्य अर्थहीन ही बने रहेंगे और उनसे अध्ययन का कोई भी परिणाम निकालना हमारे लिये सम्भव नहीं होगा। इस अर्थ में तथ्यों के विश्लेषण तथा व्याख्या के बिना शोध कार्य अपूर्ण ही रह जायेगा। यही कारण है कि श्रीमती यंग(1960:309) ने वैज्ञानिक को "शोध का रचनात्मक पक्ष" कहा हैं।[1]

सामाजिक शोधकर्ता किसी भी चीज या घटना को स्वयं सिद्ध नहीं मान लेता। यहतो संकलित तथ्यों, विद्यमान आदर्शो तथा अन्तर्निहित सामाजिक दर्शन को सामयिक मानता है और इसलिये कोई भी प्रयोगसिद्ध परिणाम निकालने के लिये संकलित तथ्यों की सावधानीपूर्वक जांच, उनके पारस्परिक सम्बन्धों तथा उनका सम्पूर्ण घटना के साथ सम्बन्ध के सन्दर्भ में करना उसके लिये आवश्यक हो जाता है। इस प्रकार तथ्यों का विश्लेषण करने के दौरान ही वह पुरानी अवधारणाओं की परीक्षा करने अथवा नवीन चुनौती देने वाली अवधारणाओं को ढूंढ निकालने में सफल हो सकता हैं। साथ ही, इस प्रकार के विश्लेषण से उसे विषय के सम्बन्ध में जो अन्तर्दृष्टि प्राप्त होती है उसी के आधार पर वह अवधारणाओं की पुर्नपरीक्षा करता है और इस प्रकार तथ्यों की व्याख्या के लिये एक अधिक ठोस आधार को प्राप्त करता है। अतः तथ्यों के उचित विश्लेषण के बिना अध्ययन, विषय की वास्तविक व्याख्या सम्भव नहीं और तथ्ययुक्त व्याख्या के बिना शोधकार्य का कोई परिणाम निकल ही नहीं सकता हैं।

---

1. पी0वी0 यंग (1960) : साईन्टीफिक सोसल सर्वे एण्ड रिसर्च, एसिया पवलिसिंग हाऊस, बोम्बे, पृष्ठ-309

श्रीमती यंग (1960:310) के अनुसार, "क्रमबद्ध विश्लेषण का कार्य एक ठोस बौद्धिक भवन के विचार के एक संगठन का निर्माण करना है जो कि एकत्रित तथ्यों को उनके उचित स्थान तथा सम्बन्धों को प्रस्थापित करने में सहायक होगा ताकि उनसे सामान्य निष्कर्षों को निकाला जा सकें"।[1]

इस प्रकार तथ्यों के विश्लेषण के बिना किसी भी विषय या घटना के कार्यकारण सम्बन्ध की व्याख्या सम्भव नहीं है और इस प्रकार की व्याख्या के बिना न तो विज्ञान की कोई उन्नति सम्भव है और न ही वास्तविक ज्ञान की प्राप्ति। विश्लेषण व व्याख्या के आधार पर ही वास्तविक वैज्ञानिक नियमों को प्रतिपादित किया जा सकता है । पुराने सिद्धान्तों या नियमों की परीक्षा करने, नवीन सिद्धान्तों या नियमों को प्रतिपादित करने अथवा पुराने सिद्धान्तों या नियमों को गलत प्रमाणित करने के लिये एकत्रित तथ्यों का विश्लेषण व व्याख्या आवश्यक हैं। स्वयं तथ्य मूक होते है वे कुछ नहीं कहते पर उनका क्रमबद्ध विश्लेषण व व्याख्या करके उन्हें मुखरित किया जाता हैं।

इस शोध अध्ययन में शोधकर्ता ने उपरोक्त सभी मार्ग दर्शनों एवं सिद्धान्तों को ध्यान में रखकर एकत्र तथ्यों को वर्गीकृत कर उनका विश्लेषण किया है जो सरस,सरल तथा सुबोध भी हो गया। विश्लेषण की व्याख्या जैसी समाज शास्त्र के शोध प्रतिवेदनों में प्रस्तुत की जाती है उसी प्रकार इसमें भी की गई हैं।



---

1. यंग, पी0वी0 (1960) : साईन्टीफिक सोसल सर्वे एण्ड रिसर्च, एसिया पवलिसिंग हाऊस, बोम्बे, पृष्ठ-310



अध्याय -2

डॉ0 अम्बेडकर की संक्षिप्त जीवनी एवं स्मरणीय तारीखें

बाबा साहेब की संक्षिप्त जीवनी :-

महाराष्ट्र में केवल कोंकन एक ऐसा क्षेत्र (भू-भाग) हैं जिसने बड़े-बड़े महापुरूषों को जन्म दिया तिलक, कर्वे, परांजयपेय, गोखले सावरकर इसी भूमि की विभूतियां थी। कोंकन के जिला रतनगिरी में अम्बावड़े नाम का एक ग्राम हैं। डॉ. अम्बेडकर के पुरखे इसी ग्राम के निवासी थें। डाक्टर अम्बेडकर के दादा मालाजी सकपाल का परिवार इसी ग्राम का एक उच्च खानदान था। यह परिवार जाति का महार था।

महाराष्ट्र में भी अछूतों की बहुत सी उप जातियां हैं। उन सब में महार जाति की संख्या सबसे अधिक हैं। कुछ लोगों का मत है कि वास्तव में महाराष्ट्र महारों का ही देश हैं। महाराष्ट्र शब्द की व्युत्पत्ति भी महार शब्द से मेल रखती हैं। डॉ0 अम्बेडकर साहेब ने अपनी रचना 'अछूत कौन और कैसे' में खोज की हैं कि महार जाति प्राचीन काल में नाग जाति की वंशज थी। यह जाति नाग देवता की पूजा किया करते थें। नाग जाति प्राचीन युग में बड़ी योद्धा और बहादुर थी। नाग जाति के लोग अपनी बहादुरी के कारण सारे भारत में फैल गये थें।

मालोजी सकपाल की औलाद में केवल दो बच्चे जीवित रहे। एक लड़का रामजी जो डॉ. अम्बेडकर के पिता थें आगरा दूसरी सन्तान थी एक लड़की जिसका नाम मीराबाई था। यह वही मीराबाई है जिसने बचपन में अपने भतीजे डा. अम्बेडकर का पालन-पोषण किया था। क्योंकि डाक्टर अम्बेडकर की माता का

देहान्त जब छहः वर्ष के थे हो गया था और उनके पिता रामजी ने दूसरी शादी कर ली थी।

मालोजी का परिवार बड़ा धार्मिक और दयालु परिवार था। उनके घर में दिन-रात धार्मिक चर्चा और भजन वाणी होती रहती थी। यह परिवार कबीर पंथी था। सन्त कबीर के दोहे और शब्द हिन्दी साहित्य में पूर्व स्थान रखते थें। सन्त कबीर जात-पात और छुआछूत के अत्यंत विरोधी थें। वह बड़े उदार चित और मानवता से प्रेम रखने वाले सन्त थें। कबीर जी का बर्ताव अपने हिन्दू मुस्लिम शिष्यों के साथ एक समान था उनके अनुयायी सारे भारतवर्ष में फैले हुए हैं जो जाति-पांति और ब्राह्म अम्बेडकरों को नहीं मानते हैं। यही कारण है कि अनगिनत अछूत भारत में जगह-जगह पर कबीर पंथी बन गए है। कबीर पंथियों का विश्वास है कि-

जात-पाज ना पूछे कोई, हरि को भजे सो हर का होए।

श्रामजी सकपाल के चौदह बच्चे पैदा हुए जिनमें से केवल तीन लड़के और दो लड़कियों ने ही लम्बी आयु प्राप्त की थी और बाकी छोटी आयु में ही मर गए थें। बालाराम सबसे बड़ा लड़का था। दूसरे लड़के का नाम आनन्द राव था। तीसरी और चौथी दो लड़कियां थी। जिनमें एक का नाम मंजुला और दूसरी का नाम तुलसीबाई था। सबसे आखिरी और सबसे छोटा लड़का भीमराव था। यह भीम आगे चलकर भीमराव अम्बेडकर नाम से प्रसिद्ध हुए थें। इन पांचों बच्चों का पालन-पोषण इनकी फूफी (बुआ) के पवित्र हाथों से हुआ। छोटी संतान सबसे प्यारी होती हैं इसलिए भीमराव भी सबसे छोटा होने के कारण फूफी की आंखों का तारा था।

रामजी सकपाल एक बड़ा बुद्धिमान और बहादुर व्यक्ति था साथ ही साथ अत्यन्त धार्मिक और भक्ति भाव रखता था। प्रतिदिन हरि भजन करना उसका नित्य नियम था। प्रातः और सायंकाल की भजनवाणी में उनके सब बच्चे भी

शामिल होते थें। कबीर के बहुत से दोहे और भजन बच्चों को कंठस्थ थें। रामजी अक्सर अपने बच्चों को रामायण और महाभारत की वीर रस भरी कहानियां सुनाया करते थें। मराठी भाषा के संत मोरोपन्त, मक्तेश्वर और प्रसिद्ध संत तुकराम के आध्यात्मिक गीत और अभंग रामजी की वाणी पर अंकित रहते थें। यही करण था कि रामजी के सब बच्चे बाल्यकाल से ही मराठी भाषा और साहित्य से भली-भांति परिचित थें।

संसार के काम-धन्धों रामजी प्रबुद्धि और जागरूक रहते थें। वह आरम्भ से ही अंग्रेजी सेना में नौकर थे। शनैः-शनैः उन्नति करके वह मिलिटरी नार्मल स्कूल के हेडमास्टर बन गए थें। चौदह वर्ष तक हेडमास्टर रहकर जब उन्होंने पेंशन पाई तो वो सेना में सूबेदार मेजर के पद पर पहुंच चुके थे। आमतौर पर वे सूबेदार रामजी के नाम से प्रसिद्ध थें। सारा जीवन उन्होंने कभी शराब और मांस को हाथ नहीं लगाया। सामाजिक कामों में भी उनकी बहुत रूचि थी। महाराष्ट्र के प्रसिद्ध समाज सुधारक महात्मा फूले के वे अत्यंत श्रद्धालु, प्रशंसक और मित्र थें। जब अंग्रेजी शासन ने ब्राह्मणों और उच्च जातियों के हिन्दुओं को ही सेना में भर्ती करना आरम्भ कर दिया और महारों (अछूतों) को सेना में लेना बन्द कर दिया तब इस अन्याय के विरूद्ध आवाज उठाने वालों में रामजी सबसे प्रमुख व्यक्ति थें। इसी सिलसिले में वह गोविन्द राणाडे से मिले और राणाडे के माध्यम से भारत सरकार को एक प्रार्थना-पत्र दिया कि सेना की भर्ती में महारों पर जो प्रतिबन्ध लगाए गए है उन्हें रद्द किया जाए। इसी सिलसिले में वह अपनी वृद्धावस्था के समय में एक बार गर्वनर से भी मिल थें।

<u>जन्म :-</u>

डॉ. अम्बेडकर के जन्म के बारे में एक बात प्रसिद्ध हैं जो हमें उस स्वप्न की याद दिलाती है जो भगवान गौतम बुद्ध की पूज्य माता ने अपने बच्चे की उत्पत्ति के संबंध में देखा था। कहा जाता है कि सूबेदार रामजी का परिवार महु छावनी

(मध्य प्रदेश) में रहता था। उनके घर की एक महिला कपड़े धोने के लिए नदी पर जा रही थीं कि उन्हें रास्ते में साधुओं का एक टोला मिला जिसमें सूबेदार रामजी (डॉ. अम्बेडकर के पिता) का एक चाचा भी था। जैसे ही सूबेदार रामजी को पता चला वह दौड़ा-दौड़ा साधुओं के पास पहुंचा और हाथ जोड़कर अपने चाचा से प्रार्थना की कि वह अपने पवित्र चरणों से अपने भतीजे के घर को पवित्र करें। चूंकि बृद्ध चाचा संयासी बन चुका था, इसलिए उसने घर जाने से इन्कार किया किन्तु आशीर्वाद दिया कि जा बेटा तेरे घर ऐसा पुत्र पैदा होगा जो भारत के इतिहास में अपना नाम रोशन कर जायेगा। तत्पश्चात् महु छावनी के स्थान में 14 अप्रैल, 1891 को सूबेदार रामजी के यहां एक ऐसा लड़का पैदा हुआ जो आगे चलकर भारत की प्रसिद्ध विभूति बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर के नाम से न केवल अपने देश में ही नहीं बल्कि विदेशों में भी ख्याति प्राप्त करने वाला सिद्ध हुआ। डॉ. अम्बेडकर का जन्म उस बृद्ध संयासी के वरदान और आशीर्वाद के रूप में साकार हुआ। डॉ. अम्बेडकर की माता भीमा बाई एक अमीर घराने की बेटी थी। इस परिवार के अधिकतर व्यक्ति रामजी के परिवार की तरह सेना में नौकर थे। अतः यह घराना भी कबीर पंथी था। जैसा कि पहले बताया गया है कि डॉ. अम्बेडकर कुल छः वर्ष के ही थे कि उनकी माता का साया उनके सिर से उठ गया।

<u>प्रारम्भिक जीवन और शिक्षा :-</u>

बालक भीम की आयु केवल दो बरस की थी कि उसके पिता सेना से रिटायर होकर अपने निवास स्थान पर चले गए। जब भीमराव की आयु पांच बरस की हुई तो उसे डापोली नाम के कसबे में अपने बड़े भाई के साथ ही स्कूल में भर्ती करा दिया गया। अभी थोड़ा ही समय व्यतीत हुआ था कि सूबेदार रामजी का सतारा के सैनिक दफ्तर में नौकरी मिल गई। वहां भी भीमराव अपने बड़े भाई आनन्द राव के साथ हाई स्कूल में पढ़ने जाता था। इसी समय पहली बार भीमराव के जीवन में

इस बात का कड़वा अनुभव हुआ कि वह अछूत है और अछूत होना जीवन में कितनी बदकिस्मती या पाप हैं।

एक बार भीमराव अपने भाई के साथ अपने पिता से मिलने के लिए सतारा से गोर गांव के लिए गए। उन्हें उम्मीद थी कि उनका पिता उन्हें लेने कि लिए रेलवे स्टेशन पर आएगा किन्तु किसी कारण वह वहां नहीं आ सकें। दोनों भाइयों ने किराये पर एक बैलगाड़ी ली और स्टेशन से घर के लिए वापस चल पड़े। मार्ग काफी लम्बा था। रास्ते में गाड़ीवान को पता चल गया कि भले इन लड़कों के कपड़े साफ सुथरे हैं किन्तु हैं तो जाति से अछूत ही। ऐसा जानकर उसे सांप सूंघ गया और वह गुस्से से अन्धा हो गया उसने भीमराव और उसके भाई को अपनी बैलगाड़ी से नीचे फेंक दिया।

रात का समय था। बेचारे इन दोनों भाईयों ने गाड़ीवान को दुगुना भाड़ा देकर किसी प्रकार गाड़ी में ले जाने के लिए तो राजी कर लिया किन्तु शर्त यह ठहरी कि गाड़ीवान अपनी गाड़ी के साथ पैदल चलेगा और बैलगाड़ी हांकने का काम इन दोनों भाईयों के जिम्मे होगा। इस प्रकार दोनों अबोध भाई गाड़ी को हांक रहे थे और गाड़ीवान गाड़ी के पीछे पैदल चला आ रहा था।

रास्ते में दोनों भाईयों को प्यास लगी किन्तु किसी हिन्दू ने इन्हें दो घूंट पानी नहीं पिलाया। इनके पानी मांगने पर जब उन्हें गाड़ीवान से पता चला कि वह यह जाति के अछूत है तो दूर से खड़े-खड़े हिन्दुओं ने इन्हें गन्दे नाले और कीचड़ भरे गड्डों से पानी पीने के लिए संकेत कर दिया। बालक भीम के जीवन में यह प्रथम कटु अनुभव था कि अछूत होना कितना बड़ा अभिशाप हैं।

दूसरी बार भी एक ऐसी ही घटना घटी। भीमराव ने असह्मय प्यास के मारे एक ऐसी जगह से पानी जी लिया जो ब्राह्मणों तथा सवर्ण हिन्दुओं के लिए ही पानी पीने की जगह थी। इस अपराध के कारण बाल भीम को सवर्ण हिन्दुओं ने इतनी निदर्यता से पीटा जिसे वह आजीवन नहीं भूल सका। अछूत भीम की हजामत

हिन्दू नाई कैसे कर सकता था? उसके बाल उसकी बहनें कांटा करती थीं। हिन्दू नाई की वह कैंची और उस्तरा जिससे वह भैंसों और भेड़-बकरियों के बाल कांटता था वह भीम (अछूत) के बालों को छूते ही अपवित्र हो जाता था। भला हिन्दू नाई ऐसा भ्रष्ट काम कैसे कर सकता था?

इसके बाद भी छुआछूत के अनेक अनुभव भीम के दिल व दिमाग में अंकित हो चुके थे, जिनके संस्कार या गहरे घाव आजीवन नहीं मिट सकें।

जैसे लचकदार टहनी को कुछ समय एक झुकाया रखा जाए तो वह टेढ़ी हो जाती है, उसी प्रकार भीमराव के दिमाग पर छुआछूत के इन प्रहारों का असर पत्थर पर लकीर की मानिन्द पक्का होता गया।

भीमराव को शनैः-शनैः यह अहसास होने लगा कि इस छुआछूत से वह अकेला या उसकी जाति ही शिकार नहीं बल्कि धर्म ने उन जैसे करोड़ों मानवों को धर्म के नाम पर अस्पृश्य या अछूत बना रखा हैं, जिनका दर्जा हिन्दू समाज में कुत्ते बिल्ली से भी घटिया हैं।

अन्याय और बुराई के खिलाफ लड़ना भीमराव की प्रकृति में बाल्यकाल से ही देखने में आता हैं। वह बड़े से बड़े आदमी का दूसरे के साथ अन्याय करना सहन नहीं कर सकता था। वह हमेशा मन मरजी करता और बिना किसी प्रकार की घबराहट या खौंफ के वह जिसे सच समझता उस पर ही चलता था।

एक बार की बात है कि बहुत भयानक वर्षा हो रही थी। भीम के पास छतरी नहीं थी; सहपाठी लड़कों ने व्यंग्य से कहा कि देखें तुम आज स्कूल कैसे जाते है? भोम ने मूसलाधार वर्षा की परवाह नहीं की और पानी से तर-बतर कपड़ों के साथ स्कूल जा पहुंचा। धोती पानी-पानी हो रही थी, और भीम सर्दी से कांप रहा था। अध्यापक को भीम की ऐसी दयनीय दशापर दया आई और उसने सर्दी से बचाव का कुछ न कुछ प्रबन्ध किया किन्तु भीम को अपनी बेबसी पर रोना आ रहा था

और वह मन ही मन में सोचता था कि काश ! मेरे पास भी छतरी होती तो मैं इस भयानक शीत से बच सकता था।

अम्बेडकर नाम कैसे अपनाया ?

सतारा के हाई स्कूल में एक टीचर था जो अपने नाम के साथ अम्बेडकर लगाता था। उस टीचर को भीम से स्वाभाविक स्नेह था। वह हमेशा अपने खाने में से जो प्रायः उबले चावल होते थे भीम को खाने कि लिए कुछ अवश्य देता था। यह टीचर एक अजीब मनचला व्यक्ति था तथा किसी हद तक सुस्त भी था। यह स्कूल की नौकरी के पश्चात् एक तम्बाकू की दुकान पर भी काम करता था। किसी न किसी प्रकार से लड़कों की पढ़ाई संबंधी कठिनाइयों को दूर करने का कोई उपाय निकाल लेता था।

जब कभी स्कूल इन्स्पैक्टर लड़कों की परीक्षा लेने के लिए आता और उन से कोई सवाल पूछता तो यह टीचर इन्स्पैक्टर के पीछे खड़ा होकर बन्दर की तरह इशारों में और तरह-तरह के संकेतों से सवालों के जबाव बड़ी चालाकी से लड़कों को बतला दिया करता था। भीमराव अपने उस टीचर के बर्ताव और तौर तरीके से कुछ ऐसे प्रभावित हुए कि उसने भी अपना नाम बदलकर अपने नाम के आगे अम्बेडकर रख लिया। स्कूल के पिछले रिकार्ड से पता चलता है कि भीम का पहला पैतृक नाम सकपाल था। भीम अम्बावडे ग्राम का निवासी था इसलिए उसका नाम अम्बावडेकर न होकर भीमराव अम्बेडकर हो गया।

डाक्टर भीमराव जब पहली गोलमेज कान्फ्रेंस के लिए रवाना हो रहे थे तो उस समय पुराने बृद्ध टीचर ने अपने प्यारे शिष्य डाक्टर अम्बेडकर के नाम पर अपनी हार्दिक बधाई और शुभकामनाओं से भरा एक पत्र लिखा। यह पत्र डाक्टर साहेब को इतना प्यारा था कि उसे उन्होंने अपनी आखिरी आयु तक संभाल कर रखे रहा और जब कभी अपनी बचपन का स्मरण आता तो वह उस पत्र को निकाल

कर पढ़ लेते और प्रसन्न हो उठतें। सच्चे स्नेह के संस्कार अमिट रहते है और वह स्मृतिपटल पर से मिटाएं नहीं मिटतें।

विद्यार्थी काल :-

स्कूल में आनंद राव और भीम राव दोनों भाइयों को अछूत होने के नाते कमरे के एक कोने में बैठना पड़ता था। वह दोनों एक फटे-पुराने टाट पर बैठा करते थे, जो उन्हें स्वयं अपने घर से ही लाना पड़ता था। प्यास लगने पर उनके मुंह में बहुत ऊंचे से पानी ऐसे उड़ेला जाता था जैसे तंग मुंह वाली बोतल में से तेल उड़ेला जा रहा हों।

स्कूल के अध्यापक इनकी किसी भी चीज को नहीं छूते थें। यहां तक कि इनकी अभ्यास करने की कापियां भी कुछ पक्के सवर्ण अध्यापक नहीं देखते थें। कुछ अध्यापक तो उनसे कोई प्रश्न पूछना भी पसंद नहीं करते थें।

परिवार में सबसे छोटा होने के कारण घर में भीम का पालन-पोषण बड़े लाड़-प्यार से होता था। विशेषकर उसकी फूफी तो भीम को बेहद प्यार करती थी। भीम अपने बाल्यकाल में तरह-तरह के शौक और रुचियां रखता था। पेड़-पौधे लगाने का उसे बहुत ही शौक था। जैसे ही उसके हाथ कुछ पैसे लगते वह भिन्न-भिन्न प्रकार के पेड़-पौधे के बीज खरीद लेता। जब वह इस काम से फुरसत पाता तो कभी-कभी भैसें और बकरियां भी चराने चला जाता था। स्वभाव से चंचल होने के कारण घर में उसके लिए चैन से बैठना असम्भव था। एक बार बालक भीम ने रेलवे स्टेशन पर जाकर कुली का काम भी किया जो उसकी फूफी को बहुत बुरा लगा। किन्तु भीम से अति स्नेहवश फूफी ने उसे अधिक नहीं डांटा।

मजे की बात तो यह थी कि भीम को पढ़ने-लिखने में बिल्कुल रुचि नहीं थी। उसका अधिक समय उसके अपने मनचाहे कामों में ही गुजरता था। परिवार में सबसे छोटा होने के कारण उसे कोई डांटता झिड़कता भी नहीं था। उसका शरारतों को प्रायः सभी सहन कर लेते थें। माता (भीमाबाई) की मृत्यु के पश्चात्

उन्हीं दिनों सूबेदार रामजी बच्चों समेत बम्बई पहुंचे और परेल की एक चाल में स्थायी तौर पर रहने लगे। परेल मजदूर समुदाय का अड्डा था। यहां आकर भीम को हर प्रकार के लोगों को देखने का अवसर मिला। विशेष तौर पर श्रमिकों और लफंगों को बहुत नजदीक से देखने का मौका मिला। बम्बई पहुंचने पर भीम ने पहले मराठा हाई स्कूल में दाखिला लिया, लेकिन थोड़े समय के पश्चात् भीम ने एल्फन्स्टन हाई स्कूल में प्रवेश प्राप्त किया।

यह हाई स्कूल चाहे हर प्रकार से सरकारी प्रबन्ध के अधीन था लेकिन छुआछूत का बर्ताव यहां भी बराबर होता था। एक बार एक अध्यापक ने भीमराव से कहा कि ब्लैकबोर्ड पर एक प्रश्न का उत्तर लिखकर बताओं। जैसे ही भीम ब्लैकबोर्ड पर लिखने लिए आगे बढ़ा दूसरे विद्यार्थियों में शोर-शराबा मच गया। लड़के सुधबुध खोकर ब्लैकबोर्ड पर झपटे और उसके पीछे रखे अपने खाने के डिब्बों को उठाकर भाग खड़े हुए।

इस घटना की चर्चा घर-घर और गली-कूचों में हुई और सवर्ण लोग अछूतों को तरह-तरह के ताहनें देने लगें। ऐसी परिस्थिति में एक सवर्ण अध्यापक ने अपनी बुद्धि अनुसार भीमराव को सलाह दी कि वह अपनी पढ़ाई त्याग दे। भीम को उस सवर्ण टीचर की यह सम्मति बुरी लगी और उसने उसे कहा कि उसकी इस शुभ सम्मति को आप अपने पास रखिए मैं तुम्हारी यह राय पसंद नहीं करता।

परेल की जिस चाल में भीम रहता था उसका नाम दलित चाल था। भीम के सारे परिवार को एक छोटे से अंधेरे कमरे में जीवन बिताना पड़ता था। सारा कमरा घरेलू सामान से ही भरा पड़ा था। उसमें इतना भी खाली स्थान नहीं था कि बाप-बेटा दोनों एक समय इक्द्ठे सो सकें।

सूबेदार रामजी को शिक्षा के साथ-साथ अपने बेटे की सुख सुविधा का बड़ा ध्यान रहता था। सूबेदार ने इस कठिनाई का एक समाधान यूं निकाला कि वह सायं से लेकर दो बजे रात एक बेटे को सुला देता और दो बजे रात तक स्वयं जाग

कर व्यतीत करता और तत्पश्चात् भीम को नीद से जगाता और स्वयं सो जाता। दीपक की टिमटिमाती रोशनी में भीम अपनी पुस्तकों को प्रातः होने तक पढ़ता रहता।

भीम को अपनी पाठ्यपुस्तकें पढ़ने की बजाए अन्य सामान्य पुस्तकें पढ़ने में अधिक रूचि थी। ऐसी ही रूचि संसार के अन्य प्रसिद्ध महानुभावों की तरह तिलक को भी थी किन्तु तिलक एक उच्च समझे जाने वाले ब्राह्मण की संतान था। उसे अपेक्षित पुस्तकें भी सुविधापूर्वक मिल जाती थी किन्तु भीम की हालत इस के बिल्कुल विपरीत थी। रामजी को अपने पुत्र भीम की पुस्तकों में इतनी अधिक रूचि को देखकर बहुत खुशी होती थी और वह भीम के शौक को पूरा करने के लिए अपनी विवाहिता पुत्रियों के भूषण जो उन्हें दहेज में दे रखे थे, गिरबी रखकर पुस्तकें खरीद लाता और पेंशन मिलने पर बेटियों के भूषण छुड़ाकर उन्हें वापस दे देता।

कई बार भीम अपने ऐसे सगे संबंधियों में से किसी का खाना लेकर जो कपड़े की मिलों में मजदूरी करते थे, मिलों में उन्हें देने के लिए जाता और वहां उसे मजदूरों की हालत देखने का अवसर मिलता। समय मिलने पर भीम खेलों में भी भाग लिया करता था। दोनों भाई पढ़ाई में संस्कृत का विषय (मज़मून) लेना चाहते थे किन्तु अछूत होने के कारण उन्हें संस्कृत का विषय लेने की इजाजत नहीं मिल सकी।

मजबूरी में उन्हें फारसी का विषय लेना पड़ा। सन् 1907 में भीमराव ने जब मैट्रिक पास करने पर एक उत्सव मनाया। इस उत्सव की अध्यक्षता प्रसिद्ध समाज सुधारक बोले ने की थी। इस अवसर पर मराठी भाषा के प्रसिद्ध लेखक कैलुस्कर ने भी भीम की बहुत प्रशंसा की। कैलुस्कर महोदय कई बार अपनी संगत भीमराव से करते रहते थें। वह भीम की विद्या संबंधी लगन और पुस्तकों के पढ़ने की अत्यन्त रूचि से बहुत ही प्रसन्न थें वह अक्सर भीमराव को पुस्तकें पढ़ने

के लिए दिया करते थें। एक बार कैलुस्कर महोदय ने अपनी रचना ''भगवान बुद्ध का जीवन चरित्र'' की एक प्रति भीमराव को उपहार में दी थी।

शादी भी एक निराली शान से सम्पन्न हुई मार्किट के एक कोने में दुल्हन के संबंधी और दूसरे कोने में दूल्हे के संबंधी मार्किट के पत्थर के चबूतरे पर बैठे थे और मार्किट का खुला स्थान मानो शादी का पन्डाल था। शादी की सब रस्में रातों-रात पूरी कर दी गई क्योंकि सुबह होने पर मार्किट में सब्जी वालों ने दुकानें लगानी होती थीं।

अपने पिता के प्रोत्साहन पर भीमराव ने एल्फन्स्टन कॉलेज में दाखिला ले लिया। इन्टरमीडिएट परीक्षा (एफ0ए0) आर्ट में पास करने के बाद पिता कि पास इतना पैसा नहीं था कि भीमराव आगे शिक्षा जारी रख सकता। किन्तु पिता की हार्दिक इच्छा थी कि उसका पुत्र आगे उच्च शिक्षा प्राप्त करें। इस अवसर पर काम कैलुस्कर महोदय आए। उनकी सिफारिश से महाराजा बड़ौदा ने भीमराव के लिए आगे उच्च शिक्षा पाने के लिए पच्चीस रूपया मासिक छात्रावृत्ति नियत कर दी।

विद्यार्थी काल में ही भीमराव ने अछूत जातियों के साथ सवर्ण लोगों के घृणात्मक और निरादरपूर्ण दैनिक सलूक का अच्छी प्रकार से मनन और निरीक्षण कर लिया था।

कई बार वह स्वयं भी सवर्ण हिन्दुओं के नफरत भरे व्यवहार का शिकार हो चुका था। एल्फेन्स्टन कॉलेज की कैन्टीन का मालिक एक ब्राह्मण था। उस ब्राह्मण ने भीमराव को कभी चाय पीने की सुविधा या इजाजत नहीं दी। भीमराव ने अपनी सारी शिक्त अपनी शिक्षा पूर्ति पर केन्द्रित कर रखी थी। बीमारी के कारण भीमराव का शिक्षा संबंधी एक वर्ष बर्बाद हो चुका था।

सन् 1912 में उसे बी0ए0 की परीक्षा पास की। उसी वर्ष मि0 गजेन्द्र गड़कर ने भी बी0ए0 की परीक्षा पास की थी और वह सारे कॉलेज में प्रथम रहे थें।

स्मरण रहे कि यह वही गजेन्द्र गड़कर महोदय है जो डाक्टर अम्बेडकर द्वारा सिद्धार्थ कॉलेज बम्बई के प्रिन्सिपल रहें।

यह वही समय है जब अंग्रंजी शासन ने भारतीय नेताओं पर अत्याचार और कठोरतापूर्ण बर्ताव आरम्भ किया था। तभी बालगंगाधर तिलक को मान्डले (बर्मा) में नजरबन्द कर दिया था।

पिता का देहान्त :-

ग्रेजुएट बनने के बाद भीमराव अम्बेडकर ने अपने पिता की इच्छा के विरुद्ध बड़ौदा रियासत में एक सैनिक नौकरी कर ली थी। इस नौकरी पर लगे, अभी पन्द्रह दिन भी नहीं व्यतीत हुए थे कि उन्हें घर से अपने पिता की बीमारी संबंधी एक तार मिला। तार मिलते ही झट बम्बई पहुंचे किन्तु उनके पहुंचने से कुछ क्षण पहले ही उनके पिता की मृत्यु हो गई। पिता के मृत शरीर को देखकर अम्बेडकर एक नन्हें बच्चे की तरह फूट-फूट कर रोने लगा।

अछूत मेजर सूबेदार रामजी मालोजी सकपाल भले ही इस असार संसार से कूच कर गये किन्तु अपने पीछे अछूत जाति और देश की सेवा करने के लिए एक ऐसा बेमिसाल सपूत छोड़ गये जिसकी मानव सेवा का ब्यौरा भारतीय इतिहास में स्वर्ण अक्षरों में लिखने के योग्य हैं।

अमेरिका में शिक्षा प्राप्ति :-

पिता के मरने के पश्चात् अम्बेडकर को अपने सारे परिवार के भरण-पोषण का भार उठाना पड़ा। अधिक उच्च शिक्षा प्राप्ति की लालसा उसके हृदय में तूफान की तरह हिलोरें ले रही थी। सौभाग्य ही समझिए कि महाराजा बड़ौदा ने अन्य तीन विद्यार्थियों के साथ भीमराव अम्बेडकर को भी उच्च शिक्षा प्राप्ति के लिए अमेरिका भेजने के लिए निश्चय किया।

एक अछूत विद्यार्थी के लिए यह एक अनुपम अवसर था। अम्बेडकर महोदय सन् 1913 में अमेरीका पहुँचे और वहां कोलम्बिया विश्वविद्यालय में प्रवेश ले लिया। वहां से सन् 1915 में एम0 ए0 की परीक्षा पास की।

अमेरीका उनके लिए एक स्वाधीन वातावरणपूर्ण देश था । वहां की सामाजिक व्यवस्था में कोई सवर्ण और असवर्ण नहीं था। मानवमात्र के लिए वहां भारत की तरह सामाजिक प्रतिबंध नहीं थें। प्रत्येक व्यक्ति बिना किसी प्रकार की बाधा के मन-चाहा उद्देश्य पूरा कर सकता था। वहां भारत की तरह खान-पान में, उठने-बैठने और सामाजिक जनजीवन में पग-पग पर अछूतपन का अभिशाप और नफरत नाम की कोई भावना नहीं थी। अम्बेडकर महोदय अमेरीकन समाज की स्वाधीनता और समता से बहुत प्रभावित हुए । इस प्रभाव के अधीन उन्होंने अमरीकी समाज, राजनीति और विशेषतः वहां के संवैधानिक इतिहास का गहरा अध्ययन किया।

अमरीका में रहने वाले हब्शी (नीग्रो) लोगों पर भी उन्होंने दृष्टिपात किया, उन्होंने इन दुर्भाग्यपूर्ण हब्शियों को अपनी सामाजिक समता प्राप्ति के लिए संघर्ष करते हुए भी भांपा। उन दिनों अमरीकी हब्शियों के नेता और सुधारक बुक्कर वाशिंगटन थें । उनके समाज सुधारक प्रयासों का अम्बेडकर महोदय के हृदय-पटल पर बहुत गम्भीर प्रभाव पड़ा। अमरीका के हब्शी भी थोड़ी बहुत मात्रा में भारतीय अछूतों से असमानता रखते हैं।

उन दिनों अम्बेडकर महोदय ने अपने पिता के एक मित्र को एक पत्र लिखा जिसमें दो वाक्य विशेष रूप से पाठनीय हैं। उन्होंने लिखा कि-"हमें अपना यह मन्तव्य त्याग देना चाहिए कि बालक के वास्तविक जन्मदाता उसके माता-पिता हैं, वास्तविकता यह है कि बालक स्वयं अपने ही कर्मो की पैदावार हैं। लड़कों के साथ-साथ हमें लड़कियों को भी शिक्षित करना चाहिए।"

यह दो वाक्य स्पष्टतः इस तथ्य की सारे संकेत करते है कि भीमराव अम्बेडकर में नेतृत्व के सद्गुण उत्पन्न हो रहे थें। "होनहार बिरवान के होत चिकने पात" उन्होंने अमरीका की एक गोष्ठी में " भारतीय जाति-पांति" संबंधी अपना स्वयं का लिखा एक लेख पढ़ा। उस लेख में उन्होंने बड़े विद्धतापूर्ण विश्लेषण से हिन्दुओं में प्रचलित चातुर्वर्ण के सिद्धांत पर प्रकाश डाला हैं। उन्हीं दिनों आपने भारत के इतिहास संबंधी एक दूसरा लेख अधिक परिश्रम और गम्भीर अध्ययन के आधार पर तैयार किया था। उनका यह अपूर्व परिश्रम और प्रयास निरर्थक सिद्ध नहीं हुआ। इस विश्लेषण के आधार पर अम्बेडकर महोदय को कोलम्बिया विश्वविद्यालय ने पी0एच0डी0 की उपाधि (डिग्री) प्रदान की थी। तब से वह डाक्टर भीमराव अम्बेडकर बन गए।

अपने अमरीका में निवास के दौरान उनकी मुलाकात भारत के प्रसिद्ध नेता लाला लाजपतराय से न्यूयार्क में हुई थी। लाला जी ने डाक्टर अम्बेडकर को अपनी राजनीतिक विचारों से प्रभावित करके उन्हें सहमत करना चाहा किन्तु डाक्टर साहेब ने उन्हें साफ उत्तर दिया कि फिलहाल वह अपनी शिक्षा के लक्ष्य को छोड़ कर किसी दूसरी ओर ध्यान नहीं देना चाहते क्योंकि इसी प्रतिज्ञा पर उन्हें महाराजा बड़ौदा ने छात्रावृत्ति भी प्रदान की हैं।

<u>इंग्लैंड में शिक्षाः-</u>

अमरीका में सफलतापूर्वक शिक्षा समाप्त करके डाक्टर अम्बेडकर अब इंग्लैंड शिक्षा पाने गए। लन्दन में आपने जगत् प्रसिद्ध लन्दन स्कूल आफ इकोनामिक्स एण्ड पोलिटिकल साइंस में दाखिला लिया।

डाक्टर साहेब जब बम्बई पधारे तो उनके सम्मान में एक शानदार जलसा किया गया। जलसे में शामिल वक्ताओं ने उनकी विद्या संबंधी सफलताओं को जी भरकर सराहा। उन्हें अपनी प्रतिज्ञानुसार बड़ौदा सरकार में जाने की चिन्ता थी किन्तु पास पैसा नहीं था। दैव-योग से उन्हें उसी समय के दौरान ऐसी चिन्ताजनक

हालत में थामसकुक एण्डसन की तरफ से अपने उस सामान के नुकसान के बदले में कुछ न धन मिला जो उन्होंने इस एजेन्सी की मार्फत भारत भेजा था। जिस जहाज के जरिए उन्होंने अपना सामान भेजा था, युद्धकाल होने के कारण वह समुद्र में डुबो दिया गया था।

यह पैसा उसी नुकसान का मुआवजा था भरपाई थो। यह पैसा हाथ में आने पर डाक्टर साहेब प्रसन्न भी हुए और दुखी भी। प्रसन्न इसलिए हुए कि ऐसे कठिन समय में उनके हाथ कुछ धन लगा और दुखी इसलिए कि यूरोप में रहते हुए उन्होंने जो सैकड़ों पुस्तकें दो बरसों में अपने स्वाध्याय के लिए और अपनी रुचि अनुसार उपलब्ध की थी जहाज के डूबने के कारण उन सबसे वंचित होना पड़ा। यह कहना अनुचित न होगा कि डाक्टर साहेब को पुस्तकों से अत्यन्त प्रेम था। बम्बई में उनका निजी पुस्तकालय, राजनीतिक, अर्थ और समाजशास्त्र आदि अनेक संविधानों एवं इतिहास संबंधी पुस्तकों का एक अद्भुत और कहीं अन्य स्थानों पर अनुपलब्ध पुस्तकों का अनूठा भंडार था।

बड़ौदा राज्य में छूतछात का कटु अनुभव :-

डाक्टर साहेब जब बड़ौदा स्टेशन पर पहुँचे तो उनके स्वागत के लिए वहां कोई भी व्यक्ति उपस्थित नहीं था। सारे नगर में यह सनसनी फैलाने वाली खबर पहुँच गई कि एक अछूत नवयुवक बड़ौदा राज्य में एक उच्च पदाधिकारी बनकर आ रहा है। नगर भर में किसी भी होटल, किसी अतिथि गृह या अन्य स्थान पर उन्हें ठहरने की इजाजत नहीं मिली क्योंकि वह एम0ए0,पी0एच0डी0 की उच्च उपाधियों से युक्त होते हुए भी आखिर थे तो अछूत ही। आखिरकार एक पारसी धर्मशाला में ठहरे। यद्यपि महाराजा उन्हें फौरन वित मंत्री बनाना चाहते थें। किन्तु अधीनस्थ सवर्ण अफसरों की कृपा न होने के कारण उन्हें मिलिटरी सैकेटरी का ही पद प्राप्त हुआ।

उनके अधीनस्थ कर्मचारियों में से कोई भी उनके समीप जाना पसन्द नहीं करता था। फाइल अथवा अन्य सरकारी कागज पत्र देने के समय दूर से ही उनको मेज पर फेंक दिये जाते थें। दफ्तर में उनके पीने के पानी की भी कोई व्यवस्था नहीं थी। वह अपना सारा समय एक पब्लिक लायब्रेरी में ही गुजारा करते थें। प्यास लगती तो वहां जाकर पानी पीते। इस लायब्रेरी के स्वामी भी पारसी ही थें। इन पारसियों को जब पता चला कि यह सूट-बूट पहनने वाला अपटुडेट उच्च पदाधिकारी जाति का महार है तो सारे पारसी लाठियां उठाकर उन्हें मारने के लिए उतारू हो उठे, और ऐसी गंदी गालियां बकी जिन्हें सुनकर ऐसा मालूम होता था कि पारसी जाति में सभ्यता का दिवाला निकल चुका है। डाक्टर साहेब ने आठ घण्टे की मोहलत मांग कर पारसियों की धर्मशाला को छोड़ दिया।

अब धर्म भीरू या धार्मिकता के ठेकेदार भारत के एक नगर में उनके रहने के लिए कोई ठिकाना नहीं था। सिख हिन्दू, किसी मुसलमान ने उनको शरण नहीं दी। अन्ततः निराश और हताश होकर वह एक वृक्ष के नीचे बैठ गए। थके-मान्दे तो थे ही ऊपर से भूख-प्यास ने भी पीड़ित कर रखा था। ऐसी दयनीय दशा में वह फूट-फूट कर रोने लगे। क्या करते वह निराश्रित थे। सारी रात नंगे आकाश के नीचे, नंगी जमीन पर भूखे-प्यासे पड़े तड़पते रहे।

दूसरे दिन मानवता के साथ इस अन्याय भरे वातावरण से दुखी होकर वह बम्बई लौट गए। नये-पुराने हितैषी कैलुकर महोदय ने डाक्टर साहब से बीती सारी घटना का समाचार महाराजा बड़ौदा को लिख भेजा। अन्ततः कैलुसकर की सहायता से बड़ौदा के एक ब्राह्मण प्रोफेसर ने बड़ी उदारता से उन्हें अपने मकान के एक कमरे में ठहरने का वचन दिया, किन्तु जैसे ही प्रोफेसर की कट्टर पुरातपंथी पत्नी को पता चला कि उनका पति एक अछूत को अपने मकान में एक कमरा रहने के लिए देने पर तैयार है तो उसके क्रोध का पारावार न रहा। प्रोफेसर धर्मकुण्ठा में पड़ गया। जब डाक्टर साहब बड़ौदा रेलवे स्टेशन पर पहुँचे तो

अध्ययन में इस तत्परता से तल्लीन हुए कि प्रायः देखा गया कि उस लायब्रेरी में वह सबसे पहले प्रवेश करते और सबसे पीछे लायब्रेरी से बाहर आते। कई बार वह पुस्तकों के अध्ययन में इस कदर मग्न हो जाते कि उन्हें घड़ी पर टाइम देखना भी याद न रहता। जिस समय वह बाहर निकलते तो उनके कोट पतलून की सब जेबें उन कागजों के पुरजों से भरपूर होती जिन्हें वे नोट कर लेते थें। ब्रिटिश लायब्रेरी के अलावा इण्डिया आफिस लायब्रेरी, लन्दन यूनिवर्सिटी लायब्रेरी और लन्दन की अन्य प्रसिद्ध लायब्रेरियों में भी उन्हें पुस्तकें पढ़ते देखा गया।

उन दिनों खाने-पीने की बड़ी असुविधा और कष्ट रहा। जिस अंग्रेज बुढ़िया के घर में वह (पेइंगगैस्ट) रहते थें वह स्वभाव की तीखी और कंजूस थी। डाक्टर साहेब को नाश्ते में एक प्याला चाय और एक टोस्ट के अलावा खाने को कुछ भी नहीं मिलता था।

उस दौरान उन्हें जितना भूख ने सताया उसे वह सारा जीवन न भूल सके। उस अंग्रेज बुढ़िया की तंगदिली का वह अक्सर जिक्र किया करते थें। कभी-कभी उस वृद्धा की खुशी और शांति के लिए शुभकामना भी किया करते थें। कुछ दिन उनका दिन भर का भोजन था, एक प्याला चाय और छोटे-छोटे और पतले चार पापड़। वह अपने उस हितकरी भारतीय के कृतज्ञ थे जिन्होंने बढ़ी दयालुता से उन्हें यह पापड़ दिए थें। भूख को भुलाने के लिए वह सदा पुस्तकों के अध्ययन में ही तल्लीन रहते थें यह उनका दैनिक कार्यक्रम हो चुका था।

जून 1921 में उन्हें एम0एस0सी0 की डिग्री मिली। अक्टूबर 1922 में उन्होंने अपना प्रसिद्ध थीसिस "रूपये की समस्या" को पूर्ण किया। इस समय के आस-पास ही उन्होंने बैरेस्टर की परीक्षा भी कर ली किन्तु अभी तक उनकी विद्या की पिपासा नहीं मिटी थी। इसी लक्ष्यपूर्ति के लिए वह जर्मनी जा पहुँचे और वहीं की बॉन यूनिवर्सिटी में दाखिला ले लिया किन्तु बॉन विश्वविद्यालय में अभी कुछ महीने

भी न पढ़ पाए थे कि पैसा खत्म हो गया और उन्हें भारत में वापिस लौटना पड़ा। जून 1923 से उन्होंने बम्बई में बैरेस्टर करनी शुरू कर दी।

अपनी जाति की उन्नति के लिए क्रियात्मक गतिविधियां :-

अम्बेडकर को प्रकृति ने बहुत अच्छी बुद्धि प्रदान की। वह अपने इरादों के मजबूत और भावुक हृदय रखते थे। अपने विद्यार्थी काल के दीर्घ समय में अपने सब कष्टों के बावजूद वह अपनी अछूत जाति के व्यक्तियों के साथ सवर्ण हिन्दुओं के कठोर, अन्यायकारी और अमानुषिक व्यवहार का गम्भीर अध्ययन करते रहे।

उनके मस्तिष्क में सवर्ण हिन्दुओं के अनैतिक व्यवहार की अनुभूतियां जुल्म और अन्याय के संस्कार अमिट और कभी न भूलने वाला स्थान बनाए हुए थें। उन्होंने इसी महीने वह बौद्धों की एक कांफ्रेंस में कोलम्बों (श्रीलंका) गए। वहां उन्होंने भारत में बौद्ध धर्म के पतन के कारणों पर प्रकाश डालते हुए कहा कि सम्पूर्ण तौर में बौद्ध धर्म भारत में नहीं रहा किन्तु आध्यात्मिक रूप से भारत में बौद्ध धर्म मौजूद हैं। उन्हीं दिनों एक प्रसिद्ध पत्रिका में बौद्ध धर्म के भविष्य पर अपने विचार प्रकट करते हुए कहा कि सारे संसार के लिए कोई धर्म उपयोगी सिद्ध हो सकता है तो वह केवल बौद्ध धर्म ही हैं।

1950 में उन्होंने बम्बई के एक बौद्ध मंदिर में भाषण देते हुए घोषणा की कि वह अब अपनी शेष जीवन बौद्ध धर्म के प्रसार और प्रचार में ही लगा देगें।

1955 में उन्होंने औरंगाबाद कॉलेज का नाम मिलिन्द महाविद्यालय रखा और उसके प्रांगण या परिसर का नाम नागसेनवन रखा।

पाठकों को स्मरण रहे कि ईसा से पूर्व दूसरी शताब्दी में एक यवन (ग्रीक) विजेता मिलिन्द सारे उत्तरीय भारत का शासक बन बैठा था। उस युग के दर्शन और धर्म के प्रसिद्ध विद्धान भिक्क्षु नागसेन ने शास्त्रार्थ में मिलिन्द को बौद्ध धर्म के सद्गुणों का अनुयायी बना दिया था और उस पर बौद्ध धर्म की इतनी पक्की छाप पड़ने लगी कि अन्त में उसने बौद्ध धर्म को स्वीकार कर लिया था।

'मिलिन्द प्रश्न' नामक प्रसिद्ध पुस्तक भिक्खुवर नागसेन मिलिंद के साथ किए विचार-विनिमय, प्रश्नोत्तरों और शास्त्रार्थ पर ही अवलम्बित हैं। अपने परिनिर्वाण से लगभग दो मास पहले बाबा साहेब ने अपने लाखों अछूत अनुयाइयों के साथ नागपुर में 14 अक्टूबर 1956 को बौद्ध धर्म की दीक्षा ले ली थी।

हिन्दू कोड बिल और मंत्रीमण्डल से इस्तीफा :-

बाबा साहेब की हार्दिक इच्छा थी कि हिन्दू कोड बिल पास हो जाय और उसे कानूनी दर्जा मिल जाए।

हिन्दू कोड बिल पास होने पर हिन्दुओं के विवाह तथा दंतक ग्रहण में जाति-पांति भेद मिट जाना था और इस कानून की रूह से उत्तराधिकारी (सम्पत्ति) में स्त्री-पुरूष दोनों बराबर के हिस्सेदारी या अंशभागी बन जाने थे। हिन्दू कोड बिल के कारण सारे भारत में हंगामा सा उठ खड़ा हुआ था।

प्रधान मंत्री नेहरू जो उदार विचार रखते थे और शुरू-शुरू में हिन्दू कोड बिल को कानूनी शक्ल देने के पक्ष में थे, वह भी कट्टरपंथी हिन्दू विचारधारा के उत्पात से इस बिल को पास कराने में ढीले पड़ गए।

इसका प्रतिरोध करते हुए डाक्टर साहेब ने मंत्रीमण्डल से त्याग पत्र दे दिया था।

इस्तीफा के कारणों पर प्रेस में बयान देते हुए डाक्टर साहेब ने कहा था कि हिन्दू कोड बिल पास करने में नेहरू ने उनका पूरा साथ नहीं दिया। उन्होंने अपना यह वायदा कि मुझे योजना मंत्री पद दिया जाएगा भी पूरा नहीं किया। उन्होंनें अपने वयान में यह भी कहा कि भारत सरकार की विदेशनीति गलत है और अछूतों की भलाई या कल्याण के विषय में भारत सरकार बिल्कुल शेड्यूल्ड कास्ट फैडरेशन की ओर प्रवृत्त किया। उन्होंने कांग्रेस का घोर विरोध और निन्दा की और आगे आने वाले चुनाव की तैयारी शुरू कर दी। इस चुनाव में वह स्वयं भी उम्मीदवार थें किन्तु वह सफल न हो सकें।

जून1953 में वह अमरीका गए। वहां कोलम्बिया यूनिवर्सिटी ने जिसके वह विद्यार्थ रह चूके थे, भारत के संविधान निर्माण के ऐतिहासिक कार्य के उपलक्ष्य में उन्हें आदरणीय उपाधि (डिग्री) प्रदान की। डाक्टर साहेब ने यह डिग्री बड़ी प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार की।

अमरीका से वापसी पर उन्होंने अपना सारा चिन्तन अछूतों के कल्याण और बौद्ध धर्म पर केन्द्रित कर दिया। इस समया उनकी आयु साठ वर्षो से ऊपर हो चुकी थी। वह मधुमेह के रोगी तो थे ही वृद्धावस्था के कारण प्रायः उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता था।

ऐसी हालत में बाबा साहेब को औरंगाबाद कॉलेज (मिलिंद महाविद्यालय) की उन्नति की बहुत चिन्ता रहती थी। 1953 से 1956 तक डाक्टर बाबा साहेब दो बार औरंगाबाद पधारे और दोनों बार वहां दो-दो महीने रिहायश रखी। वह औरंगाबाद को अपना स्थायी निवास स्थान बनाना चाहते थे क्योंकि वहां रहने पर उनकों काफी स्वास्थ्य लाभ होता था।

14 अक्टूबर 1956 को उन्होंने नागपुर में बौद्ध धर्म की दीक्षा ली और 1956 के नवम्बर मास में भगवान बुद्ध के महापरिनिर्वाण संबंधी महोत्सव में सम्मिलित होने के लिए वह काठामांडू (नेपाल) गए। वहां से वापसी पर 6 दिसम्बर 1956 को उनका 26 अलीपुर रोड, दिल्ली पर अकस्मात् परिनिर्वाण हो गया। यद्यपि उनका परिनिर्वाण तो 5 दिसम्बर की रात को ही किसी समय हो चुका था किन्तु जनता को उनके देहान्त की सूचना 6 दिसम्बर को प्रातः 6 बजे ही मिली। दिल्ली के हजारों अछूत अनुयाइयों ने 6 दिसम्बर साय 6-7 बजे उनकी एक भव्य शवयात्रा निकाली। एक खुले स्थान पर उनका शव लोगों के दर्शनों के लिए फूलों से सजा कर रखा गया था।

यह जलूस 26 अलीपुर रोड, दिल्ली उनके निवास स्थान से आरम्भ होकर दिल्ली के मुख्य बाजारों में घूमा और हजारें नर-नारी और बच्चे उनकी शवयात्रा व उनके अन्तिम दर्शन कि लिए कड़ाके की सर्दी में घण्टों से इन्तजार कर रहे थें।

(ब) स्मरणीय तारीखें :-

1. 14 अप्रैल 1891	-	सूबेदार रामजी तथा श्रीमती भीमाबाई की चौदहवीं तथा अन्तिम संतान के रूप में मध्य प्रदेश महू छावनी में जन्म तिथि।
2. 1986	-	में बाबा साहेब की माता भीमाबाई की मृत्यु
3. नवम्बर 1900	-	में गवर्नमेन्ट वर्नाकुलकर हाई स्कूल सतारा में प्रवेश
4. अप्रैल 1906	-	में श्री भीखू वालड्गकर की पुत्री रमाबाई से विवाह
5. जनवरी 1908	-	में बम्बई यूनिवर्सिटी से मैट्रिक पास किया
6. जनवरी 1908	-	में एल्फेन्स्टन कालेज बम्बई में प्रवेश लिया
7. दिसम्बर 1912	-	में यशवन्तराव पुत्र का जन्म
8. जनवरी 1913	-	में फारसी और अंग्रेजी विषय लेकर बी.ए. की परीक्षा पास की।
9. फरवरी 1913	-	में पिता सूबेदार रामजी अम्बेडकर की मृत्यु
10. जुलाई 1913	-	में पोलिटिकल साइंस में सॅकाय (फैंकेल्टी) में शिक्षा प्राप्त करने के लिए न्यूयार्क विश्वविद्यालय कोलम्बिया में गायकवाड़ छात्रवृत्ति ली।
11. 1915	-	में मुख्य रूप में अर्थशास्त्र (इकोनोमिक्स) में तथा समाज शास्त्र, इतिहास, दर्शनशास्त्र, मानवशास्त्र तथा राजनीति के अन्य विषय लेकर एम.ए. पास किया।
12. मई 1916	-	में प्रोफेसर गोल्डनवीजर की मानवशास्त्रीय (आन्थ्रापोलोजी) गोष्ठी के सामने भारत में जातियों पर

लेख पढ़ा। यही लेख आगे जाकर मई 1917 में इन्डियन एन्टिक्वारी में प्रकाशित हुआ। यही लेख डाक्टर अम्बेडकर की कृतियों में सबसे प्रथम पुस्तक के रूप में भी प्रकाशित हुआ था।

13. 1916 - में पी0एच0डी0 की डिग्री प्राप्त करने के लिए नेशनल डिविडेन्ट आफ इन्डिया (एक ऐतिहासिक और विश्लेषणात्मक स्वाध्याय) के शीर्षक में एक थीसस लिखा।

14. जून 1916 - में स्कूल ऑफ इकोनोमिक्स एण्ड पोलिटिकल साइन्स लन्डन में पी0एच0डी0 डिग्री का काम सम्पूर्ण करके कोलम्बिया युनिवर्सिटी को छोडने के पश्चात् ग्रेजुएट विद्यार्थी के तौर पर दाखिला लिया।

15. 1917 - में कोलम्बिया यूनिवर्सिटी ने पी0एच0डी0 की डिग्री प्रदान की।

16. जून1917 - में एम0एस0सी0 (इकोनोमिक्स) के लिए थीसिस की तैयारी के लिए लन्डन में एक बरस व्यतीत करने के पश्चात् वह भारत में लौट आए। उनकी पढ़ाई का काम पूरा करने से पहले ही यह वापसी महाराजा बड़ौदा द्वारा दी गई छात्रवृति की समाप्ति के कारण जरुरी हो गई थी।

17. 1917 - में महाराजा बड़ौदा (गायकवाड़) द्वारा उन्हें मिलिटरी सैक्रेटरी के पद पर इस इरादे से नियुक्त किया गया था कि कुछ समय के अनुभव ग्रहण करने के पश्चात् उन्हें बड़ौदा राज्य का वित्त मंत्री बनाया जाएगा, किन्तु

इसके थोड़े दिनों के पश्चात् ही उन्हें जन्म से नीच जाति का मानकर लोगों द्वारा उनके साथ किये दुर्व्यवहार के कारण उन्हें यह पद छोड़ देना पड़ा।

18. 1917 - में भारत में स्मॉल होल्डिंग (अल्प क्षेत्र) और उनके उपायों पर पुस्तक प्रकाशित हुई।

19. 1918 - में फ्रैंचाइज पर साउथबोरो कमीशन के समक्ष गवाही दी।

20. नवम्बर1918 - में सैडनहम कालेज आफ कामर्स एण्ड इकोनोमिक्स बम्बई में पोलिटिकल इकोनोमी (राजनीतिक बचत) के प्राध्यापक (प्रोफेसर) हुए।

21. जनवरी1920 - में भारतवासी दलित वर्गो के हितैषी मूकनायक साप्ताहिक पत्र (मराठी) का प्रारम्भ किया।

22.सितम्बर1920 - में लन्डन स्कूल आफ इकोनोमिक्स एण्ड पोलिटिकल और इसके साथ-साथ वकालत पड़ने के लिए ग्रेज़ इन लन्डन में भी दाखिला लिया।

23. जून1921 - में यूनिवर्सिटी ऑफ लन्डन द्वारा एम0एस-सी0 (इको0) की डिग्री हासिल करने के लिए प्राविनशयल डिसैन्ट्रलाइजेशन आफ इम्पीरियल फाइनेन्स इन ब्रिटिश इन्डिया पर लिखा गया थीसस् स्वीकार कर लिया गया।

24. 1922 -23 - में जर्मनी की बोन यूनिवर्सिटी अर्थशास्त्र की पढ़ाई करने के लिए कुछ महीने व्यतीत किए।

25. मार्च1923 - में डी0एस0सी0 इको, की डिग्री प्राप्ति के लिए "प्रोब्लम आफ दि रुपी" इनका मूल स्रोत एवं इसका समाधान

नामक थीसस स्वीकार किया गया। यह थीसस लन्दन की पी0एस0 किंग एण्ड कम्पनी द्वारा दिसम्बर 1923 में प्रकाशित किया था। यही थीसस थेकर एण्ड कम्पनी बम्बई द्वारा "हिस्ट्री ऑफ इन्डियन करैन्सी एन्ड बैकिंग", वोल्यम I के शीर्षक से मई 1947 में दोबारा प्रकाशित हुआ।

26. 1923	-	में वकील बने।
27. अप्रैल1923	-	में भारत में वापसी
28. जून1923	-	में हाईकोर्ट आफ ज्यूडिकेचर कोर्ट बम्बई में वकालत का व्यवसाय प्रारम्भ किया।
29. जुलाई 1924	-	में दलित वर्गों के उत्थान के लिए बहिष्कृत हितकारिणी सभा की स्थापना की।
30.1925	-	में भारत में इम्पीरियल फाइनेन्स के प्रान्तीय विकेन्द्रीकरण पर एक विवेचनात्मक"ब्रिटिश भारत में प्रान्तीय अर्थव्यवस्था का विकास" पुस्तक रुप में प्रकाशित हुई।
31. 1926	-	में भारतीय करैंसी (सिक्के) पर रायल कमीशन (हिल्टन) यंग कमीशन के समक्ष गवाही दी।
32. 1926	-	में बम्बई प्रेजोडेन्सी की लेजिसलेटिव कौन्सिल के मैम्बर नामजद(मनोनीत) हुए।
33. मार्च 1927	-	में चावदार तालाब में पानी लेने में अछूतों के अधिकार की उपलब्धि के लिए महाड (रत्नागिरि जिला) पर सत्याग्रह किया।

34. अप्रैल1927	-	में 'बहिष्कृत भारत' नामक एक पाक्षिक पत्र निकालना आरम्भ किया।
35. मई 1928	-	में इन्डियन स्टेच्युटरी कमीशन (साइमन कमीशन) के समक्ष गवाही दी।
36. जून 1928	-	में गवर्नमेन्ट लॉ कालेज बम्बई में प्राध्यापक (प्रोफेसर) बने।
37. 1928-29	-	में साइमन कमीशन की बम्बई प्रेजीडेन्सी कमेटी के सदस्य बने।
38. मार्च 1930	-	में अछूतों के मंदिर प्रवेश अधिकार की प्राप्ति के लिए कालाराम मंदिर, नासिक पर सत्याग्रह किया।
39. दिसम्बर1930	-	में 'साप्ताहिक जनता' पत्र जारी किया।
40.1931से1932	-	में गोलमेज कान्फ्रेन्स लन्दन में डेलीगेट बने।
41. सितम्बर1932	-	में राम्जे मेकडानल्ड द्वारा कम्नुनल अवार्ड में अछूतों के पृथक् निर्वाचन प्रतिनिधित्व अधिकारों को गांधी जी की जीवन रक्षा के लिए छोड़कर गाँधी के साथ किये गये पूना पैक्ट पर हस्ताक्षर किए और संयुक्त निर्वाचन को मंजूर किया।
42. 1932- 34	-	में इंडियन कांस्टीट्यूशनल रिफार्म सम्बन्धी जवाएंट पार्लियामेण्ठी कमेटी के मैम्बर बने।
43. मई 1935	-	में श्रीमती रमाबाई अम्बेडकर (पत्नी) की मृत्यु
44. जून1935	-	में गवर्नमेन्ट लॉ कॉलेज बम्बई के प्रिन्सिपल और तभी ज्यूरिस प्रूडेन्स के पेरी प्रोफेसर बने।
45. सितम्बर1935	-	में येवला (नासिक जिला) की कान्फ्रेन्स में हिन्दू धर्म छोड़ने के निर्णय की घोषणा की।

46. दिसम्बर1935- में 1936 ईस्टर की छुट्टियाँ के दिनों में जात-पॉत तोड़क मन्डल,लाहौर (पंजाब) की ओर से की जाने वाली वार्षिक कान्फ्रेन्स में अध्यक्षता करने के लिए आमन्त्रित किए गए।

47. 1936 - में इस अवसर पर दिए जाने वाले भाषण के लिए तैयार किए गए प्रधान पदीय अभिभाषण में प्रकट किए विचारों को स्वागतकारिणी कमेटी द्वारा आग्रह किए जाने पर अभिभाषण नहीं दिया जा सका। यही अभिभाषण जातिवाद का उच्छेद (Annilation of caste) नामक शीर्षक से1936 में पुस्तक रुप में प्रकाशित हुआ। इस पुस्तक का दूसरा संस्करण 1937 में छपा और उस संस्करण में अभिभाषण के मूल विचारों के साथ गान्धी जी के हरिजन में दो लेख जिनमें गान्धी जी ने डाक्टर अम्बेडकर के अभिभाषण की आलोचना की थी और उस आलोचना पर डाक्टर अम्बेडकर ने अपना उत्तर दिया था, प्रकाशित हुए थें।

48. अगस्त1936 - में इन्डीपेन्डेन्ट लेबर पार्टी की स्थापना की।

49. जनवरी1937 - में बम्बई लैजिस्लेटिव असैम्बली में सदस्य (मैम्बर) निर्वाचित हुए।

50. जनवरी1939 - में गोखले सकूल आफ पालिटिक्स एण्ड इकोनोमिक्स, पूना के काले मैमोरियल व्याख्यान पर गवर्नमेन्ट आफ इन्डिया एक्ट 1935 में सुझाई गई आल इन्डिया फैडरेशन स्कीम की प्रखर आलोचना की। यह

व्याख्यान मार्च 1939 में फैडरेशन बनाम फ्रीडम शीर्षक के अधीन एक ट्रैक्ट के रुप में प्रकाशित हुआ।

51. जनवरी1940 - में थाट्स ओन पाकिस्तान (पाकिस्तान पर विचार) और इसका दूसरा संस्करण "पाकिस्तान या भारत का बंटवारा नामक शीर्षक फरवरी 1945 में प्रकाशित हुआ। इसी रचना का तीसरा संस्करण भारत का पोलिटिकल किस का, क्यों और कैसे शीर्षक से 1946 में पाकिस्तान या भारत का विभाजन प्रकाशित हुआ।

52. अप्रैल 1942 - में आल इन्डिया शैड्यूल्ड कास्ट्स फैडरेशन की स्थापना की।

53. जुलाई 1942 - में गवर्नर जनरल आफ इन्डिया की कार्यकारिणी परिषद् (एग्जीक्यूटिव कौंसिल) में लेबर मैम्बर बने।

54. दिसम्बर1942- में पैसीफिक रिलेशन इन्स्टीच्यूट के तत्वाधान में केनेडा में आयोजित कान्फ्रेन्स के अवसर पर इसके भारतीय सैक्शन को भारत में अछूतों की समस्याओं के सम्बन्ध में एक लेख प्रस्तुत किया। यह लेख कान्फ्रेन्स की कार्यवाही में मुद्रित हुआ और दिसम्बर 1943 में मिस्टर गांधी और अछूतों की मुक्ति ;Mr. Gandhi and Emancipation of the untouschables) नामक शीर्षक के अधीन पुस्तक रुप में प्रकाशित हुआ।

55. जनवरी1943 - में महादेव गोविन्द रानाडे के एक सौ एकवें जन्म दिवस के महोत्सव पर एक लिखित अभिभाषण पढ़ा। यहीं अभिभाषण रानाडे, गान्धी और जिन्ना के शीर्षक से पुस्तक के रुप में अप्रैल 1943 में प्रकाशित हुआ।

56. जून 1945 - में गांधी और कांग्रेस ने अछूतों के लिए क्या किया? पुस्तक प्रकाशित हुई?

57. अप्रैल1945 - में पीपल्स एजुकेशन सोसाइटी की स्थापना की।

58. अप्रैल1946 - में सिद्धार्थ कालेज बम्बई का उद्घाटन दिया।

59. जुलाई 1946 - में गवर्नर जनरल (वायॅसराय) की कौंसिल की एग्जीक्यूटिव कौंसिल की सदस्यता को छोड़ दिया।

60. सितम्बर1946- में ब्रिटिश गवर्नमेन्ट के हिन्दुस्तान को आजादी देने के निर्णयानुसार इण्डिया में नई सरदारी (प्रभुत्व) की उत्पत्ति होने पर अछूतों के लिए राजनीतिक हितरक्षण को देने के लिए हिज़मैजेस्टी की सरकार और विपक्षी दल के समक्ष प्रयास करने के लिए और कान्स्टीच्यूट असैम्बली और अन्तरिम सरकार में अनुसूचित जातियों को पृथक प्रतिनिधित्व के लिए कैबिनेट मिशन द्वारा प्रतिकूल की गई गलती के सुधार करने के लिए लन्डन में मिशन ले गए।

61. अक्टूबर1946- में इन्डो-आर्यन सोसाइटी में शूद्र कैसे और क्यों चौथे वर्णन में गिने गए इस खोज या अनुसन्धान पर "शूद्र कौन थे" नामक पुस्तक का प्रकाशन किया।

62. दिसम्बर1946- में "एक संयुक्त भारत का आह्वान " संविधान सभा में दिया गया पहला व्याख्यान।

63. मार्च 1947 - में मूलभूत अधिकार अनुसूचित जातियों के संरक्षण पर और भारतीय राज्यों की समस्याओं पर एक स्मरण पत्र जो "राज्य तथा अल्प संख्याएँ शीर्षक से प्रकाशित हुआ।

64. अगस्त1947 - में उन्हें संविधान असैम्बली द्वारा मसौदा (ड्राफ्टिंग) कमेटी के लिए नियुक्त किया।

65. अगस्त1947 - में लॉ मिनिस्टर बनकर नेहरु मंत्रिमंडल में शामिल हुए।

66. अप्रैल1948 - में कृष्णराव बी0 कबीर की पुत्री शारदा कबीर से (दूसरा) विवाह किया।

67. अक्टूबर1948- में अछूतों के उद्गम पर एक थीसस् लिखा, जो अछूत कौन और कैसे? शीर्षक पुस्तक के रुप में प्रकाशित हुआ।

68. अक्टूबर1948- में "महाराष्ट्र एक भाषाई प्रान्त के रुप में" इसे भाषाई प्रान्तीय कमीशन (धर कमीशन) को प्रस्तुत किया।

69. नवम्बर1948 - में ड्राफ्टिंग कमेटी के रुप में संविधान असैम्बली में मसौदा प्रस्तुत किया।

70. जून1950 - में औरंगावाद में मिलिन्द महाविद्यालय की स्थापना की।

71. दिसम्बर1950- में विश्व बुद्धिस्ट कान्फ्रेन्स को लाखों में प्रतिनिधि बने।

72. जुलाई 1951 - में भारतीय बौद्ध जनसंघ की रचना की।

73. सितम्बर1951- में बुद्ध उपासना पाठ नामक एक बुद्धविनय पुस्तिका का संकलन।

74. सितम्बर1951- में नेहरु मंत्रीमंडल से त्याग पत्र।

75. मई 1952 - में बम्बई के प्रतिनिधि के रुप में राज्य सभा के सदस्य बने।

76. मई 1952 - में कोलम्बिया विश्वविद्यालय द्वारा एल0एल0डी0 की आदरी डिग्री प्रदान की गई।

77. मई 1952 - में सिद्धार्थ कालेज, बम्बई कामर्स और अर्थशास्त्र विभाग का उद्घाटन किया।

78. दिसम्बर1954- में विश्व बुद्धिस्ट सम्मेलन रगूंन(वर्मा) में प्रतिनिधित्व किया।

79. मई 1955 - में भारतीय बौद्ध महासभा की स्थापना की

80. दिसम्बर1955- में भाषाई राज्यों पर विचार

81. जून 1956 - में सिद्धार्थ कालेज में कानून विभाग का उद्घाटन

82. अक दूबर1956- में नामपुर में बौद्ध धर्म की दीक्षा ली।

83. अक्टूबर1956- में काठमान्डू में नवबौद्ध के रुप में प्रतिनिधित्व किया

84. दिसम्बर1956- में 26 आमीपुर रोड, दिल्ली निवास पर परिनिर्वाण।



अध्याय -3

साहित्य का पुर्नावलोकन

निःसंदेह, सामाजिक अनुसन्धान के परिप्रेक्ष्य में सामाजिक शोध के प्रमुख सोपानों के अन्तर्गत "साहित्य का पुनरावलोकन" तथा पूर्व अध्ययनों की समीक्षाऐं कर ली जाय तो यह जान लेता है कि प्रस्तुत अनुसांधन कार्य अनुभविक रूप में सम्पादित किए जा चुके है, तथा कौन-कौन सी अध्ययन पद्धतियां व प्रविधियां उन में प्रयोग की गयीं, और किस अनुसंधान-अभिकल्प को अपनाया गया; साथ ही तथ्यसम्बन्धित प्रमुख निदान तथा समस्याऐं क्या-क्या रहीं है? यह निर्विवाद सत्य है कि प्रत्येक सामाजिक समस्या का देश एवं परिस्थियों से घनिष्ठ तथा प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है, अतः इस दृष्टि से भी पूर्व अध्ययनों से सम्बन्धित साहित्य की समीक्षा करना अनुसंधान के लिए महत्वपूर्ण ही नही होता; अपितु कि अनिवार्य आवश्यकता होती है। परिवर्ती परिवेश में अपने अनुसंधान कार्य में क्या-क्या समस्याऐं जनित हो सकती हैं? किन पद्धतियों व प्रविधियों से अध्ययन करना उपयुक्त रहेगा? किन-किन पहलुओं, आयामों तथा कारकों का अध्ययन; पुर्व (अतीत) में हो चुका है? और किन पहलुओं का नहीं; तथा किस दृष्टिकोण से अध्ययन करना अवशेष है? अध्ययन किस भॉति (कैसे) किया जाय; कि अनुसंधान कार्य सरलता, सहजता तथा सुगमता से वस्तुनिष्ठ तथा वैज्ञानिक रूप में पुर्ण हो जाय तथा शोधकर्ता को समय,धन तथा श्रम भी कम अपव्यय करना पड़े; इत्यादि यह सब कुछ एक अध्ययनकर्ता को साहित्य के पुनरावलोकन तथा पूर्व अध्ययनों की समीक्षा कर लेने से स्पष्ट हो जाता है। इस प्रसंग में प्रो. बेसिन का कथन विशेष रूप से उल्लेखनीय है। बेसिन एफ.एच.1 (1962:42) के अनुसार,

"प्रत्येक अनुसंधान कार्य में सम्बन्धित साहित्य एवं पूर्व अध्ययनों की समीक्षा"[1] अनुसंधान योजना का सर्वाधिक महत्वपूर्ण सोपान हुआ करता है क्योंकि प्रत्येक अनुसंधान कार्य, आरम्भ में अस्पष्ट होने के कारण दुरूह एवं जटिल प्रतीत होता है। सम्बन्धित साहित्य के पुनरावलोकन से अनुसंधान की जटिलता एवं अस्पष्टता दोनों ही समस्याऐं लगभग समाप्त हो जाती है। इसका कारण यह है कि साहित्य के पुनरावलोकन से यह स्पष्ट हो जाता है कि शोध अध्ययन के लिए विश्वसनीय, तथा वस्तुनिष्ठ अध्ययन-सामग्री किस भाँति तथा कैसे प्राप्त हो सकती है? साहित्य के पुनरावलोकन तथा समीक्षा करने के कुछ अन्य प्रमुख लाभ इस प्रकार है-

1. अध्ययनकर्ता को शोध समस्या के सन्दर्भ में सामान्य ज्ञान विकसित हो जाता है।
2. अनुसंधान कार्य हेतु अनुसंधान प्रारूप एवं उपयोगी तथा प्रविधियां अनुसंधित्सु को स्पष्ट हो जाती है कि अध्ययन कैसे सम्पादित करना है।
3. साहित्य के पुनरावलोकन से अध्ययनकर्ता को अनुसंधान सम्बन्धी भ्रमात्मक तथा सन्देहात्मक स्थितियां सुस्पष्ट हो जाती है; सम्प्रति अनुसंधान कार्य के सम्बन्ध में अनुसंधानकर्ता का शोध स्पष्ट हो जाने की बजह से अध्ययन करने में सरलता हो जाती है। इस प्रकार साहित्य के पुनरावलोकन तथा पुर्व अध्ययनों की समीक्षा कर लेने से अध्ययनकर्ता को अनुसंधान हेतु शोध-प्रारूप, अध्ययन-पद्धतियां तथा प्रविधियों के ज्ञान के अतिरिक्त, दिशा बोध हो जाता है क्योंकि ऐसा करने से अनुसंधित्सु में अतिरिक्त अभिज्ञान तथा अन्तर्दृष्टि विकसित हो जाती है।

प्रोफेसर बोर्ग जी.पी. (1963:48) के शब्दों में, "सम्बन्धित साहित्य का पुनरावलोकन किसी भी अनुसंधानकर्ता को इस योग्य बना देता है िकवह पूर्व में किए हुए अनुसंधान कार्यो का पता लगा सकें, और उनका अध्ययन करके

1. बेसिन, एफ.एच. (1962): व्यवहारिक विज्ञानों में साहित्य समीक्षाऐं, मैकमिलन कम्पनी (प्रा.लि.)मद्रास,पृष्ठ-40

तथ्यसम्बन्धित समीक्षा कर सके ऐसा करने से अध्ययनकर्ता अपने अनुसंधान कार्य के लिए उपयुक्त उपकरणों तथा पद्धतियों इत्यादि का उचित चयन करके अतिरिक्त ज्ञानार्जन का आधार पर अनुसंधान हेतु स्पष्ट दिशा प्राप्त कर लेता है''।[1]

सर्वश्री पुरूषोत्तम (1991:110) के अनुसार ''सामान्यतः मानव-ज्ञान के तीन पक्ष-(1) ज्ञान को एकत्रित करना (2) एक दूसरे तक पहुँचाना (3) अतिरिक्त ज्ञान में वृद्धि करना, होते हैं। ये तीनों ही मूलभूत तत्व अनुसंधानों में विशेष रूप से महत्वपूर्ण होते है, जो कि वास्तविकता के समीप/निकट आने के लिए निरन्तर प्रयासरत रहते हैं। अतिरिक्त ज्ञान के अर्जन तथा विस्तृत ज्ञान-भण्डार में इनका योगदान, प्रत्येक क्षेत्र में मानव द्वारा किए गए निरन्तर प्रयासों की सफलता को सम्भव बनाता है। उसी भाँति अनुसंधान-प्रक्रिया में ''साहित्य का पुनरावलोकन'' अनुसंधान उपक्रम का एक ऐसा महत्वपूर्ण वैज्ञानिक सोपान होता है; जो कि वर्तमान के गर्त में निहित होता है अर्थात् मनुष्य अपने अतीत में संचरित एवं आलेखित ज्ञान के आधार पर अनुसंधान कार्य के माध्यम से नवीन ज्ञान का सृजन करता है।

सर्वश्री सिंह एस. पी. (1975:14) के अनुसार, किसी भी शोध-समस्या का चयन कर लेने के पश्चात, यह आवश्यक ही नहीं; अपितु शोध की अनिवार्य आवश्यकता होती है कि उस अनुसंधान-विषय से सम्बन्धित उपलब्ध साहित्य का पुरावलोकन कर; तथ्यसम्बन्धित विषयगत समीक्षाएं कर ली जांय क्योंकि ऐसा करने से-

1. शोधकर्ता के मन पटल में अध्ययन-समस्या के सन्दर्भ में एक स्पष्ट अन्तर्दृष्टि तथा ज्ञान बोध विकसित हो जाता है।

---

1. वोर्ग, जी.वी. (1963): सामाजिक विज्ञानों के अनुसंधानों में साहित्य का सिंहावलोकन, जैन ब्रदर्स एण्ड संस पवलीसर्स एण्ड डिस्ट्री ब्यूटरस बाम्बे, पृष्ठ-48

2. शोधकर्ता को अनुसंधान कार्य हेतु उपयुक्त पद्धतियों तथा प्रविधियों का आभास तथा समुचित ज्ञान हो जाता है।

3. साहित्य की समीक्षा; अध्ययनार्थ निर्मित परिकल्पनाओं/शोध-प्रश्नों के निर्माण में सहायक होती है।

4. विभिन्न शोध-अध्येताओं द्वारा एक ही अनुसंधान कार्य को फिर से दोहराने की गलती नहीं हो पाती और अध्ययन-समस्या से सम्बन्धित उन आयामों (पहलुओं) पर, जिन पर अन्य शोध-अध्येताओं ने ध्यान नहीं दिया अथवा अछूते रह गए; या फिर अज्ञानतावश छूट गए; शोधकर्ता को उन समस्त अछूते आयामों का भी आभास हो जाता हैं।

सर्वश्री स्टॉउफर सेम्युल रिब्यू (1962:73) का कहना है कि सम्बन्धित साहित्य के गहन अध्ययन एवं उसकी समीक्षा के अभाव के अभाव में कोई भी अन्वेषण कार्य करना, "अन्धे के तीर" के तुल्य होता है। साहित्य समीक्षा के अभाव में कोई भी अनुसंधान कार्य एक कदम भी प्रगति पथ पर अग्रसर नहीं हो सकता; जब तक कि अनुसंधानकर्ता को इस बात का ज्ञान तथा जानकारी नहीं है कि प्रस्तुत अनुसंधान के क्षेत्र में किन-किन पक्षों पर कितना कार्य हो चुका है? कौन-कौन से स्रोत प्राप्त है? तब तक वह अध्ययनकर्ता न तो अध्ययन-समस्या का चयन कर सकता है, और न ही उसकी रूपरेखा तैयार कर, अनुसंधान कार्य को गति प्रदान कर सकता है। इसका मौलिक कारण यह है कि प्रत्येक अनुसंधान कार्य का प्रमुख उद्देश्य; किसी समस्या विशेष पर नवीन दृष्टिकोण से चिन्तन तथा विचार करके उसमें नवीनता लाना अथवा समस्या की नवीन ढंग से तार्किक व्याख्या प्रस्तुत करना होता है। उपरोक्त समस्त प्रतिनिधि बिन्दुओं को दृष्टिपथ में रखकर शोधकर्ता ने अपने अनुसंधान कार्य के सुचारू संचालन तथा सफलता हेतु अध्ययन करने से पूर्व सम्बन्धित साहित्य का पुनरावलोकन तथा पूर्व अध्ययनों की

समीक्षा करने का प्रयास किया है ताकि प्रस्तुत अध्ययन को उचित दिशा एवं वैज्ञानिक स्वरूप प्राप्त हो सके''।[1]

धनंजय कीर (1926:38): 'लाइफ एण्ड मिशन' में डा0 अम्बेडकर के औद्योगीकरण के सम्बन्ध विचारो पर प्रकाश डालते हुए कहते कि पदिबिना आहान के मय के विना कहा जाये तो औद्योगीकरण से तीव्रगति से और जमाखोरी का अत्याधिक रूप से मदद करेगा।

राहुल सांकृत्यायन (1957): 'धर्मदूत' के अंक 3 मास जुलाई के निवन्ध अछूतोंद्धार के भगीरथी जो प्रयास डा0 अम्बेडकर द्धारा किए गये उनका उल्लेख जिन शब्दों में किया वे निम्नलिखित हैं- ''उन्होंने अपने वैयक्तिक अनुभव से देख लिया था, कि जिस वर्ग में उनका जन्म हुआ उसके साथ कितने अत्याचार युगों से हो रहें हैं। सामाजिक ही नहीं, सांस्कृतिक और आर्थिक भीषण अत्याचार थे। लेकिन इस वैयक्तिक अनुभव को उन्होंने अपने निजी बन्धनों को ढीला करने के लिए नहीं इस्तेमाल किया। उन्होंने अपने भारतवर्ष के सबसे अधिक उत्पीड़ित वर्ग को सब तरह से उठाने का बीड़ा उठाया। इसमें तो सन्देह ही नहीं कि इस वर्ग के लिए बाबा साहब ने जितना कठिन परिश्रम किया, उतना किसी व्यक्ति ने आधुनिक युग में नहीं किया। सच तो यह है कि उन्हीं के भगीरथ प्रयत्न से पहाड़ जैसे बांध पर दरार हुई और आगे का रास्ता खुला''।[2]

जाटव, डी. आर (1963:244): 'सोसल फिलोसफी ऑफ डॉ. अम्बेडकर' डॉ. अम्बेडकर के चिन्तन शैली के लक्षणों को निम्नवत उल्लेख किया है- (1) मानव मात्र के मध्य समानता, (2) प्रत्येक मनुष्य अपने आय में साध्य है, (3) प्रत्येक मानव में सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक तथा धर्म की स्वतंत्रता का स्वत्व है, (4) प्रत्येक मानव को अपनी चाहें पूर्ण करने और अभय होना चाहिए, (5) स्वतंत्रता,

1. सर्वश्री स्टॉउफर सेम्युल रिव्यू (1962:73): ए मैजर स्टैप आफ इन्वेस्टीगेशन इन सोसल साइन्सेज,अमेरिकन सोशियोलोजीकल रिव्यू अंक 23, पृष्ठ-73
2. राहुल सांकृत्यायन (1957): 'धर्मदूत' अंक- 3, मास-जुलाई, सारनाथ।

समानता, बन्धुत्व और शोषण से मुक्ति (व्यक्ति की व्यक्ति से, वर्ग की वर्ग से तथा राष्ट्र की राष्ट्र से), (6) संसदीय लोकतंत्र के नीचे जन तंत्रात्मक समाज को बनाये रखना चाहिए, (7) समाज परिवर्त को यंत्र के रूप में अहिंसा में विश्वास करना चाहिए, (8) वर्ग संघर्ष की उपेक्षा शांति स्थापना के लिए प्रेरित करने वाली विधियों को ग्रहण करना चाहिए और सम्भव हो तो नागरिक युद्धों को भी, (9) अध्यात्मिक अनुशासन की, किसी भी अन्ध विश्वास के सिद्धांत एवं वाद की उपेक्षा करना चाहिए तथा (10) सारभौमिक प्रेम,समानता, मानवीय बन्धुत्व जैसा की बुद्ध के विचार थे सशक्ति नीव रखना चाहिए"।

परिपूर्णानन्द वर्मा (1991:5-6): 'देशभक्त डा. अम्बेडकर' में लिखते हुए उल्लेख करते हैं कि, "भारत की सामाजिक धारा में दूषण, त्रुटि तथा दुर्बलता को दूर कर समस्त भारत, हिन्दू समाज तथा हर श्रेणी को एक पवित्र सूत्र में बांधकर उसकी बिगड़ती स्थिति को सुधारने के लिए डा. अम्बेडकर ने सबसे दुर्बल अंग का सुधारने के लिए तथा राष्ट्र के मूलश्रोत में प्रवाहित करने के लिए दलितोंद्धार का आन्दोलन उठाया। डा. अम्बेडकर ने अकेले उसी दलित समाज से मिलकर अपनी प्रतिमा, बुद्धि तथा ज्ञान का शस्त्र लेकर अहिंसक युद्ध प्रारम्भ कर अभूतपूर्व कार्य किया तथा दलित वर्ग का ही नहीं समूचे राष्ट्र के हित में था। राजनीति के क्षेत्र में 'अखण्ड भारत' का उद्घोष करने वाले महान नेताओं में उनकी भी गणना है। यही नहीं वे स्वतंत्रता को भीख से नहीं प्राप्त करना चाहते थे। वे साफ कहते थे-"स्वतंत्रता भीख से नहीं मिलती इसके लिए संघर्ष करना पड़ेगा"। हिन्दू समाज की कुरीतियों में केवल छुआछूत पर ही उनका ध्यान नहीं था। वे हिन्दू समाज के हर अंग में व्याप्त बुराई को दूर करने का उपदेश देते रहते थे। अद्भुत प्रतिमा सम्पन्न इस महापुरूष का सबसे बड़ा कार्य स्वराज्य के लिए भारतीय संविधान की रचना है। इस महान कृति पर विधिशास्त्र विशारद लोग ही प्रकाश डाल सकते हैं। पर इस व्यक्ति के महत्ता की एक कड़ी, पुरानी घटना मुझे याद है। जुलाई 1942 डा.

अम्बेडकर भारत के गवर्नर जनरल की परामर्शदात्री कार्य कारिणी समिति के सदस्य मनोनीत किए गये थे। उन्हें श्रमविभाग दिया गया था। 1943-44 में, मै दिल्ली गया था। और पुरानी केन्द्रीय असेम्वली में कार्यवश कई बार जाने का मौका मिला था। उन दिनों असेम्वली के अधीक्षक दक्षिण भारत के श्रीराव थे। बातचीत में श्रीराव ने कहा था- "इस समिति में बड़े-बड़े धाकड़ सदस्य हैं पर हम लोग केवल एक व्यक्ति से डरते हैं।" श्रीराव ने कहा-"ऐसा कोई सदस्य नहीं है जो हमसे कोई न कोई अनुचित या कायदे के विपरीत काम करने को न कहता हो। पर यही व्यक्ति कायदे कानून का इतना हिमायती है कि एक पग भी नियम विरूद्ध या नीति विरूद्ध न कार्य करता है न करने देता है।" आज के युग में मंत्रीमण्डल या विधायकों के लिए में यह सबसे बड़ी सीख या नसीयत समझता हूँ।"[1]

<u>एच0 आर0 जोधा (1989): 'अभूतपूर्व क्रांतिकारी विचारक'</u> शोध निबन्ध में लिखते है कि, "डा. अम्बेडकर के आर्थिक विचारों पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं- "बम्बई विधान परिषद् में उन्होंने मजदूरों के अधिकारों के लिए बड़ा संघर्ष किया। उन्होंने मजदूरों के हड़ताल करने के अधिकार की वकालत की। बैगार उन्होंने बम्बई विधान परिषद में प्रस्ताव पेश किया।

कृषि मजदूर : डॉ. अम्बेडकर के सामने केवल कारखानों के ही मजदूर नहीं थे अपितु खेतिहार मजदूरों की भलाई के लिए भी आवश्यक थी। उनके अनुसार काम की एक जैसी शर्ते जैसे प्रोवीडेन्ट फन्ड, रोजगार दाता की जुम्मेदारी, मजदूर का मुआवजा, स्वास्थ्य बीमा, निर्बलता पेंसन सभी प्रकार के मजदूरों पर लागू होने चाहिए। चाहे वह फेक्ट्री का मजदूर हो या खैतिहार मजदूर। उनके विचार में भूमिहीन मजदूरों की समस्या का हल हैं कि बंजर को जोता जाये और उसे भूमिहीन मजदूरों को दे दिया जाये। उनके अनुसार चकबंदी तथा लगान के कानून सबसे

---

1. परिपूर्णानन्द वर्मा (1991:5-6): 'देशभक्त डा. अम्बेडकर, उत्तर प्रदेश सन्देश वर्ष-1, अप्रैल, 1991, अंक-4

खराब है, इससे अछूता, जो भूमिहीन है, को कोई मदद नहीं होगी। केवल सामूहिक खेती ही मदद कर सकती है। जमीदारी प्रथा की समाप्ति के पश्चात् सरकार ही भूमि की मालिक होनी चाहिए, न कि उस पर काविज व्यक्ति, न उसको जोतने वाला किसान। जमीदारी समाप्त करने का स्वाभाविक प्रभाव सामूहिक खेती अथवा सहकारी खेती होनी चाहिए''।[1]

कुवेर, डब्लू0 एन0 (1989:49): ''राष्ट्र के निर्माता'' से उद्धृत करते हुए व्याख्या करते है कि, ''एक अस्पृश्य, जिसे बैलगाडी से ढक्का मार कर गिरा दिया गया था, जिसे अपने बचपन में स्कूल में लज्जित किया गया था, जो प्रोफेसर के रूप में अपमानित हुआ, जिसे होटल और छात्रावास से नाई की दुकान से, मंदिर से उसकी युवास्था में मात्र इसलिए कि वह ----- था। जिसे अंग्रेजों का मोखटा कहा गया, हृदयहीन राजनीतिज्ञ व दैत्य बताया गया, गांधी का दुश्मन मानकर जिससे घृणा की गई तथा एक्जीकूटिव काउन्सलर के रूप में जिसका उल्लेख किया गया वह स्वतंत्र भारत का प्रथम विधि मंत्री बनाया गया और भारतीय संविधान के मुख्य प्रारूपकार एवं शिल्पकार रूप में इच्छा, उद्देश्य और भारत के भविष्य दृष्टा को परिभाषित करने का उसे उत्तरदायित्व सौपा गया। यह भारत के इतिहास में एक महानतम उपलब्धि और आश्चर्य था। भारत ने चयन किया तथा सदियों पुरानी अस्पृश्यता के कलंक का परिवार्द्धित किया गया अपने विधि वेन्ता को, नवीन मनु, नवीन स्मृतिकार दलित समझी जाने वाली जाति से, नव भारत ने उसे नव कानून निर्माण के लिए चुना जिसने मनुस्मृति को जलाया था जो हिन्दुओं का विधान था। क्या यह देवताओं का आर्शीवाद था जिससे इस नीति की क्रीड़ा की अथवा यह एक काल की करवट थी।''[2]

---

1. जोधा, एच.आर. (1989:2): 'बहुजन उत्थान'' अभूतपूर्व क्रांतिकारी विचारक, कोलम-10-11, नवम्बर, 1989, संपादक पवलीसर हुसैनगंज, लखनऊ।
2. कुवेर, डब्ल्यू. एन. (1989:49): 'राष्ट्र के निर्माता', लखनऊ पवलीकेशन, 10 जनपथ लखनऊ, उ. प्र.

डा0 वृजलाल वर्मा (1950:113): 'राष्ट्र पुरूष डा. भीमराव अम्बेडकर' में लिखते है कि डा. अम्बेडकर जब महाड़ के तालाब को अछूतों के उपयोग के लिए खुलवाने को सत्याग्रह करने की योजना बना रहे थे तभी वे कार्यकर्ताओं को सत्य के लिए संघर्ष करने का आह्वान भी करते थे। इस आह्वान के समय वे गीता काउदाहरण देकर कहते थे कि-"इस देश में सत्य के लिए संघर्ष का आह्वान सबसे सुन्दर ढंग से गीता में किया गया है। उन्होंने गीता को सत्याग्रह का मूल उत्स कहते हुए कहां कि चूंकि यह धर्म पुस्तक छूत-अछूत सभी का स्वीकार है अतः उसी के उदाहरण रखना यहां संगत होगा। यदि उद्देश्य मंगलकारी है तो युद्ध सर्वथा न्यायोचित है यही गीता का उपदेश है।"[1]

मंदिरों में प्रवेश :- मंदिरों में अस्पृश्यों एवं दलितों के प्रवेश के प्रश्न को लेकर स्थान-स्थान पर सत्याग्रह व संघर्ष होने लगे। अमरावती के इन्द्र भुवन थियेटर में एक विशाल सभा में अध्यक्षीय भाषण करते समय डा. अम्बेडकर ने कहां-"मंदिरों में भगवान की प्रतिमा के पूजन का सभी को समान अधिकार होना चाहिए। मंदिर की मूर्तियां किसी के छूने से न तो अपवित्र होती है और न उन पर कोई विलोम प्रभाव पड़ता है। दक्षिणी अफ्रीका में रंगभेद के आधार पर व्यक्तियों के अधिकार तय करने की नीति का हमारा देश भी आलोचना करता है लेकिन यदि ईश्वर को मानने वाले हिन्दुओं को ही आप मंदिर में प्रवेश नहीं देगें तो इसको क्या कहां जाय।"[2]

अछूतों के लिए अलग से मंदिर नहीं चाहिए-"दलितों के लिए अलग मंदिर बनवाने की किसी भी व्यवस्था का कठोर विरोधी हूँ तथा सभी सार्वजनिक मंदिरों में अछूतों के प्रवेश को न्यायोधित और नैतिक मानता हूँ।"[3]

---

1. डा. वृजलाल वर्मा- डा. भीमराव अम्बेडकर -पृष्ठ-113
2. डा. वृजलाल वर्मा- डा. भीमराव अम्बेडकर -पृष्ठ-119
3. डा. वृजलाल वर्मा- डा. भीमराव अम्बेडकर -पृष्ठ-119

डा0 जाटव, डी0 आर0 (1991): 'जन्म शताब्दी' जब तक डा. अम्बेडकर का नाम रहेगा तब तक वह भारत के सामान्य व्यक्ति को एक सितारें के रूप में मार्गदर्शन, आत्मज्ञान होता रहेगा, वे अपने विकास के मार्ग पर चलना बन्द नहीं करेगें, उनका आत्म सम्मान तथा सामाजिक प्रस्थिति क्योंकि उनके दृढ़ संकल्प जो उनके मसीहाने उनमें यश है। डा. अम्बेडकर एक केवल व्यक्ति न थे लेकिन एक विचार थे, एक जीवन का दर्शन थे। हम सबके लिए एक कर्म करने का प्रारम्भिक श्रौत्र है। वह एक सारांश के रूप में हैं, एक चिन्तन धारा है जिसका कभी अन्त न होगा व्यक्ति के साथ, समय की अवधि में। डा. उनके विचार अत्याधिक मूल्यवान तथा प्रसांगिक हैं, इससे दलित शाक्तिवान होगे यदि वे अपने मार्ग-दर्शक के मार्ग का अनुपालन करते हैं यह स्वतंत्रता, समानता तथा बन्धुत्व का मल्य है।"

सर पैटरीक आफ ग्रेसन्ड़, क्यू0 सी0 (1990): ने डा. अम्बेडकर पर बड़प्पन जताने के कारण उन्होंने अनुभव किया और बताया कि, "अम्बेडकर वर्ष 1916 में प्रवेशित एक छात्र के रूप में ओर इन द्वारा उसे 1922 में वार के रूप में पुकारा गया। जो परामर्श की निपुणता तथा विधियज्ञान उसने अर्जित किया वहां रह कर एक छात्र के रूप में आधार थी, न केवल भारत का संविधान लेखन में भारत की स्वतंत्र सरकार में एक सर्वोपार वकील के रूप में अपितु, बहु चर्चित उस सफलता प्राप्ति में भी जो एक दुष्कर्ष जीवन पर्यन्त आन्दोलन में भी जो उसने भारत के दलित वग्र की सामाजिक तथा कार्य दशाओं को विकसित करने में प्राप्त की विशेष कर अस्पृश्यों तथा हिन्दू महिलाओं के प्रसंग में।" वर्ष 1974 में ग्रेट बिट्रेन की डा. अम्बेडकर स्मारक कमेटी ने उदारपूर्वक 'इन' को जी. एस. नागदेव द्वारा उनके आदिमकद मूर्ति को भेट किया जिससे इन के कोर्ट आफ स्कूल में रखा गया जिसे इन से निकालने वाले हर विधि स्नातक देख सकते हैं सम्पूर्ण बिट्रिस राजधानी के और अनेक विश्व के भागों में जहां अंग्रेजी न्याय के

सिद्धांत पढाये जाते हैं यह हमारे लिए सतत ध्यानाकर्षक है उदाहरण के लिए धैर्य, साहस में विश्वास विशेषकर स्वतंत्रता तथा सहिष्णुता में जो एक भाग होना चाहिए जिससे कानूनी साख बनती है जैसे फौरिंग अनुभव तथा व्यवसायिक योग्यता की।"

डा० डी० आर० जाटव (1963): "डा. अम्बेडकर का व्यक्तित्व एवं कतित्व" में डा. अम्बेडकर को मानवाधिकार के नायक के रूप किन परिस्थितियों में आगमन हुआ उनका उल्लेख किया गया है जो इस प्रकार है-"जिसकी जुम्मेदारी थी हिन्दू सामाजिक व्यवस्था वह कैसे ...जिसने स्वर्ग पुन्य,देवत्व, सुख व आनन्द प्राप्त का झूठा उपदेश देकर कोटि-कोटि दलित मानव खासों का मानव सभ्यता, अधिकारों से दूर रख कर उमर कैद की जिन्दगी ढोने को मजबूर कर दिया और उपरोक्त तथ्यों को आदर्श मूल्य एवं सिद्धांत मानकर हिन्दू साहित्य में लिपिवद्ध किया गया। इतना ही नहीं इस साहित्य सामग्री को ग्रन्थों का रूप प्रदान कर पुस्तकारलयों में सुरक्षित रखा गया तथा उसी साहित्य की आवाज को दलितों की रगों में घुसेड़ा गया। जब उक्त साहित्य को नकारने वाला योद्धा उठ खड़ा हुआ तब उसे डा. अम्बेडकर के रूप में पहिचान प्राप्त हुई आगरा उसके द्वारा जो संघर्ष प्रारम्भ किया गया उसे मानवधिकार आन्दोलन के नाम से जाना जाता है।"

डा० जाटव, डी० आर (1982:1-4): "डा. अम्बेडकर का मानवधिकार आन्दोलन" में उनके आन्दोलन के प्रारम्भिक उद्देश्य को निरूपित किया है- (1)"दलितों एवं पिछड़ों को मानव जीवन के विविध पक्षों में विद्यमान परतंत्रता, असमानता, अन्याय एवं धार्मिक अवनति का एहसास कराकर उनमें मानवधिकार के आन्दोलन के क्रियान्वयन में सहभागिता को सुनिश्चित करने को प्रेरित करना। (2) मानव जीवन के विविध पक्षों यथा व्यक्तित्व, सामाजिक, शैक्षिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं धार्मिक ये समानधिकार, समानावसर एवं स्वतंत्र अजीविका को सुनिश्चित करना, तथा (3) मानवीय प्रतिष्ठा प्राप्त करना जिसे हिन्दू दलितों को

देना नहीं चाहते और भारत में एक ऐसे न्यायपूर्ण समाज की स्थापना करना जिससे सभी नागरिकों को न्याय, स्वतंत्रता, समता एवं भ्रात्व भाव मिल सके ताकि देश की एकता एवं अखण्डता बनी रहें।''[1]

डा0 जाटव, डी0 आर0 (1982): कोई भी मानव समाज विशेषकर दलित समाज उस समय तक प्रगति नहीं कर सकता है जब तक वह अध्यात्मिक रूप से शिक्षित, निदेशित एवं नियंत्रित भौतिक विकास की ओर अग्रसर नहीं होती। इसलिए उनका संदेश था कि दलित एक ऐसे धर्म का विशेषकर बौद्ध धर्म को अपनाये जो उन्हें एक मानव होने की गरिमा तथा सम्मान प्रदान कर सके और साथ ही इस युग के व्यापक परिप्रेक्ष्य में मानववाद की यथार्थ आध्यात्मिक संचेतना से उन्हें अभिभूत कर सके। उनके मानवधिकार आन्दोलन का यही प्रयोजन था।''

के0 आर0 निर्मल (1997:14): अम्बेडकर नामक खण्ड काव्य में हिन्दू-अछूत के सह-अस्तित्व की डा. अम्बेडकर के सामाजिक विचार की व्याख्या करते हुए कहते हैं[2] -

अब तो हो गया हूँ विवस, गांधी के बचाने प्राण मैं।
कोटिक अछूतों भाग्य का हूँ, कर रहा बलिदान मैं।।
बस देश की अखण्डता, और एकता को आज मैं।
इस सन्धि विस का कर रहा हूँ, शिव सरीखा पान मैं।।
अब भार अधुतोन्नति का हूँ, हिन्दूओं पर डालना।
उत्थान कर उनका करे वे, प्रायश्चित निज पाप को।।
हिन्दू समाज से दूर कर, सब भेद आछूत के।
सच्चे हृदय से वे लगा ले, अब अछूतों को गले।।
संयुक्त हिन्दू समाज में, छोटा-बड़ा कोई न हो।

1. डा. जाटव, डी. आर.(1982:1-4): डा. अम्बेडकर का मानवधिकार आन्दोलन।
2. के. आर. निर्मल (1997:14): अम्बेडकर (खण्ड काव्य), काव्य कुंज प्रकाशन प्रताप नगर कालोनी, रंगपुर रोड, कोटा।

समानता के साथ में, सबके यहां व्यवहार हो ।।

हो एक हिन्दू मिल सभी, आयाम निति नूतन गढे ।

नव राष्ट्र के निर्माण में, मिलकर सभी आगे बढे ।।

केन्द्रीय वित्र मंत्री मधु दण्डवते (1990): "डा. अम्बेडकर ने अनुसूचित जातियों की सोई हुयी चेतना को जगाया । उनमें एक नई चेतना का उदय किया । उन्होंने उन्हें समझाया कि वे अपने मन से पुरखों के पापों का फल भोगने का विचार निकाल कर एक मन पड़ंत पुनः जीवन तक की प्रतीक्षा न करें । उन्होंने उन्हें अपनी वेड़ियां इसी जन्म में तोड़ फैकनें का आह्वान किया । जो उनका जन्मसिद्ध अधिकार है ।"

डा0 राम मनोहर लोहिया : भारत के राजनीतिक क्षेत्र में डा. अम्बेडकर का एक विशेष स्थान है । वह एक महान शास्त्र वेत्ता, ईमानदा, साहसी एवं स्वतंत्र भारतीय हैं । अगर भारत के स्वाभिमान का उदाहरण विश्व के समक्ष प्रस्तुत करना पड़े, तो निःसंकोच पेश किया जा सकता है ।"

आचार्य अत्रे : "जीवन में जहां भी अन्याय और अत्याचार देखा, डा. भीमराव अम्बेडकर ने वही विरोध किया । अस्पृश्यता जलाओं, जाति भेंद जलाओं, स्मृति जलाओं, ऐसा कहने वाला वह महान भारतीय संविधान का शिल्पकार बना ।

मधुलिमये : हिन्दू संस्कृति और अपने देश भारतवर्ष के प्रति डा. अम्बेडकर के मन में अथाह प्रेम था । भारत मेरा राष्ट्र है, मै भारत का हूँ, और भारत मेरा है, इस प्रकार का राष्ट्राभिमान उनमें कूट-कूट कर भरा था, किन्तु उनकी यह मान्यता थी कि जब तक परम्परागत हिन्दू संस्कृति का अमूल शुद्धिकरण नहीं होगा, हमारे राष्ट्र का भविष्य सुन्दर नहीं बनेगा ।"

रामेश्वर राकेश (1988:47): ''युग चेतना'' खण्ड काव्य में डा. अम्बेडकर के विकास के तीन मंत्रों पर प्रकाश डालते हुए मानव गरिमा को आत्मसात् करने हेतु उनके द्वारा समाज कार्य की विधियों का भी उल्लेख किया[1]-

संगठित शक्त शिक्षित बनने, संघर्ष हेतु सत्वर सओज।
सन्देश दिया पद-दलितों को, हुँकारपूर्ण कर विजय-घोष॥
सम्मान न्याय, उत्थान हेतु, जागृति का नव संचार किया।
धरना-जलूस-सत्याग्रह से, अपना खोया अधिकार लिया॥

कवि ने जाति प्रथा का उन्मूलन, अम्बेडकर के आन्दोलन को अपनी सजीव भाषा में अभिव्यक्ति करते हुए लिखा है-

वह वर्ग-भेद और जाति भेद, का उन्मूलन विद्रोही था।
कंटका कीर्ण पथ का राही, दुर्गम पर्वत-आरोही था॥
अनुसूचित और जनजाति हेतु, कल्याण कार्य समुचित विकास था।
उत्कर्ष बहुमुखी उसके ही, कृतकर्मों के प्रतिफल, प्रयास था॥

डा0 डी0आर0 जाटव (1982:244): डा. अम्बेडकर की चिन्तन शैली की निम्न विशेषताओं का उल्लेख किया है- (1) व्यक्तियों के मध्य समानता, (2) प्रत्येक मानव स्वयं में एक साध्य है, (3) प्रत्येक मानव सामाजिक-आर्थिक-राजनैतिक तथा धार्मिक रूप से जीवन यापन का अधिकार रखता है, (4) प्रत्येक मानव को भय से मुक्ति करना चाहिए, (5) प्रत्येक के हेतु स्वतंत्रता, समानता, बन्धुत्व बनाये रखना तथा व्यक्ति का व्यक्ति के द्वारा उत्पीड़न तथा शोषण से सुरक्षा करना चाहिए, (6) संसदीय, सरकारी व्यवस्था के अन्तर्गत जनतंत्रात्मक समाज को प्रारम्भ करना चाहिए, (7) अहिंसा में विश्वास एक सामाजिक परिवर्तन का एक यंत्र के रूप में, स्वतंत्रता तथा वर्ग संघर्ष समापन विधि को ग्रहण किया जाये, (8) प्रत्येक 'वाद' को किसी सिद्धांत को और

1. रामेश्वर राकेश (1988:47): अम्बेडकर (खण्ड काव्य) प्रत्यूष प्रकाशन पटेल नगर पटना टेकरी रोड पटना।

अंधविश्वास को उसके अत्याधिकता को त्यागा जाये, (9) आध्यात्मिक अनुशासन की आवश्यकता और (10) सारभौमिक प्रेम, समानता तथा मानवीय बन्धुत्वपन जो बुद्ध का विचार था।''

भगवान दास : ''दस स्पोक अम्बेडकर'' में डा. अम्बेडकर के निर्वाचन के सम्बन्ध में विचारों का उल्लेख करते हुए लिखा है-''निर्वाचन को पूर्णरूप से स्वतंत्रा एवं निष्पक्ष होने चाहिए। व्यक्तियों को स्वयं उन्हें मन चाहें लोगों के चुनाव करके जिन्हें वे विधायका में भेजना चाहते हैं छोड़ देना चाहिए।'' स्वतंत्र तथा निष्पक्ष निर्वाचन, एक वर्ग से दूसरं समुदाय में शांति ढंग से बिना रक्तपात किए सत्ता का परिवर्तन अनिवार्य है।''

राहुल सास्कृत्यायन (1999:41):- ''आधुनिक संसार का महान व्यतिव''

डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर से मिलने का मौका यद्यपि मुझे दो ही बार मिला। पहली बार दिल्ली में कानून मन्त्री के रूप में उनके घर पर और अन्तिम बार नेपाल में, जिसके दो महीने बाद यह महापुरूष अपने महान संकल्प को अधूरा रखे ही चल बसा। पहली मुलाकात विशेषकर बौद्ध-धर्म और उसके ग्रन्थों के बारे में बातचीत करने के लिए हुई थी। पर मैं डॉ. अम्बेडकर के कार्य को बड़ी उत्सुकता और सम्मान के साथ देखा करता था। उनकी प्रतिभा को लोहा मानता था और अम्बेडकर के बारे में तो मुझे संस्कृत का पाठ याद आता था, 'वज्रादपि कठोराणि, मृदूनि कुसुमादपि'। उन्होंने अपने वैयक्तिक अनुभव से देख लिया था कि जिस वर्ग में उनका जन्म हुआ है, उसके साथ कितने अत्याचार युगों से हो रहे हैं। सामाजिक ही नहीं, सांस्कृतिक और आर्थिक भीषण अत्याचार थे। लेकिन इस वैयक्तिक अनुभव को उन्होंने अपने निजी बंधनों को ढीला करने के लिए नहीं इस्तेमाल किया। उन्होंने अपने भारतवर्ष के सबसे अधिक उत्पीड़ित वर्ग को सब तरह उठाने का बीड़ा उठाया। इसमें तो सन्देह नहीं कि इस वर्ग के लिए बाबा साहेब ने जितना

किया, उतना किसी व्यक्ति ने आधुनिक युग में नहीं किया। सच तो यह है कि उन्हीं के भागीरथ प्रयत्न से पहाड़ जैसे बाँध में दरार हुई और आगे का रास्ता खुला। डॉ. अम्बेडकर जानते थे कि हिन्दू-धर्म और उनके शास्त्रों की नई व्याख्या करके रास्ता नहीं निकाला जा सकता। जब तक इन विधि-विधानों और शास्त्रों से पूरी तौर से पिण्डनहीं छुड़ाया जाता, उनकी मानसिक दासता का उन्मूल नहीं किया जाता, तब तक भविष्य का पथ-प्रशस्त नहीं हो सकता। आखिर उन्हीं के कारण युगों से यह विशाल वर्ग मनुष्य का अधिकार पाने से वंचित रहा। लेकिन अम्बेडकर की शिक्षा, उनका गम्भीर ज्ञान, इस बात की आज्ञा नहीं देता था कि स्नान के पात्र के साथ बच्चे को भी फेंक दिया जाये। भारतीय संस्कृति फेंकने की चीज नहीं थी। उसके अर्जित साहित्य, कला ओर दूसरी सांस्कृतिक निधियाँ आभियान की चीज थीं और उसमें इस देश के सभी वर्गो की प्रतिभाओं ने काम किया था। उन्होंने देखा कि एक धर्म का प्रत्याख्यान करने भर से काम नहीं चल सकता। उसकी जगह कोई बेहतर चीज लोगों को देनी चाहिए। ऐसी चीज बौद्ध-धर्म था, इसे परखने में उनको देर नहीं लगी। हिन्दू संस्कारों में पले आदमी के लिए ईश्वर और आत्मा को छोड़ना सबसे मुश्किल बात है। जिसने इसको समझ लिया वह हिन्दु -धर्म की भूलभूलैया से बच गया और उसने बौद्ध-धर्म को ठीक तौर से समझ लिया। इससे मालूम होगा कि बाबा साहेब का बौद्ध-धर्म का अध्ययन बहुत गहरा था।''[1]

<u>आचार्य-रजनीश :- "अहिंसक डॉ. अम्बेडकर"</u>

हमारा पूरा समाज सदियों से हिंसा में जी रहा है; अहिंसा की तो सब बकवास है, बातचीत है। यहाँ अहिंसक भी अहिंसक नहीं है; यहाँ अहिंसक भी छिपा हुआ हिंसक है। यहाँ अहिंसा के पीछे भी सब तरह की हिंसा का आयोजन है। यहाँ अहिंसा भी लड़ने का एक उपाय है। तुम जरा मजा देखो-अहिंसा भी लड़ने का एक उपाय

1. राहुल सास्कृत्यायन (1999:41): डॉ. अम्बेडकर स्मृति ग्रन्थ, बोधिसत्व प्रकाशन, विनय पैलेस लखनऊ।

बना दिया। प्रशंसा नहीं होनी चाहिए। अहिंसा को भी अस्त्र बना दिया। कुछ तो छोड़ देते, जो अस्त्र न बनता।

एक आदमी अगर तुम्हारे घर के सामन उपवास करके बैठ जाता है कि मैं मर जाऊंगा अगर मेरी न मानी, तो तुम सोचते हो यह अहिंसा है? अगर मेरी न मानी तो मैं मर जाऊंगा। यह तो हिंसा है, यह तो सीधी धमकी है। यह तो ब्लैक-मेल है। यह आदमी तो साफ धमकी दे रहा है; कह रहा है: याद रखो, जिन्दगी-भर फिर पछताओगे; तुमने ही मुझे मारा।

इसी पूना में यह घटना घटी-महात्मा गाँधी ने उपवास किया डॉक्टर अम्बेडकर के विरोध में। क्योंकि डॉक्टर अम्बेडकर चाहते थे कि शूद्रों को, हरिजनों को अलग अधिकार प्राप्त हो जाए। काश, डॉक्टर अम्बेडकर जीत गये होते तो जो बतमीजी सारे देश में हो रही है वह नहीं होती। अम्बेडकर ठीक कहते थे कि जिन हिन्दूओं ने इतने दिनों तक शूद्रों के साथ अमानवीय व्यवहार किया गया उनके साथ हम क्यों रहे, क्या प्रयोजन है? जिनके मंदिरों में हम प्रविष्ट नहीं हो सकते, जिन पर हमारी छाया जड़ जाये तो वे अपवित्र हो जाते हैं-उनके साथ हमारे होने का अर्थ क्या है? उन्होंने तो हमें त्याग ही दिया है, हम क्यों उन्हें पकड़े रहें?

यह बात इतनी सीध-साफ है, इसमें दो मत नहीं हो सकते। लेकिन महात्मा गाँधी ने उपवास कर दिया। वे अहिंसक थे, उन्होंने अहिंसा का युद्ध छेड़ दिया। उन्होंने उपवास कर दिया कि मैं मर जाऊंगा, अनशन कर दूँगा। यह तो बड़ी संघातक हानि हो जाएगी हिन्दुओं की। हरिजन तो हिन्दू हैं और हिन्दू ही रहेंगे उनका लम्बा उपवास, उनका गिरता स्वास्थ्य देखकर अम्बेडकर को अन्ततः झुक जाना पड़ा। अम्बेडकर राजी हो गये कि ठीक है, मत दें अलग मताधिकार। और इसकों गाँधीवादी इतिहासज्ञ लिखते हैं-अहिंसा की विजय। अब यह बड़ी हैरानी की बात है, इसमें अहिंसक कौन है? अम्बेडकर अहिंसक हैं। यह देखकर

कि गाँधी मर न जायं, उन्होंने अपनी जिद छोड़ दी। इसमें गाँधी हिंसक हैं। उन्होंने अम्बेडकर को मजबूर किया धमकी देकर कि मैं मर जाऊंगा।

मैं तुमसे कहता हूँ: डॉक्टर अम्बेडकर अहिंसक है, गाँधी नहीं। मगर कौन इसे देखे, कैसे इसे समझा जाये? इसमें लगता ऐसे है जैसे अहिंसा की विजय हो गयी; मगर वास्तव में अहिंसा हार गयी, इसमें हिंसा की विजय हो गयी। गाँधी हिंसक व्यवहार कर रहे हैं। जो तर्क नहीं दे सकता वह इस तरह के व्यवहार करता है।

अभी भी हरिजनों के साथ वही व्यवहार हो रहा है, जो पाँच हजार साल पहले होता था। और झूठ ऐसा हमारी आत्माओं में घुसा है कि साधारण आदमी को हम छोड़ दें, साधारण आदमी की मैं बात ही नहीं करता-महात्मा गाँधी का यह निरन्तर कहना था कि भारत का पहला राष्ट्रपति एक औरत होगी और हरिजन औरत होगी। न तो डॉक्टर राजेन्द्र प्रसाद औरत थे, जहाँ तक मैं समझता हूँ, और न ही हरिजन थे-और गाँधी ने ही उनको चुना। क्या हुआ उन पुराने वायदों का? कहाँ गयी वे ऊंची-ऊंची बातें? जो जहर तुमने हरिजनों को पिलाया, वह कहाँ गया?

वह भी सब राजनीति थी। क्योंकि घबड़ाहट वहीं की वहीं थी, अम्बेडकर के नेतृत्व में हरिजन भी अलग हो जाना चाहते थे। अगर मुसलमान अपना देश अलग मांग रहे हैं और उनकी माँग जायज समझी जा रही है, और हिन्दू अपना देश अलग माँग रहे हैं, तो हरिजन जो कि हिन्दुओं का चौथा हिस्सा हैं-और हजारों साल से सताये गये लोग हैं। इस दुनिया में उनसे ज्यादा सताया गया और कोई भी नहीं है-अगर वे भी चाहें कि हमें अपना अलग देश दे दो, तो गाँधी उपवास पर बैठ गये। आमरण उपवास। आमरण उपवास एक का भी नहीं हुआ, क्योंकि मरने के पहले ही संतरे का रस-उस सब का आयोजन पहले से हाता है। डॉक्टर जाँच कर रहे हैं।

और सारे देश में उथल-पुथल.......कि महात्मा गाँधी कहीं मर न जायें-बात का रूख ही बदल दिया। हरिजनों की तो बात ही समाप्त हो गयी। अम्बेडकर की

जान पर बन आयी। लोग उसकी गरदन दबाने लगे कि तुम माफी माँगो महात्मा गाँधी से और कहो कि हम अलग देश या अलग होने की माँग नहीं करेंगे। उसकी माँग जायज थी। लेकिन यहाँ जायज और नाजायज की कौन फिकर करता है। उसको भी लगा कि अगर महात्मा गाँधी मर गये..... तो मैं मर जाऊं यह तो कोई बड़ी बात नहीं है, इस देश में हरिजनों को जलाकर खाक कर दिया जायेगा-एक कोने से दूसरे कोने तक। उनके झोपड़ों में आग लग जायेगी, उनकी स्त्रियों पर बलात्कार होंगे, गाँधी के मरने का बदला लिया जायेगा। यह बात ही खतम हो गयी कि वह जो कह रहा था, ठीक कह रहा था या गलत कह रहा था-यह बात का रूख ही बदल गया।

मामला यह हो गया कि इतने हरिजनों को इतने उपद्रव में डालना उचित है या नहीं। यूं ही बेचारे बहुत परेशान रहे हैं। अब और यह आखिरी परेशानी है। तो अम्बेडकर खुद ही संतरे का रस लेकर हाजिर हो गये, माफी भी माँग ली-जानते हुए कि यह आदमी धोखा दे रहा है हरिजनों को, यह आदमी इस देश को धोखा दे रहा है। लेकिन हरिजनों को न तो अलग होने का हक है, न अलग मताधिकार का हक है। उतनी छोटी सी माँग थी कि या तो अलग देश दो या कम से कम अलग मताधिकार दे दो, ताकि इनकी आवाज भी तुम्हारी संसद में पहुँच सके कि इन पर क्या गुजरती है- इसकी खबर भी नहीं छपती, इसकी खबर भी तुम तक नहीं पहुँचती।

ये लफ्फाजियों और कितने रोज चलाओगे? हरिजनों के अधिकारों की बात करते हो तो क्यों उनको अलग मताधिकार नहीं देते, ताकि ये सताए गए लोग भी अपनी व्यथा को संसद में रख सकें। क्यों उनके लिए अलग से मताधिकार आरक्षित नहीं किए गए? और कब वह वायदा पूरा होगा जो गाँधी ने हरिजनों से किया था-अभी तक एक भी राष्ट्रपति किसी हरिजन को नहीं बनाया गया। क्यों? अलग मताधिकार देने में इन राजनेताओं की ताकत जाती है, सो वो तो देंगे नहीं।

अधिकारों की बात करने में क्या जाता है। खून किसी का बहता है, वोट किसी को मिलता है-सो खेलते रहो खेल।''[1]

मधुलिमये :- ''उन्होंने गाँधी के विचार बदल डाले ''

सन् 1919-20 के वर्षो में गाँधी नाम की आँधी भारत में छा गई। यह आँधी रास्ते में आई और हर चीज को अपने साथ उड़ा ले गई। स्थापित विचार, व्यवहार, गुट और नेता सब उखड़ गए। बहुत कम लोग इस आँधी के सामने डटे रह सके, गाँधीवाद से अप्रभावित लोगों में अम्बेडकर और जिन्ना आते हैं।

तिलक और भारत के विभिन्न प्रांतों में उनके जैसे कई नेताओं के उभरने के बाद भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस में राजनैतिक सुधारों पर जोर देने वाला पक्ष मजबूत हुआ, हालाँकि विपिनचन्द्र पाल और लाला लाजपतराय जैसे सक्षम गरमदलीय नेता सामाजिक दृष्टि से भी प्रगतिशील थे। फिर भी 1895 से सामाजिक सुधारों का प्रवाह अलग-धारा से बहने लगा। लेकिन गाँधी के आगमन के बाद दोनों प्रवाह मिल गए। गाँधी की प्रेरणा से काँग्रेस सामाजिक सुधारों के प्रस्ताव पास करने लगी और अस्पृश्यता का निराकरण तथा ब्राह्मण गैर ब्राह्मण विवाद के समाधान को काँग्रेस की प्राथमिकताओं में शामिल किया जाने लगा।

डॉ. अम्बेडकर ने 1923 में अपनी विदेशी शिक्षा पूर्ण की। अमेरिका, लंदन तथा एक जर्मन विश्वविद्यालय में शिक्षा पाकर पश्चिम के तीन अग्रणी देशों के सर्वोत्तम विचारों के वे सम्पर्क में आए। जीवन के कटु अनुभवों ने उनके मन में हिन्दू समाज व्यवस्था कि प्रति घृणा पैदा कर दी थी। सदियों की गुलामी और हिन्दू धर्म के अंकुश ने दलित वर्गो इतना कुंठित कर दिया था कि उन्होंने गुलामी को ही अपना भाग्य मान लिया था। डॉ. अम्बेडकर अत्यन्त संवेदनशील व्यक्ति थे और प्रभावशाली भी थे। उन्होंने देखा कि पश्चिमी विश्व में स्वतंत्रता और समानता का वातावरण हे ं अमेरिका में अश्वेत लोग समान अधिकारों के लिए लड़ रहे थे।

1. आचार्य रजनीश : अहिंसक डॉ. अम्बेडकर, 'मरो हे जोगी मरों' पुस्तक से।

1916 में अम्बेडकर का जाति समस्या पर लिखा हुआ निबंध वास्तव में जातिप्रथा के खिलाफ युद्ध का घोषणा-पत्र था। उन्हें पूरा विश्वास था कि दलितों को सवर्ण हिन्दुओं की उदारता पर भरोसा न करके अपनी मुक्ति स्वयं अर्जित करनी होगी।

स्वर्णों में निःसंदेह गाँधी सबसे शक्तिशाली सुधारक थे। उनके विचारों ने और उनके व्यवहार ने हिन्दुओं के मन में मानव के प्रति मानव के इस घोर अन्याय के विरुद्ध भावना जगाने का बहुत बड़ा काम किया। प्रत्यक्षतः गाँधी और अम्बेडकर में बहुत सी बातें समान थीं। दोनों दलित जातियों की सेवा करना चाहते थे। दोनों उनकी स्थिति में सुधार लाना चाहते थे। तो फिर वे एक लक्ष्य के लिए परस्पर मिलकर काम क्यों नहीं कर सके? वे रूढ़िवाद और सामाजिक अन्याय के खिलाफ मिलकर क्यों नहीं लड़ सके?

इसका कारण उनकी स्वभावगत भिन्नता, मानसिक गठन की भिन्नता, उनकी परिस्थितियों में अन्तर था। विचार और दृष्टिकोण के बारे में दोनों में जमीन-आसमान का फर्क था। अम्बेडकर को न केवल पश्चिम से प्रेरण मिली थी अपितु पश्चिम की सभ्यता ने उनके मन को जीत लिया था। वहाँ लोकतांत्रिक विचारों का विकास समतामूलक विचार की सफलता का ही रूप था। पश्चिम के लोकतांत्रिक आदर्श का सार है। प्रत्येक व्यक्ति की प्रतिष्ठा और उसके महत्व पर आस्था। हिन्दुओं के दार्शनिक विचार उपनिषदों के अंतर्ज्ञान और सहृदय कल्पना के बावजूद लोकतांत्रिक आदर्श का निषेध करने वाले भारतीय मूल के सभी धर्म अपने तमाम भेदों के बावजूद पुनर्जन्म और कर्म विषयक के सिद्धांत में विश्वास करते हैं। हिन्दुओं के अनुसार वर्तमान जीवन अनेक जीवनों की श्रृंखला की एक कड़ी है और यह जन्म पुनर्जन्म की अंतहीन श्रृंखला में एक पड़ाव है। पिछले जन्म के कर्म का फल इस जन्म में भोगना पड़ता है और इस जन्म के अच्छे कामों का फल अगले जन्म में मिलेगा। जो व्यक्ति पुनर्जन्म में विश्वास करता है प्रायः वही जाति प्रणाली में विश्वास करता है। इस दर्शन के कारण दलित जातियों के कष्ट

सवर्ण हिन्दुओं की अंतरात्मा को जगाने के बजाए उसमें घोर उदासीनता पैदा करते हैं।

डॉ. अम्बेडकर ने इस दर्शन को और इस धार्मिक दृष्टि को नहीं माना, विरूप यथार्थ के सामने उन्होंने अपने को असहाय महसूस नहीं किया बल्कि उन्होंने अन्याय से लड़ने और सामाजिक व्यवस्था को बदलने का संकल्प किया। उनके लिए दलित वर्गों की स्थिति में सुधार लाने का सवाल जातिप्रथा के उन्मूलन के साथ जुड़ा हुआ था। वे इस सवाल पर समझौता करने को तैयार नहीं थे और न ही वर्तमान जाति-प्रणाली और वेदों के चातुवर्ण्य आदर्श में नैतिक भेद करने को तैयार थे। गाँधी प्रारम्भ में चातुवर्ण्य प्रणाली के समर्थक थे। डॉ. अम्बेडकर और गाँधी के बीच अंत तक चले संघर्ष का यही मूल कारण था। यह संघर्ष लगभग 25 वर्षों तक चलता रहा और वर्ष प्रतिवर्ष इसकी कटुता बढ़ती ही गई।

1914 में गाँधी जी अस्पृश्यता के खिलाफ तथा शूद्र वर्ण व्यवस्था के पक्ष में दृढ संकल्प थे। वे अस्पृश्यता के पाप और जाति-वर्ण-व्यवस्था की उपयोगिता के बीच कोई नहीं देखते थे। तो फिर असमानता के शत्रु डॉ. अम्बेडकर गाँधी के मूल्यांकन से भिन्न था। दूसरा उत्तर है कि अम्बेडकर अस्पृश्यता के स्वरूप और जाति के स्वरूप में भेद करने को तैयार नहीं थे। उनके लिए दोनों बुराइयाँ परस्पर संबद्ध थी। उनकी राय में जाति को नष्ट किए बिना अस्पृश्यता को नष्ट नहीं किया जा सकता था।

अम्बेडकर के लिए भारत में ब्रिटिश राज्य सबसे बड़ा शैतान नहीं था। उनके लिए सबसे बड़ी बुराई थी जाति-व्यवस्था। उनकी सारी क्षमताएं जाति को नष्ट करने लगी हुई थी न कि विदेशी शासन के विरूद्ध लड़ने में। वास्तव में विदेशी हमलावरों के आगे भारत की बार-बार पराजय का कारण वे जाति-प्रथा से उत्पन्न पशुता और उदासीनता को मानते थे। उन्होंने बिना ग्लानि अथवा पश्चाताप के कई बार कहा कि उनकी जाति के लोगों ने पेशवाओं के अत्याचारी सामाजिक शासन

को नष्ट करने में अंग्रेजों की मदद की थी। किन्तु ब्रिटिश सरकार ने उनके प्रति आभार प्रकट करने के बजाए ऊंची जातियों को शिक्षा की सुविधाएं दीं और शक्तिशाली समूहों से अलग पड़ जाने के डर से दलित वर्गो को पूरी तरह नजरअंदाज कर दिया। प्रथम गोलमेज सम्मेलन में दिए गए अपने भाषण में उन्होंने दलित और ब्रिटिश लोगों के असाधारण बंधन का उल्लेख किया था। अम्बेडकर ने अपने जीवन का मिशन भारत अंग्रेजों के शासन से मुक्त कराना कभी नहीं माना। उन्होंने हमेशा माना कि उनका मिशन दलितों को ब्राहाम्वाद और जातिप्रथा से मुक्त कराना है। उन्होंने रेल मजदूरों से 1938 में कहा था उन्हें दो शत्रुओं से लड़ना है-ब्राहाम्वाद और पूँजीवाद। ब्राहम्वाद से उनका तात्पर्य एक समूह विशेष से नहीं था। उनका अभिप्राय था कि स्वतंत्रत, समानता और भाईचारे की भावना का विकास।

दूसरे गोलमेज (1932) सम्मेलन में दलित वर्गो के प्रतिनिधित्व के सवाल पर डॉ. अम्बेडकर और गाँधी में झड़प हो गई। अल्पसंख्यकों के मामले पर विचार करने वाली समिति के आगे गाँधी जी ने कहा- यह कहना कि हम विधानमंडलों में अस्पृश्यों के प्रतिनिधित्व का विरोध करते हैं, सत्य को विकृत करना है। हम विशेष प्रतिनिधित्व के खिलाफ हैं। काँग्रेस वयस्क मताधिकार के प्रति वचनबद्ध है और अस्पृश्यता के तेज से मिट जाने के साथ-साथ दलित जातियों -के उम्मीदवारों को अलग या बहिष्कृत नहीं रखा जाएगा। उनकी राय में चुनाव से ज्यादा महत्व है कि इन लोगों की सामाजिक तथा धार्मिक उत्पीड़न से रक्षा हो। उन्होंने कहा कि ईश्वर की कृपा से अस्पृश्यता जल्दी ही अतीत का अवशेष बनकर रह जाएगी। क्योंकि हिन्दुओं की अंतरात्मा जाग गई है।

लगता है गाँधी जी अस्पृश्यता और उसकी सभी बुराइयों के शीघ्र नाश के प्रति अत्यधिक आशावान् थे। यह बात भी संदेहपूर्ण है कि आरक्षणों के बिना दलित वर्गों को किसी भी तरह का प्रतिनिधित्व मिलता या नहीं।

डॉ. अम्बेडकर ने गाँधी जी के इस विचार का जोरदार विरोध किया। उनके अनुसार सत्ता का हस्तांतरण एक समूह या गुट के लिए नहीं होना चाहिए। दलित वर्गों सहित सभी समुदायों की उसमें जनसंख्या के अनुपात में भागीदारी होगी।

गाँधी जी का कहना था-पृथक मतदाता सूचियाँ या आरक्षण इस कलंक को नहीं धो सकते। अस्पृश्यता यह दलित जातियों का नहीं सनातनी हिन्दुओं का कलंक है।

हरिजनों ने ब्रिटिश सेना में नौकरी की वैसी बंगाल आर्मी ने भी की। बंगाल आर्मी में ऊंची जाति के लोग थे। इसलिए हरिजनों पर विश्वासघात का आरोप नहीं लगाया जा सकता। डॉ. अम्बेडकर की तरह गाँधी ने भी प्रथम विश्व युद्ध के समय अंग्रेजों की सेना में भर्ती होने के लिए प्रचार किया था और सावरकर तथा हिन्दू सभाइयों ने दूसरे विश्व युद्ध के समय सेना भर्ती का अभियान चलाया था।

1920 में 'यंग इन्डिया' में लिखे दो लेखों में गाँधी जी ने लिखा था कि हमारी वर्तमान दुर्गति के कारण जातिप्रथा नहीं है। हमारी गुलामी के कारण हैं, हमारा लोभ और अनिवार्य गुणों की उपेक्षा। मेरा विश्वास है कि जातिप्रथा ने हिन्दू धर्म को विघटन से बचाया है। उस समय उन्होंने चातुवर्ण्य विभाजन को मूलभूत, स्वाभाविक और अनिवार्य कहकर समर्थन किया। हिन्दू धर्म न केवल मनुष्यों की रक्षा चाहता है बल्कि सभी प्राणियों में भाईचारे की भावना का पाठ पढ़ाता है। आनुवंशिकता का शाश्वत नियम बदलने से समाज में बिल्कुल अराजकता फैल जाएगी। यह बात उन्होंने गीता से ली थी। उस समय गाँधी जी हिन्दुओं के परहेज का समर्थन संयम और अनुशासन के लिए वह आवश्यक है ऐसा कहकर करते थे। 29 दिसम्बर, 1920 को उन्होंने रक्त और आनुवांशिकता के सिद्धांत का पुनः समर्थन किया। उनकी दृष्टि में ये पाबंदियाँ इन्द्रियों के वंश में करने, इच्छाशक्ति की साधना और कुछ मूल्यों की रक्षा के लिए जरूरी है। भोजन, पानी और विवाह का अन्यथा कोई सामाजिक महत्व नहीं था।

1936 में उन्होंने डॉ. अम्बेडकर के 'जातिप्रथा का उन्मूलन' पर टिप्पणी करते हुए कहा था कि वर्ग व्यवस्था हमें सिखाती है कि हम सब अपने बाप-दादों के पेशे को अपनाते हुए अपनी जीविका चलाएं। यह हमारे अधिकारों का नहीं, हमारे कर्तव्यों को निर्धारण करती है। सभी अच्छे हैं, विधि सम्मत हैं और बिल्कुल बराबरी के दर्जे के हैं। आध्यात्मिक शिक्षक ब्राहम्ण का धंधा भंगी के धंधे के बराबर है-ईश्वर की नजर में उनको बराबरी का सम्मान मिलता है।

गाँधी जी की इस टिप्पणी से अम्बेडकर को बहुत दुख हुआ। उन्होंने कहा-संतों ने कभी जाति-प्रथा या अस्पृश्यता के खिलाफ अभियान नहीं छेड़ा। स्वयं उन्होंने जाति की रेखाओं को तोड़ा तो भी उन्होंने साधारण जन को जाति रेखाएं तोड़ने का उपदेश नहीं दिया। इसके बाद अम्बेडकर ने गाँधी जी को अपनी कथनी और करनी के विरोधाभास पर विचार करने की चुनौती दी। उन्होंने कहा-गाँधी सबको अपने बाप-दादों का पेशा अपनाने का उपदेश देते हैं किन्तु, क्या वे स्वयं इस नियम का पालन करते हैं? महात्मा ने अपने आदर्शो को व्यवहार में लाने की कितनी कोशिश की है, तो मुझे दोष नहीं देना चाहिए। अम्बेडकर ने कह दिया कि महात्मा जन्म से बनिया है। अतः उसका और उनके बाप-दादों का पेशा व्यापार रहा है। किन्तु उनके बाप-दादा व्यापार छोड़कर रियासतों में दीवान बने जो ब्राह्मण का पेशा है। महात्मा ने स्वयं भी वकालत का पेशा चुना। उन्होंने अपने बाप-दादों के पेशे को अपनाते हुए कभी तराजू नहीं छुआ। उनके सबसे छोटे लड़के देवदास ने, जो वैश्य के रूप में पैदा हुआ था, ब्राहमण लड़की से शादी की और पत्रकार बना। क्या महात्मा ने अपने बाप-दादों का पेशा न अपनाने के लिए उसकी निन्दा की?

कौन इसमें संदेह कर सकता है कि अम्बेडकर की आलोचना बिल्कुल सटीक, मार्मिक नहीं थी? अपने बाप-दादों का पेशा अपनाने आगरा अंतर्वर्णीय विवाह के दोनों सवालों पर महात्मा गाँधी की स्थिति तर्क सम्मत नहीं थी। गाँधी

जी द्वारा 'रक्त और आनुवंशिकता' के आधार पर और योग्यता के बजाए जन्म के सिद्धांत के आधार पर चातुवर्ण्य का समर्थन, सहभोज की पाबंदियों का युक्तिकरण, संयम तथा इच्छाशक्ति की साधना के आधार पर मिश्र विवाहों की पाबंदी का समर्थन स्पष्ट तौर पर गलत था। अम्बेडकर की यह मान्यता कि अंतर्जातीय विवाह असली समाधान है, तर्क की दृष्टि से बहुत मजबूत थी। जाति और वर्ण व्यवस्था के विरोधी अम्बेडकर और समर्थक गाँधी के बीच चल विवाद में सच्चाई और विवेक अम्बेडकर की तरफ था। उनकी दूरदृष्टि और विवेक शक्ति की प्रशंसा के लिए यही आधार काफी है कि गाँधी जी ने अपने अंतिम वर्षो में अपनी पुरानी मान्यताओं को बदल डाला। इसके साथ ही यह प्रसंग गाँधी द्वारा अपने को बदलने की क्षमता का भी सुन्दर उदाहरण है। उन्होंने अपनी मान्यताओं में मूलभूत परिवर्तन किया और न सिर्फ अंतर्वर्ण विवाहों के जबर्दस्त समर्थक बन गए, बल्कि दलितों और सवर्णो के बीच विवाहों के और सबसे आश्चर्यजनक बात, अंतर्धर्मी विवाहों के भी बशर्ते कि ऐसे विवाहों में स्वतः स्त्रियों का अनिवार्य धर्म परिवर्तन न हो।

31 मई,1945 को हरिजन सेवक संघ के कार्यकर्ता से उन्होंने कहा कि उसकी कोई अविवाहित बेटी हो और यदि शुद्ध सात्विक धार्मिक भावना से वे उसकी शादी दलित से करे, तो मुझे बहुत प्रसन्नता होगी और मैं उन्हें बधाई दूँगा। 9 मई, 1945 को गाँधी जी ने अपने एक सहयोगी नरहरि पारिख को लिखा, 'हमे अतिशूद्र और सवर्ण हिन्दू के बीच विवाह को बिना हिचक सर्वोच्च प्राथमिकता देनी चाहिए। जहाँ माता-पिता समझदार हैं, वहाँ भिन्न धर्मो के बीच विवाह में भी कोई दिक्कत नहीं होनी चाहिए। क्या हम सभी धर्मो को समान नजर से नहीं देखते? हमने अपनी प्रार्थना में दूसरे धर्मो को स्थान दिया है उसका कुछ प्रयोजन है। बच्चे किसी भी धर्म को चुन सकते हैं। हमारी कल्पना करके पति-पत्नी अपने बच्चों को

इस संबंध में उदार शिक्षा देंगे। मेंरे विचार से यह काफी आसान है। 'लड़की के नाम पत्र में' मैंने इन बातों को सफाई के साथ रखा है।'

इस प्रकार जाति उन्मूलन के प्रश्न पर महात्मा गाँधी के विचारों में परिवर्तन लाने में अम्बेडकर सफल रहे। यह दूसरी बात है कि गाँधी ने मन-परिवर्तन का श्रेय अम्बेडकर को न दिया हो। इस बात का महत्व भी नहीं है, किन्तु हमें जो सारे परिप्रेक्ष्य में चीजों को देख सकते हैं, सही स्थिति को स्वीकार करने में नहीं हिचकिचाना चाहिए।[1]

डा0 अम्बेडकर के बारे में बाबू जगजीवन राम के विचार

इस समारोह में उपस्थित होना मैं अपने लिए बड़ी प्रसन्नता एवं सौभाग्य की बात मानता हूँ। मैं यही भारत के एक ऐसे महान सपूत डा. अम्बेडकर को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करने आया हूँ, जो एक सामाजिक क्रांतिकारी थे तथा इस देश की दलित मानवता के महान अगुआ समझे जाते थे। डा. अम्बेडकर ने इस देश में मौलिक, सामाजिक परिवर्तन के लिए कार्य किया। संविधान सभा द्वारा अपने सभी सदस्यों की बुद्धि का समन्वय करके लोकसभा, विधान सभाओं तथा सरकारी संवाओं में अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जन-जातियों के लिए सीटों के आरक्षण का प्राविधान किया गया। डा. अम्बेडकर इस सभा की ड्राफ्टिंग कमेटी के अध्यक्ष थे। दुर्भाग्य से डा. अम्बेडकर दिसम्बर 1956 में ही दिवंगत हो गये।

डा. अम्बेडकर ने कहा था-"शिक्षित बनो, संगठित हो और संघर्ष करो।"क्या संघर्ष सिर्फ अपने बीबी-बच्चों को पालने के लिए या अपने सम्प्रदाय के लिए कुछ उपलब्धि प्राप्त करने के लिए। डा. साहब एक सामाजिक क्रांतिकारी थे। वे सामाजिक परिवर्तन चाहते थे तथा इसके लिए शिक्षा का प्रसार चाहते थे। पढ़े-लिखे लोगों को याद होगा कि डा. अम्बेडकर ने घोषणा किया था कि मैं हिन्दू के रूप में पैदा हुआ, परन्तु हिन्दू के रूप में नहीं मरूँगा। इसलिए उन्होंने बौद्ध धर्म

1. मधुलिमये (1990:87): डॉ. अम्बेडकर स्मृति ग्रन्थ, बोधिसत्व प्रकाशन, छितवापुर, पाआवा, लखनऊ।

अपनाया। यह सर्वविदित है कि हिन्दू धर्म असमानता पर आधारित है और डा. अम्बेडकर हिन्दू समाज के भीतर समानता चाहते थे। प्रत्येक व्यक्ति, जो डा. अम्बेडकर को श्रद्धांजलि अर्पित करने आता है, उसे अपने दिल पर हाथ रखकर अपने से पूछना चाहिए कि वह हिन्दू समाज में समानता लाने के लिए क्या कर रहा है। मैं यहाँ पर राजनीतिज्ञ के रूप में नहीं आया। डा. अम्बेडकर केवल राजनीतिज्ञ ही नहीं थे, बल्कि वह एक सामाजिक क्रांतिकारी भी थे और मैं डा. अम्बेडकर के विषय में बात कर रहा हूँ।

डा. अम्बेडकर अपने समुदाय को मुक्त कराना चाहते थे। अनुसूचित जाति के लोग आज भी स्वतंत्र नहीं हैं। भारत को स्वतंत्रता मिल गई, परन्तु अनुसूचित जाति अब भी बेड़ियों में जकड़ी हुई है। भारतीय समाज में उनके लिए समानता एवं सम्मान अभी कोसों दूर है। डा. अम्बेडकर केवल एक नाम नहीं है। डा. अम्बेडकर एक प्रतीक है। डा. अम्बेडकर सामाजिक क्रांति का प्रतीक है। यथास्थिति के विरुद्ध सामाजिक क्रांति की ओर डा. अम्बेडकर की स्मृति को सम्मान देने का केवल एक ही तरीका यह है कि ऐसा वातावरण पैदा किया जाय कि शिक्षित लोग, डा. अम्बेडकर ने अनुसूचित जाति की मुक्ति का जो मिशन प्रारम्भ किया था, उसके लिए समर्पित हो जायें। डा. अम्बेडकर के जन्म दिन से संबंधित इस आयोजन में मद्रास जैसे नगर में श्रोताओं की इतनी अल्पसंख्या से मैं निराश नहीं हूँ। मैं यह मानकर चलता हूँ कि केवल प्रतिबद्ध लोग ही यहाँ उपस्थित हैं। यदि आप अपनी दशा में स्वयं सुधार करने के लिये तैयार नहीं हैं तो कोई दूसरा आपकी दशा नहीं सुधारेगा। आपको अपनी लड़ाई स्वयं लड़नी होगी और हम इस लड़ाई को लड़ेंगे। रास्ता बहुत आसान नहीं है। संघर्ष बड़ा कठिन है।

(दिनांक 24.4.1983 को मद्रास में आयोजित डा. अम्बेडकर जन्मदिवस समारोह के अवसर पर दिये गये भाषण के मुख्य अंश)

शंकरा नन्द शास्त्री :-डा. अम्बेडकर का संसदीय दृष्टिकोण :

ग्रीक देश के महान दार्शनिक अरस्तू ने कहा है कि, "गरीब लोगों का शासन जनतंत्र है।" उन्होंने जनतंत्र की व्याख्या ऐसी ही की है। उनका कहना है कि मेहनत-मजदूरी करने वाले गुलाम शासक बनने की क्षमता नहीं रखते, इसलिए वे सदा शोषित रहते हैं। शिक्षित और उच्च वर्ग के लोग ही शासक बन सकते हैं। और उन गुलामों पर शासन निर्बाध गति से करते हैं।

अब्राहम लिंकन ने कहा है कि "जनता के लिए जनता का शासन होना चाहिए।" इसी प्रकार के विचार दूसरे महान नेताओं ने भी प्रकट किए हैं। इनका संबंध शासन के तरीकों से है, लेकिन बाबा साहब अम्बेडकर ने इसे सामाजिक जीवन के साथ जोड़ा है। जनतंत्र सामाजिक घटना का एक प्रकार है (रिडिल्स इन हिंदइज्म प्रश्न-22 पेज 281) पुणे में 22 दिसम्बर, 1952 को एक भाषण में कहा था कि जनतंत्र वो है जो आर्थिक और सामाजिक अवस्था को शान्तिपूर्ण आगरा अहिंसापूर्ण तरीके से बदलता है।

जनतंत्र की सफलता के लिए वयस्क मताधिकार का होना जरूरी है ऐसा विचार कुछ लोगों का है। कुछ देशों में ऐसी प्रथा है कि सबके मतों को जानने के लिए मिश्रित अवधि में निर्वाचन का होना और निर्वाचित प्रतिनिधियों को वापस बुलाने का पूर्ण अधिकार मतदाताओं को है। और इन अधिकारों काजनतंत्र की व्याख्या में अन्तर्निहित है। अगर हम ऐसा मान लें कि वयस्क लोगों के वोटों के आधार पर शासन होता है तो उसे पूर्ण प्रजातंत्र नहीं कह सकते।

बाबा साहब अम्बेडकर ने हर वयस्क की मानप्रतिष्ठा को ज्यादा महत्व दिया है। 25 जुलाइ, 1927 के "बहिष्कृत भारत" के संपादकीय में उन्होंने लिखा था कि हर व्यक्ति पारस्परिक आचरण में अपने ही बराबर समझकर दूसरे के साथ अपना संबंध रखता है, उसी को पूर्ण जनतंत्र कहा जा सकता है। (बहिष्कृत भारत संपादकीय नत्नाकर-पृष्ठ-122)।

वर्तमान जनतंत्र का प्रारम्भ इंग्लैंड में प्रथम एडवर्ड के राज्य में चौदहवीं सदी में हुआ था। इसी का रूप कालांतर में पार्लियामेंट की पद्धति के रूप में जन्म हुआ।

बाबा साहब के द्वारा की गई जनतंत्र की व्याख्या को समझने के बाद पार्लियामेंट की पद्धति को समझना काफी महत्वपूर्ण है। पाश्चात्य देशों के कइयों ने संसदीय जनतंत्र की प्रणाली को स्वीकार किया लेकिन यह काफी वर्षो तक नहीं चला। कुछ वर्षो के गुजरने के बाद लोगों ने इस प्रणाली के विरुद्ध विद्रोह किया। इस संबंध में बाबा साहब ने काफी आश्चर्य प्रकट किया है।

इटली, जर्मनी, एशिया और स्पेन देशों में संसदीय जनतंत्र के विरुद्ध काफी असन्तोष फैला। ऐसा क्यों हुआ? भारतीयों का इस पर विचार करना नितांत जरूरी है। संसदीय जनतंत्र में हर एक को सावधान रहना चाहिए क्योंकि यह सर्वोत्तम शासन पद्धति नहीं है। इसमें किसी को आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि अधिनायकत्व का सदा ही विरोध होता रहा है। क्योंकि अधिनायक संसद के द्वारा जो नियंत्रण उन पर होता है वह उन्हें मान्य नहीं होता है। जिन देशों में डिक्टेटरशिप अधिनायकत्व नहीं है वहाँ पर संसदीय जनतंत्र के विरुद्ध कईयों में असंतोष फैला है। उन्हें क्रोध भी आता है। ऐसी परिस्थितियों में इस बात पर विचार करना चाहिए। स्वतंत्रता के लिए सुखी और समृद्ध जीवन के लिए संसदीय प्रणाली को अपनाने पर आधार वाले जनतंत्र को स्वीकार करने पर सुखी और समुन्नत जीवन नहीं मिला तो उसका उपयोग क्या है? ऐसा प्रश्न उपस्थित होता है।

अपने देश में संसदीय प्रणाली को लाने में देर की है। सरकारी कार्यालयों में जनता का कार्य बहुत देर के बाद होता है। विधान सभा जो बिल पास करती हैं उन्हें मन पूर्वक लागू नहीं किया जाता। ऐसी परिस्थिति में जनता बहुत दुखी हो जाती है। जनतंत्र बदनाम हो जाता है। ऐसा क्यों होता है।

बाबा साहब ने कहा है कि इसके कारण दो हैं। पहला जनतंत्र के संबंध में गलत धारणा और दूसरा समाज की रचना में राजकीय तोड़-फोड़।

किसकी आजादी : जनतंत्र का आधार स्वतंत्रता और स्वराज्य है। जनतंत्र की व्याख्या करते हुए बाबा साहब अम्बेडकर ने पूछा कि स्वतंत्रता किस की ? देश की आजादी और जनता की स्वतंत्रता में भेद है। वह एक नहीं है। देश एक होने पर भी उसकी जनता विभिन्न प्रकार के वर्गो में विभाजित है। इसलिए गुलाम समाज को न्याय और शोषित समाज को स्वतंत्रा मिलेगी, तभी वास्तव में जनता की स्वतंत्रता होगी।

स्वतंत्रता किसकी ? इस प्रश्न का अर्थ इतना ही है कि वह किसके संबंध में है। यह प्रश्न बड़े महत्व का है। आचार-विचार और ऊंची आचरण की स्वतंत्रता हो सकती है। आचार स्वतंत्रता का संबंध दूसरों के साथ ज्यादा होता है। आचरण का अर्थ है कि दूसरे के साथ करने वाला व्यवहार। बाबा साहब ने फ्रीडम आफ कंट्रास्ट में इसका एक तरीका बताया है। कंट्रास्ट किसके बीच में हो सकता है। यह उन्हीं लोगों में हो सकता है जिनकी अवस्था समान रूप से हो, जब दोनों में असमान अवस्था हो तो कंट्रास्ट नहीं हो सकता। जो शक्तिशाली और धववाल है वह निर्धनों और शक्तिहीनों को सताता है। शोषण करता है।

भगवान दास :- डा. अम्बेडकर के उन विचारों को उधृत करते हुए लिखते है जो उन्होंने वहिष्कृत महिला हितकारणी सभा के सम्मुख रखे,'' तुम अपने आपको अस्पृश्य न समझो। स्वच्छ जीवन निर्वाह करो। स्पृश्य महिला की तरह वस्त्र पहिनों। कभी मानस में यह न लाओं कि तुम्हारे वस्त्रों में अनेक थैगरे लगे हैं। बस यह देखो कि वस्त्र स्वच्छ हैं। तुम्हें तुम्हारे वस्त्र चयन में कोई प्रतिबन्ध नहीं लगा सकता और न जेवरातों की धातु के, जेवर पहनने में। अपने मन मस्तिक में स्वयं सहायता की अधिकांश भावना को उत्पन्न करो।''[1]

धनंजय कीर :- डा. अम्बेडकर के महिलाओं के प्रति विचार का अपनी पुस्तक में उधृत करते हुए लिखते है कि,''किसी भी स्थिति में आप अपने पति तथा बच्चों का

1. भगवान दास : डा. अम्बेडकर दस स्पोक, भाग-3, पृष्ठ-193

पोषण न करे यदि वे मद्यपान करते हैं। अपने बच्चों को स्कूल भेजों। शिक्षा महिलाओं को वैसी ही आवश्यक है जैसी कि पुरूषों कि पुरूषों को। यदि तुम लिखना पढ़ना जानती हो तो अत्याधिक प्रगति होगी, जैसी तुम हो, उसी प्रकार तुम्हारे बच्चों का जीवन गुणकारिता में बदल जायेगा, इस संसार में।"[1]

भगवान दास जी :- महिलाओं के बारे में डा. अम्बेडकर के विचारों को बताते हुए लिखते हैं कि, "माता-पिता का उत्तरदायित्व होता है कि वे अपने बच्चों को बेहतर शुरूआत दे तुलानात्मक उनको, उनके माता-पिता द्वारा उन्हें प्रदान की थी। इसके भी ऊपर जो लड़की विवाह करती है उसे अपने पति के साथ खड़ी हो और अपने पति से मांग करे कि वह उसकी मित्र है, समान है तथा उसकी गुलाम नहीं है। मैं आश्वासित हूँ यदि तुम इस परामर्श का अनुकरण करते हो तो अपने लिए प्रसिद्ध एवं सम्मान लाओगे।"[2] भगवान दास डा. अम्बेडकर के महिलाओं संबंधी विचारों को आगे बड़ाते हुए उल्लेख करते है कि, "उन माता-पिताओं में व जानवरों में कोई अन्तर नहीं कि वे अपने बच्चों को बेहतर अवस्थाओं में अवलोकन की आशा नहीं संजाते विशेष कर अपनी दशा की तुलना में।"[3] डा. अम्बेडकर महिला की महत्ता बताते हुए कहते है कि, "मैं किसी समुदाय की प्रगति, उस समुदाय की महिलाओं द्वारा की गई प्रगति से आंकता हूँ। जब मैं इस विधायका सभा को देखता हूँ तो मैं संतोष करता हूँ तथा प्रसन्नता अनुभव करता हूँ कि हमने प्रगति की है। मैं आपको कुछ चीजे बताता हूँ जिन्हें आप मन लगाकर सुने। स्वच्छ रहना सीखों तथा अपने से सभी दुराचार दूर भगाओं, अपने बच्चों को शिक्षित करोद्व उनमें न इच्छाओं के संस्कार भरो। उन्हें बताओं कि तुम्हारा भाग्य महान है। उनके मानस पटल से सभी हीनता को दूर करो। उनका विवाह करने में शीघ्रता मत करो। विवाह एक उत्तरदायित्व है, उसे तुम अपने बच्चों पर मत डालो, जब तक वे विवाह

1. धनंजय कीर : डा. अम्बेडकर लाइफ एण्ड मिशन, पृष्ठ-104
2. भगवान दास : डा. अम्बेडकर दस स्पोक, भाग-3, पृष्ठ-194
3. भगवान दास : डा. अम्बेडकर दस स्पोक, भाग-3, पृष्ठ-191

के उत्तरदायित्व निर्वाहन करने के लायक नहीं हो जाते। जो बच्चों के विवाह करते है वे ध्यान रखे कि अधिक बच्चे पैदा करना एक अपराध है।''

धनंजय कीर (1962):- डा. अम्बेडकर 'लाइफ एण्ड मिशन' में उनको उद्यृत करते लिखते है कि,''एक दीर्घ समय से मैं मंत्रीमंडल से त्याग पत्र देने की सोच रहा हूँ। केवल एक ही चीज मुझे विवस कर रही है जो हिन्दुओं पर प्रभाव डाल सकती है वह है 'हिन्दू कोड विल' का मुद्दा वह भी वर्तमान संसद के समय से जो शीघ्र ही समाप्त होने जा रहा है। मैंने मन बना लिया है कि मैं हिन्दू कोड विल को विवाह तथा तलाक के मुद्दों तक ही सीमित रखू। इस आशा में कि इतने करने के श्रम से आशापूर्ण फल निकलेगा लेकिन ऐसा करने से हिन्दू कोड विल का भाग समाप्त हो जायेगा। फिर मंत्रमंडल में निरंतर बने रहने का मैरा कोई उद्देश्य ही नहीं रह जायेगा।''[1]

मधुलिमये (1990:81):- ''संविधान निर्माता डा. अम्बेडकर''

26 नवम्बर, 1949 को ''संविधान निर्मात्री परिषद्'' ने भारत वासियों की ओर से नया संविधान स्वीकार कव लिया। परिषद् के अध्यक्ष डा. राजेन्द्र प्रसाद ने कही कि ''इस संविधान निर्माण के कार्य को पूरा होते देखकर मुझे सबसे अधिक प्रसन्नता है। जिस उत्साह लगन और ईमानदारी से संविधान रचना समिति और विशेषरूप से उसके अध्यक्ष डा. अम्बेडकर ने अस्वस्थ होते हुए भी कार्य किया है उसको देखकर मैं कह सकता हूँ कि हमने डा. अम्बेडकर को संविधान का दायित्व सौंपकर अत्यन्त महत्वपूर्ण निर्णय लिया था''। डा. राजेन्द्र बाबू ने आगे कहा कि ''इस प्रकार स्वतंत्र भारत के संविधान शिल्पी डा. अम्बेडकर ने अपनी बुद्धि, प्रतिभा और योग्यता की हर कीमत चुकाकर देश को एक नया संविधान भेंट कर दिया। संसार में ऐसी मानसिक ऊंचाई और शाश्वत प्रतिभा के धनी कर्मठ महापुरूष कभी-कभी ही अवतरित होते है।''

1. धनंजय कीर : डा. अम्बेडकर लाइफ एण्ड मिशन, पृष्ठ-434

<u>अस्पृश्यता का काला कानून समाप्त :-</u> स्वतंत्र भारत का नूतन संविधान स्वयं डा. अम्बेडकर जी द्वारा लिखा जा रहा था। सम्पूर्ण देश ने सारे अधिकार आज उन्हीं को सौंप दिये थे। संविधान निर्माण में वरिष्ठतम् नेताओं का पूरा सहयोग भी हृदय से मिल रहा था। हिन्दू समाज के इतिहास का एक कलुषित अध्याय समाप्त होने का यह स्वर्णिम और अविस्मरणीय क्षण आ गया। इस देश का प्रत्येक हिन्दू अपने संवैधानिक अधिकारों में कानून के सामने समान होने जा रहा था। इस अछूत प्रथा का समाप्त करने के लिए जो प्रस्ताव प्रस्तुत किया जाना था; उसके लिए देश के लौह पुरूष सरदार बल्लभ भाई पटेल स्वयं प्रस्तुत हुये।

29 अप्रैल, 1947 को भारत की संविधान निर्मात्री परिषद् ने घोषणा कर दी कि सम्पूर्ण भारतवर्ष के अन्दर अस्पृश्यता किसी भी रूप में समाप्त की जाती है, और यदि किसी भी प्रकार की अयोग्यता को बलात् लादा गया तो इसे दण्डनीय अपराध माना जायेगा।

हजारों वर्षो के पश्चात् भारत के इतिहास के सामाजिक पृष्ठ का काला अक्षर सदैव के लिये मिट गया, और धवल पृष्ठ में इस महान घटना को स्वर्णाक्षत में लिखा गया। एक बार पुनः मानवीय जीवन मूल्यों की विजय हुयी। हिन्दू संस्कृति की जीवन्तता विदित हो गयी। हिन्दू अपनी समस्त बुराइयों को दूर करने के लिये संघर्ष करते रहे हैं और करते रहेंगे यह भी आत्म विश्वास जग गया।

हिन्दू समाज का क्षयिष्णु मेरूदण्ड पुनः स्वस्थ होकर बलिष्ठ हो गया। इस देश के दलित, अस्पृश्य कहलाने वाले हिन्दू मानवता की पवित्र गंगा में पुनः वापस आ गये थे। प्रस्ताव का सरदार पटेल द्वारा प्रस्तुतीकरण अपने आप में इस बात का प्रमाण था कि उनके हृदय में दलित वर्ग के लिये मानवीय संवेदना पूरी शक्ति के साथ जाग्रत हो गयी थी। इस संदर्भ में सम्पूर्ण भारत की जनता ने बल्लभ भाई को कोटिशः बधाइयाँ भी दीं और मानवीय इतिहास में उनका नाम भी अमर हो गया। संसार के सभी समाचार पत्रों ने इस कार्य की मुक्त कंठ से प्रशंसा की। डा.

अम्बेडकर का एक स्वप्न पूरा हुआ लेकिन अभी बहुत कार्य शेष था। सभी हिन्दुओं को एक रखने के लिये हिन्दू कोड विल लागू किया।

वैदिक, शैव, सिक्ख, जैन एवं बौद्ध सभी हिन्दू हैं - संविधान बनाते समय और बाद में जब डा. अम्बेडकर जी कानून मंत्री थे तब इस बात पर बहुत विचार हुआ था कि कौन हिन्दू हैं? तब डा. अम्बेडकर जी ने कड़ाई से कहा कि इस देश में पैदा हुये सभी सम्प्रदाय यथा-वैदिक, शैव, सिक्ख, जैन एवं बौद्ध सभी को कानून की दृष्टि से हिन्दू ही माना जाना चाहिये और सभी के ऊपर एक ही कानून लागू होगा। उस समय कुछ सिक्ख बन्धु किसी गलत फहमी के कारण यह कह रहे थे कि उन्हें संविधान के अनुच्छेद 25 से दूर रखा जाना चाहिये। डा. अम्बेडकर जी ने इस बात का तीव्र विरोध किया और कहा कि 1830 के प्रिवीकोंविल द्वारा भारत का संविधान बनाये जाने तक सिक्खों को हिन्दू ही माना जाता था। इसी कारण वे आज भी हिन्दू ही हैं। बाद में जब वे कानून मंत्री बने तब उन्होंने "हिन्दू कोड बिल" का प्रस्ताव रखा। उनकी मान्यता थी कि ये सभी हिन्दू हैं, और हिन्दू समाज में समरसता आनी चाहिऐ। आगे चलकर "हिन्दू कोड बिल" पारित हुआ और हिन्दू धर्म के सभी सम्प्रदायों के बन्धु इसी हिन्दू कोड बिल में शामिल किये। वे कहते हैं कि-

"भारत में वैदिक, बौद्ध, जैन, सिक्ख आदि धर्म उत्पन्न हुये। अपने लिये स्वतंत्र कानून अथवा धर्मशास्त्र की रचना नहीं की, कानून की नई संहिता नहीं बनाई। न बुद्ध ने, न महावीर ने। मेरी जानकारी के अनुसार सिक्खों के दस गुरूओं ने भी कोई नई संहिता या स्मृति तैयार नहीं की। संविधान के अनुच्छेद 25 ने और नई बात क्या की है।"

श्री आश्चर्य लाल नरूला :- "हमारे डा. अम्बेडकर जी"

धर्म अफीम नहीं है-कम्युनिष्ट विचारधारा को मानने वाले लोग कहते है कि क्या धर्म की बात करते हों यह तो अफीम की गोली है। उनके लिये और हम सभी

के लिये यह बात ध्यान देने की है कि उस सम्बंध में डा. अम्बेडकर जी का क्या कहना था? आज तरूणी की क्या स्थिति है?

"तरूणों की धर्म विरोधी प्रवृत्ति देखकर मुझे बड़ा दुख होता है। कुछ लोग कहते हैं कि धर्म अफीम की गोली है परन्तु यह सही नहीं है। मेरे अन्दर जो भी अच्छे गुण है अथवा मेरी शिक्षा के कारण समाज हित के काम जो मैंने किये हैं वे मुझ में विद्यमान धार्मिक भावना के कारण ही हैं। मुझे धर्म चाहिये लेकिन धर्म के नाम पर चलने वाला पाखण्ड नहीं चाहिये।"

रामा स्वामी एस. आर. :- "प्रखर राष्ट्र भक्त डा. अम्बेडकर"

डा. अम्बेडकर जी हरिजन शब्द के विरोधी थे- 19 जुलाई,1936, को बम्बई प्रान्त में कांग्रेस द्वारा मंत्रीमण्डल गठित किया गया। डा. साहब ने कहा कि इस मंत्रीमण्डल में कोई प्रतिनिधि तो अनुसूचित जातियों में से भी होना चाहिये था। तभी काउन्सिल में एक सरकारी बिल पेश किया गया जिसके द्वारा अछूतों के लिए 'हरिजन' शब्द के प्रयोग की सिफारिश की गई। डा. अम्बेडकर, दादा साहब गायकवाड़ तथा अन्य सदस्यों ने भी इस शब्द का विरोध किया; परन्तु बहुमत होने के नाते कांग्रेस ने वह शब्द अछूतों के मत्थे मढ़ दिया। दादा साहब ने यह पूछा भी कि यदि अछूत लोग "हरिजन" अर्थात् ईश्वर के लोग हैं, तो क्या सवर्ण हिन्दू किसी दानव से संबंधित हैं? डा. साहब ने भी कड़ा विरोध किया और कहा कि "हम बाद में मिलकर किसी अच्छे शब्द का चुनाव कर के बतला देगें; क्योंकि हरिजन शब्द में पाखण्ड की बू आती है।" लेकिन जब डा. अम्बेडकर जी के निवेदन की ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया तब उनके साथ के सभी सदस्य विरोध प्रकट करने की दृष्टि से हाल के बाहन चले गये अर्थात् उन्होंने विरोध में वाक आउट किया। सभी दलितों को "हरिजन" नाम देना एक प्रकार का थोपा हुआ अन्याय था जिसको आज भी दलित पसन्द नहीं करते।(डा. अम्बेडकर, व्यक्तित्व एवं कृतित्व- डा.डी.आर. जाटव पृष्ठ-154-155)

<u>बौद्ध मत स्वीकार किया-</u>

बौद्धमत प्रेम, करूणा और भ्रातृभाव सिखाता है- प्रकाण्ड विद्वान, देश और समाज समर्पित जीवन होते हुऐ भी अम्बेडकर जी को स्थान-स्थान पर अपमान और तिरस्कार के कटु अनुभव हो जाते थे। यद्यपि अब अधिकांश लोग उनका सम्मान करने लगे थे फिर भी पुराने विचारों के लोगों के निकृष्ट व्यवहार के कारण दुख होना भी स्वाभाविक था। अन्ततोगत्वा उनके मन में निर्णय हुआ कि इसी देश में जन्मा, विकसित हुआ और फैला बौद्ध मत भी सम्पूर्णतया राष्ट्रीयता से ओत-प्रोत है। उसकी नैतिक शिक्षाएं भी विश्व में अद्वितीय है। प्रेम, प्रज्ञा, करूणा, समता, अहिंसा, अस्तेय आदि बातों का उनके हृदय पर बड़ा प्रभाव हुआ था। एक ओर अपमान और तिरस्कार दूसरी और प्रेम और करूणा का संदेश। बाबा साहब ने निर्णय लिया कि बौद्ध मत ही श्रेष्ठ है। जीवन का संध्याकाल भी आ गया था। 14 अक्टूबर विजयदशमी की दिन 1956 को बाबा साहब ने अत्यन्त शान्त मन से हृदय का समस्त बैरभाव त्याग कव सम्पूर्ण राष्ट्रीयता को हृदय में संजोकर बौद्धमत का वरण किया।

इस समारोह में उन्होंने कहा कि "अस्पृश्यता के बारे में महात्मा गाँधी से मेरा तीव्र मतभेद था, किन्तु मैंने एक बार वचन दिया था कि समय आने पर इस देश को न्यूनतम हानि का, मार्ग अपनाऊंगा। अब बौद्ध मत अपनाकर मैंने अपना वचन पालन किया है। देश के लिए मेरी यही सेवा है। बौद्ध मत भारतीय संस्कृति का ही एक अभिजात्य अंग है। मतान्तर करने से इस देश की संस्कृति, इतिहास, परंपरा को किसी प्रकार की हानि नहीं हो, इस बात पर मैंने समस्त सावधानियों बरती हैं।"



अध्याय -4

डॉ0 अम्बेडकर के सामाजिक विचार

डॉ. अम्बेडकर की दार्शनिक सोच विभिन्न सामाजिक एवं राजनैतिक परिस्थितियों की देन है। जब उन्होंने अछूत एवं शूद्रों की दूख भरी गाथाओं का अध्ययन किया तथा उनकी अमानवीय स्थिति का अवलोकन किया और स्वयं इन स्थितियों से गुजरे, तो उनका मानव हृदय विचलित हो उठा। अनेक प्रकार की सामाजिक एवं धार्मिक बुराइयों ने इन वर्गो का जीवित रहना दुर्लभ कर दिया था। इन्हीं सब परिस्थितियों में डा. अम्बेडकर के समाज दर्शन का जन्म हुआ। इनसे ही अनेक आर्थिक, राजनैतिक, नैतिक एवं धार्मिक विचारों का प्रस्फुटन वैज्ञानिक ढ़ंग से हुआ है।

डॉ. अम्बेडकर के पूर्व सामाजिक व्यवस्था :-

भारत वर्ष में कुछ ऐसी सामाजिक एवं धार्मिक परिस्थितियां रही है। जिनके कारण करोड़ों मनुष्य अमानवीय व्यवहार, अन्याय एवं अत्याचार के शिकार बने। बहुत से वर्ग अनेक कठिनाइयों में पिसते रहे बहुत कम ऐसे समाज सुधारक हुए है, जिन्होंने उनकी यथार्थ समास्याओं की ओर ध्यान दिया। अधिकांश सुधारकों ने उनकी समस्याओं को उपेक्षा की दृष्टि से देखा और उनकी कठिनाइयों को दूर करने के लिए आवश्यक प्रयत्न नहीं किये। लेकिन कुछ समाज सुधारकों ने उन दलित वर्गो की वास्तविक समस्याओं को ठीक-ठीक समझा, जो यर्थात् अद्धेय मानव जीवन व्यतीत कर रहे है। उन्होंने उनकों ऊंचा उठाने के लिए सक विरोध दृष्टिकोण अपनाया। डा. अम्बेडकर को सामान्य लोगों के लिए सुलभ बनाया।

(i) प्राचीन काल :- ऋगवेद के पुरूष सूक्त में कहा गया है कि संसार की समृद्धि के लिए ब्रह्मण, भुजाओं से क्षत्रीय, जंघाओं से वैश्य एवं चरणों से शूद्र को पैदा किया अर्थात् ब्रह्मा ने मानव जाति को चार वर्णो में विभाजित किया। इस विभाजन को वर्ण व्यवस्था के रूप में एक आदर्श माना जाता है। प्रत्येक वर्ण का कार्यक्षेत्र पृथक-पृथक है। यही कारण है कि हिन्दू विचारकों ने इस व्यवस्था को श्रम विभाजन का प्रमुख आदर्श माना है इस व्यवस्था का प्रारम्भिक उद्देश्य, न्याय एवं एकता बताया जाता है प्रत्येक व्यक्ति को अपना-अपना कार्य करने का अवसर दिया जाता है। प्रत्येक वर्ण कर्तव्य पालन में संलग्न रहकर लाभान्वित होता था नैतिक दृष्टिकोण से प्रत्येक वर्ण का स्थान जन्म के आधार पर था। जिसमें प्रत्येक वर्ण के कर्तव्य निर्धारित परन्तु अधिकार नहीं थे ना ही वे अधिकारों की मांग कर सकते थे क्योंकि अधिकारों की मांग को अशोभनीय समझा जाता था। वस्तुतः हिन्दू धार्मिक, साहित्य में केवल कर्तव्यों पर ही अधिक बल दिया गया है। आधुनिक समाज अधिकारों की जिस महत्ता को स्वीकार करता है, उसे हिन्दू समाज में कभी भी प्रमुख स्थान नहीं दिया गया। क्योंकि अधिकारों की मांग संघर्ष को बढ़ावा देती है मनुष्य को अपने कर्तव्य करते रहना चाहिए। अच्छे एवं महान व्यक्ति कभी-भी अधिकारों की मांग नहीं करते। डा. राधाकृष्ण ने कहा कि, "यदि सभी वर्णो के लोग अपने-अपने निश्चित कर्तव्य करते रहे, तो वे उच्चतक अमिट आनन्द की अनुभूति कर सकते है।"

व्यवहारिक जीवन में इस श्रम विभाजन एवं अधिकार भेद के सिद्धांत को किंचित मात्र भी स्थान नहीं दिया गया। ब्राह्मणों ने वर्ण व्यवस्था के आदर्श को अपनी झूँठी सामाजिक प्रतिष्ठा का साधन बना लिया, जिसको कायम रखने के लिए अन्धविश्वास का सहारा लेकर उन्हें गुमराह करते रहे। इस प्रकार वर्ण व्यवस्था ने शोषण की भावना को अत्यधिक बल दिया। इसके आधार पर ऊँच-नीच की भावनाओं को उत्पन्न किया। असमता एवं अत्याचार जैसी सामाजिक बुराईयों को

संरक्षण मिला। इस तरह वर्ण व्यवस्था व्यवहारिक दृष्टि से वर्ण विरोध साधन बन गई। हिन्दू समाज में अनेक सामाजिक बुराईयां उत्पन्न हो गई। जिनका सीधा प्रभाव निम्न कहे जाने वाले वर्णो पर पड़ा। अछूत एवं शूद्रों की स्थिति पशुओं से भी बद्तर हो गई। इसका सामाजिक आदर नितान्त दोषपूर्ण बन गया, जिसके कारण सभी निम्न वर्ग पीड़ित होने लगे वह पीड़ा निरन्तर चली आ रही है।

पाचीन काल में, जब वर्ण व्यवस्था बहुत अवनति की ओर चली गई, तब विभिन्न प्रकार की बुराईयों ने मनुष्य के ऊपर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया और जब वैदिक समाज व्यवस्था नष्ट-भ्रष्ट हो गई, तब कुछ महान पुरूषों ने सामाजिक एवं धार्मिक सुधारों के लिए बहुत ही प्रभावशाली आन्दोलन किये। महावीर एवं बुद्ध जैसे महार्थियों ने परम्परावादी सामाजिक व्यवस्था के लिए आवाज उठाई उन्होंने 'मानव की एकता एवं भ्रातत्व' पर बल दिया। सम्पूर्ण हिन्दू धर्म के प्रति उन्होंने एक सुधारवादी दृष्टिकोण अपनाया, ब्राह्मणवाद के विरूद्ध आन्दोलन किये और ब्राह्मणों की अनुचित प्रभुता का महत्व इन महा-मानव प्रेमियों ने दिला दिया।

दार्शनिक एवं धार्मिक क्षेत्र में जैन धर्म का एक महत्वपूर्ण स्थान रहा है, किन्तु बौद्धधर्म की तुलना में जैन धर्म का सामाजिक आन्दोलन अधिक सक्रिय नहीं रहा। बौद्धधर्म का उद्देश्य उस समय वर्तमान हिन्दू धर्म एवं सामाजिक अन्याय का अन्त करना था। 'मानव स्वरूप के अनुसार, बुद्ध ने जाति व्यवस्था के बंधनों को तोड़ डाला और समस्त मानवता के लिए समता का पाठ पढ़ाया।

बुद्ध ने हिन्दू समाज व्यवस्था को अव्यवहारिक एवं अनैतिक सिद्ध किया और उन सभी लोगों को ललकारा, जो अत्याचार एवं शोषण के मुखिया थे। भगवान बुद्ध ने मानव अधिकारों की समता पर बल दिया उन्होंने उन बुराईयों को दूर करने के अथक प्रयत्न किये, जिससे मानव जाति आज भी सुखी है। बुद्ध का आन्दोलन केवल विरोधात्मक ही नहीं था, परन्तु उन्होंने एक नवीन समाज का

निर्माण किया, जिसमें सभी मनुष्य समता एवं स्वतंत्रता के अधिकारी थे। वह हिन्दू समाज व्यवस्था के कट्टर विरोधी थें। सैद्धांतिक रूप से उन्होंने 'सम्पूर्ण हिन्दू धर्म' को चुनौती दी। यद्यपि एक नवीन समाज की स्थापना करने में बुद्ध को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, किन्तु उन्होंने अपना साहस नहीं खोया और समस्त सामाजिक एवं धार्मिक अन्यायों के प्रति जनचेतना जागृति की। बुद्ध ने एक नवीन समाज की स्थापना की और उन सामाजिक एवं अध्यात्मिक सुधारों का अविर्भाव किया, जिनकी उस समय के सभी वर्गो को आवश्यकता थी।

बुद्ध द्वारा प्रतिपादित सामाजिक आन्दोलन एक ही गति से अधिक दिनों तक नहीं चल पाता। वह बुद्ध की मृत्यु के पश्चात् धीरे-धीरे गतिहीन होने लगा, इसके कारण तो अनेक है, लेकिन कारण उनके शिष्यों की समाज सेवा के प्रति उपेक्षा थी।

<u>(ii) मध्यकाल :-</u> जब इस्लाम धर्म भारत में आया, तो एक नवीन सामाजिक एवं धार्मिक दौर का अविर्भाव हुआ। मुस्लिम नेताओं ने सबके लिए समान अधिकार एवं स्वतंत्रता का दावा किया। इस्लाम के विद्वानों के अनुसार मोहम्मद साहिब के धर्म ने भारतीय जन-जीवन को प्रत्येक पक्ष में प्रभावित किया।

इस्लाम में बुद्ध की विशेषताएं हो, किन्तु भारत के जन-जीवन में वह कोई प्रगतिशील परिवर्तन नहीं ला पाया। इस्लाम के आगमन से भारतीय समाज में छुआछूत का महल एवं जाति-पाति का किला और अधिक दृढ़ हो गये। जाति व्यवस्था को नवीन आधार मिला इस्लाम भी भारतीय जातिवाद के शिकंजे में कस गया। इस प्रकार वर्तमान सामाजिक बुराईयों को बल मिला। एक कट्टर मुसलमान समाज राजनीति एवं धर्म को नहीं मानता है धर्म और राजनीति की समग्रता मुस्लिम समाज की एक विशेषता है इसलिए मुस्लिम नेताओं ने हिन्दुओं एवं बौद्धों को बलपूर्वक अपने समाज में मिलाया। इसलिए मुस्लिम समाज ने करोड़ों शूद्र एवं अछूत को तलवार शक्ति से मुसलमान बना लिया। सामाजिक

सुधार के स्थान पर मुस्लिम शासकों ने अनेक कठिनाईयाँ एवं बुराईयाँ उत्पन्न कर दीं अतः उनके राज्य में निर्धन लोगों की दशा और बिगड़ने लगी। आर्थिक लाभ के व्यवसाय उनसे छीन लिए गये। राजनैतिक अधिकारों से उन्हें बिल्कुल वंचित कर दिया गया। मुस्लिम विद्वान एवं समाज सुधारक उनकी समस्याओं को न तो समझ पाये और न हल कर सके शूद्र और अछूत वैसे ही रहे जैसे कि वे थे। उनके हालात में कोई सुधार नहीं हुआ।

हिन्दू एवं मुस्लिम समाज में बनावटी रीति-रिवाज के प्रति बहुत से साधु-संतों रामानन्द, कबीर, नानक, चैतन्य, तुलाराम, ज्योतिबाफूले इत्यादि ने समय-समय पर विरोध प्रकट किये। उन्होंने समाज सुधार में महत्वपूर्ण योगदान दिये। किन्तु फिर भी शूद्र एवं अछूतों की दशा ज्यों की त्यों बनी रही और कोई मौलिक सुधार नहीं हुआ। यहाँ तक कि इन लोगों की परछाई भी उन हिन्दू एवं मुसलमानों को दूषित करने लगी। दूध, दही देने वाले पशुओं को रखना उनके लिए निषेध कर दिया गया और शिक्षा के द्वार बन्द कर दिये गये इस प्रकार मुस्लिम काल में शूद्र एवं अछूतों को मानव अधिकारों से वंचित रखा गया। इस्लाम का संदेश आशा के बजाय निराशा में परिवर्तित हो गया।

(iii) आधुनिक काल :- ईसाई धर्म का आगमन भी इन्हीं परिस्थितियों में हुआ ईसाई नेताओं ने भारतीय सामाजिक एवं राजनैतिक स्थिति का अध्ययन किया और वहां के वातावरण को उन्होंने अपने धर्म के प्रचार एवं प्रसार के अनुकूल पाया। भारतीय समाज में अनेक सामाजिक एवं धार्मिक बुराइयां उत्पन्न हो गई थी। हिन्दू मुसलमानों के झगड़े आये दिन हुआ करते थें बेरोजगारी का प्रकोप एवं भुखमरी का बोलबाला था। सामान्यतः सभी वर्गो की दशा बहुत अधिक बिगड़ चुकी थी।

ऐसी परिस्थितियों में ईसाई लोगों ने अपने धर्म का संदेश दिया। ईसाई विद्वानों के अनुसार ईसा का धर्म, प्रेम एवं सद्भावना, भ्रातृत्व एवं प्रजातंत्र तथा समता एवं स्वतंत्रता पर आधारित है। कहा जाता है कि यह धर्म बहुत ही क्रांतिकारी

है। क्योंकि इसमें सभी लोगों को समान अधिकार दिये जाते हैं कि उनका धर्म मानव उन्नति एवं दीनहीनों को ऊंचा उठाने के लिए स्थापित किया गया था।

ईसाई नेताओं एवं विद्वानों की यह बातें कुछ वर्गो के लिए सत्य हो सकती है लेकिन ये शूद्र एवं अछूतों के उपेक्षित भाग्य को समझ न सके। ईसा के अनुयायी उनकी वास्तविक समस्याओं को हल न कर सके। उन्होंने अपनी संख्या बढ़ाने में अधिक ध्यान दिया, लेकिन उन्होंने सामान्य भारतीय लोगों की कठिनाइयों को न तो समझा ही और न ही उन्हें निष्ठापूर्वक दूर करने के प्रयास ही किये, उन्होंने केवल उन्हीं लोगों को आर्थिक सहायता दी, जो ईसाई होने वाले थे अथवा हो चुके थें। ईसाईयों ने केवल अपने व्यापार को बढ़ाने में जो प्रगति की। वह किसी और क्षेत्र में नहीं की। उनका मुख्य उद्देश्य व्यापार एवं अपने धर्म का प्रचार करना था।

अधिकांश अछूत एवं शूद्रों की स्थिति वैसी ही रही, जैसी की प्राचीन एवं मध्यकाल में थी। हिन्दू समाज में जातिवाद और दृढ़ हो गया। आपसी मतभेद भी बढने लगा। ब्रिटिश राज्य के अंतिम दिनों तक अछूतों की हालत बहुत ही खराब हो गई। यह लोग आर्थिक शोषण एवं राजनैतिक दासता के चंगुल में और जकड़ गये। यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगी कि ईसाई धर्म भी इन वर्गो की दशा सुधारने में असमर्थ रहा। जाति-पाति, आर्थिक शोषण, राजनैतिक दासता एवं सामाजिक बुराइयों से गरीब वर्गो को छुटकारा न मिल सका।

ब्रिटिश साम्राज्य के प्रारम्भ में ही ब्रम्ह्म समाज की स्थापना हुई। इस संगठन का मुख्य उद्देश्य हिन्दू समाज की शुद्धि करना था। बाल-विवाह, एवं सतीप्रथा अन्य सामाजिक बुराइयों को दूर करने में ब्रम्ह्म समाज ने अधिक योगदान दिया। व्यक्तिगत स्वतंत्रता, उपयोगितावाद एवं उदार मानवता इस समाज के आधार थे। आर्य समाज की स्थापना भी हिन्दू समाज की वृद्धि एवं प्रगति के लिए की गई थी। इस समाज का आन्दोलन क्रियाशील एवं सद्भावना वाला था। आर्य समाज ने

जातिवाद, बालविवाह, सतीप्रथा, मूर्तिपूजा आदि को घटाने में अधिक महत्वपूर्ण कार्य किये। थोड़े समय के लिए आर्य समाज ने अछूतों की सामाजिक दशा सुधारने का कार्य भी हाथ में लिया। वर्तमान परिस्थितियों में आर्य समाज का कर्तव्य स्पष्ट एवं सुधारवादी नहीं है।

प्रार्थना समाज भी एक सुधारवादी संगठन था, जिसका मुख्य उद्देश्य जातिवाद का अन्त करना था। इसके लिए रानाडे ने हिन्दू समाज की सराहनीय सेवा की। वह हिन्दू समाज को एक नवीन रूप देना चाहते थे। इसलिए उन्होंने सभी वर्गों के समान अधिकारों की मांग की। ब्रम्ह समाज, आर्य समाज एवं प्रार्थना समाज ने अपनी-अपनी विधियां एवं विचारों से हिन्दू समाज की सेवा की उन्होंने हिन्दू संस्कृति को इस्लाम एवं ईसाई धर्म से बचाने के लिए महत्वपूर्ण कार्य किये।

इन संस्थाओं के सुधारवादी दृष्टिकोण के द्वारा भी शूद्र एवं अछूतों की दशा ठीक नहीं हो पाई इन आन्दोलनों के होते हुए भी सामाजिक संबंध और कष्टदायक बन गये। अछूतों के लिए सामान्य सुविधाओं के द्वार बन्द कर दिये गये कुँओं से पानी भरना बन्द करा दिया गया और तालाबों का गन्दा पानी उन्हें पीने को बताया गया। उनके बच्चों को आश्रम एवं पाठशालाओं में कोई स्थान नहीं दिया गया। यद्यपि अछूत कोई हिन्दू देवी-देवताओं को पूजते थे लेकिन फिर भी मंदिरों में उनका जाना वंचित कर दिया गया। नाइयों एवं धोबियों ने अछूतों की सेवा करना उचित नहीं समझा। राज्य सेवाओं में भी उनके लिए कोई स्थान नहीं था उनके चारों ओर अज्ञान एवं अन्धकार का साम्राज्य था। जीवन को प्रगतिशील बनाने के लिए कोई साधन अछूतों के पास नहीं छोड़े गये। गांवों के किनारे पर गंदी बस्तियां रहने के लिए दी गई। हिन्दू, मुसलमान एवं ईसाई अछूतों को अर्द्ध मानव, मनुष्यों से कम और पशुओं से बदतर समझते थे संक्षेप में सामाजिक मानवता, प्रेम एवं भाईचार की भारी कमी थी। उच्च वर्ग एवं अछूतों के संबंध बिल्कुल बिगड़ चुके थे। अछूत

के रूप में ही अपमान का जीवन व्यतीत करते थे और अछूत की स्थिति में निरन्तर कष्ट पाकर मृत्यु को प्राप्त होते थे।

वर्तमान संविधान लागू होने से पूर्व अछूतों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया गया था, वे अछूत जिनको छूना पाप था, वे अछूत जिनकी परछाई सवर्ण हिन्दूओं को दूषित बना देती थी, वे अछूत जिनको देखने मात्र से ही पाप चढ़ जाता था। हिन्दू समाज के विषय में इससे अधिक केवल महापाप ही नहीं समझा गया, वरन् उन्हें व्यवहारिक रूप भी दिया गया।

इस अध्याय में डा. अम्बेडकर के सामाजिक विचारों का उल्लेख क्रमबद्ध रूप से करने का शोधार्थी द्वारा प्रयास किया गया है। वे भारत वर्ष के महान समाजशास्त्री थे। उन्होंने समाजशास्त्र के ऊपर कई मौलिक ग्रन्थों की रचना की जो निम्नलिखित हैं :-

1. कास्ट इन इन्डिया (1917)
2. जातियों का उच्छेदवाद (1936)
3. अछूत कौन और कैसे (1948)
4. गांधी व कांग्रेस ने अछूतों के लिए क्या किया? (1945)

प्रस्तुत अध्याय में डा. अम्बेडकर के सामाजिक विचार जिन सामाजिक अवधारणाओं एवं प्रत्ययों के बारे में प्रस्तुत किए गये हैं उनमें मुख्यतः इस प्रकार है:-

1. एक आदर्श समाज
2. मानववाद
3. नव समाज व्यवस्था
4. हिन्दू सभ्यता
5. हिन्दू सामाजिक व्यवस्था
6. वर्ण व्यवस्था
7. बुद्धवाद बनाम हिन्दूज्म
8. समानता और असमानता
9. जाति व्यवस्था
10. जाति व्यवस्था और बुद्धवाद
11. गुलामी
12. अस्पृश्यता

13. सामाजिक अलगांव
14. नातेदारी
15. नारी
16. हिन्दू कोड बिल
17. धर्मान्तरण
18. ग्राम जीवन
19. पत्रकारिता।

हिन्दू सभ्यता :- डा. अम्बेडकर (1989:10): कहते हैं कि अस्पृश्यता का देश निकाला हो जायेगा। जब पूर्ण हिन्दू सामाजिक व्यवस्था का भारत से विध्वंस हो जायेगा। क्या यह सम्भव है? प्रत्येक संस्था कुछ सामाजिक स्वीकृतियों से जीवित है। यहां तीन प्रकार की सामाजिक स्वीकृतियां है जो सामाजिक संस्था की शक्ति की सम्पूर्ति करती है वे है कानूनी, सामाजिक तथा धार्मिक। संस्था की वैधता स्वीकृति की प्रकृति पर निर्भर करती है। जाति व्यवस्था के पीछे क्या स्वीकृति है? दूर्भाग्य से जाति व्यवस्था के पीछे धार्मिक स्वीकृति है वह भी वर्ण के स्वरूप में। वर्ण व्यवस्था वेद से ली गई है जो हिन्दुओं की पवित्र पुस्तक है। मैं इसे इसलिए दुर्भाग्यपूर्ण कहता हूँ कोई तथ्य जा धार्मिक स्वीकृति रखता है वह अपने मूल्य के कारण पवित्र हो जाता है। इसलिए हिन्दू जाति पवित्र है। यह जाति समस्या नहीं हो सकती फिर अस्पृश्यता निवारण की क्या आशा की जाय।[1]

सी. वी. खेरमोड :- डा. अम्बेडकर की आत्मकथा में लिखते है कि, "यदि आप घर के भीतर से अस्पृश्यता को निकालना चाहते हो तो अर्न्तराष्ट्रीय विवाह के अतिरिक्त दूसरा विकल्प नहीं है। आप सभी याद रखे कि यदि यह हो जाता है तो सभी उपजातियां स्वतः समाप्त हो जायेगी।" डा. अम्बेडकर कहते है, "शास्त्रों के बारे में कोई प्रश्न न करें? लोगों को विश्वास करने दो अपनी सामाजिक स्वीकृतियों में, उन्हें कीचड़ उछाल ने दो, आलोचना करने के लिए, उनके कार्यों की, कि वे अमानवीय है आदि। ये समाज सुधार के हतोत्साहित माध्यम हैं। सुधारक, जिसमें गांधी शामिल हैं, अस्पृश्यता दूर कर रहे हैं। प्रतीत नहीं होता कि उनके

1. डा. अम्बेडकर (1989:10): स्पीचेज एण्ड राइटिंग्स, खण्ड-5, पृष्ठ-10

कहने से लोग अस्पृश्यता त्याग देगें। बिना शास्त्रों के बदले व्यक्ति कैसे विश्वासों में परिवर्तन कर लेगें जब तक वे जाति के शास्त्र की स्वीकृति का अन्त नहीं करत जिस पर हिन्दूओं का आचरण निर्भर है।"[1]

अस्पृश्यता निवारण के लिए डा. अम्बेडकर दलितों से कहते थे कि, "जब तक अस्पृश्य अपने ग्रामों के रहने का बहिष्कार नहीं करेगें तब तक उनकी सामाजिक व आर्थिक दशाऐं नहीं सुधरेगी।"[2] डा. अम्बेडकर (1927) अपनी पत्रिका वहिष्कृत भारत में अस्पृश्यता के ऊपर लिखते है कि, "अस्पृश्यता का उन्मूलन तथा अन्त जाति भोजों के अकेले दलितों की परेशानियों का अन्त नहीं होगा फिर चाहे कोर्ट, सेना, पुलिस तथा वाणिज्य विभागों में हमें सेवा कार्य दे दिया जाये। वे लिखते है कि जब तक हिन्दू समानता तथा जातिवाद की उपस्थिति के दो मुख्य सिद्धांतों की पहिचान नहीं करते।"[3] डा. अम्बेडकर अस्पृश्यों को मुक्ति तभी मिलेगी जब कट्टरपंथी हिन्दू यह सोचने के लिए बाध्य होगे तथा उन्हें महसूस करने के लिए बाध्य किया जायेगा कि वे अपने विचारों में परिवर्तन लाये। मैं कट्टरपंथी हिन्दूओं की मानसिकता में क्रांति लाना चाहता हूँ।"[4] भगवान दास अपनी पुस्तक में डा. अम्बेडकर के संकल्पों को उद्यृत करते हुए लिखते है कि, "मेरे लिए अनुसूचित जातियों के लिए स्वतंत्रता अधिक महत्वपूर्ण है। वह समुदाय जो गत दो हजार वर्षो से प्रभुत्व तथा शोषण की शिकार रही है।"[5] डा. अम्बेडकर (1932): 'जनता' नामक पत्रिका में लिखते है कि, "न केवल अस्पृश्यों की प्रगति का प्रत्येक पथ सामाजिक पूर्वाग्रहों से बंदकर दिया है हिन्दुओं के द्वारा, लेकिन यहा एक निश्चित प्रयास हिन्दू समाज के द्वारा किया गया है तथा प्रत्येक सम्भव द्वार पर ताला डाल दिया गया है कि दलित वर्ग के जीवन के स्तर में प्रगति

---

1. खेरमोड़, सी. वी. : डा.अम्बेडकर की आत्मकथा, भाग-3, पृष्ठ-168।
2. डा. अम्बेडकर : ए क्रटीकल स्टडी, पृष्ठ-291।
3. वहिष्कृति भारत (1927): 30 दिसम्बर।
4. डा. अम्बेडकर (1984): राइटिंग्स एण्ड स्पीचेज, भाग-1, पृष्ठ-297।
5. भगवान दास : दस स्पोक अम्बेडकर, खण्ड-1, पृष्ठ-77।

के लिए न सहमति और न अवसर प्रदान किया जाय''[1]। डा. अम्बेडकर (1928): भारतीय स्टेट्टरी आयोग को ज्ञापन में लिखकर दिया कि, ''अनेक लोग विश्व में परिस्थितियों की शक्ति से निम्न स्तर पर गिर गये लेकिन वे गिर कर भी उठने को स्वतंत्र थे। इसके विपरीत दलित वर्ग एक मात्र केश है जो आज भी गिरे हुए हैं क्योंकि उनके उठने का विरोध किया गया। धर्म प्रधान देश के द्वारा उनके लिए अधखुला दरवाजा भी नहीं छोड़ा गया।''[2]

डा. अम्बेडकर ने जाति के उच्छेदवाद नामक पुस्तक में आदर्श समाज की अवधारण की व्याख्या करते हुए डा. अम्बेडकर अपने अमर ग्रन्थ 'जाति के उच्छेदवाद में लिखते है कि, ''यदि तुम मुझसे मेरे आदर्श के बारे में पूछो तो मेरा स्वतंत्रता, समानता तथा बन्धुत्व पर निर्भर आदर्श समाज होगा। एक आदर्श समाज गतिशील होता है जिसमें एक भाग से दूसरे भाग में परिवर्तन के माध्यम होते हैं।[3]'' धनंजय कीर ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि, ''सकारात्मक रूप से मेरी सामाजिक दर्शन तीन शब्दों में निहित है- स्वतंत्रता, समानता तथा बन्धुत्व। दूसरे लोगों को यह कहने दो कि मैने इस दर्शन को फ्रांस क्रांति से लिया है। मैने ऐसा नहीं किया। मेरा दर्शन धर्म की जड़ों में विद्यमान है न कि राजनीति में। मैने दर्शन को स्वामी बुद्ध के उपदेशों से ग्रहण किया है।[4]'' डा. अम्बेडकर ने रानाडे गांधी एवं जिन्ना पुस्तक में लिखा है, कि हमारा उद्देश्य एक व्यक्ति, एक मूल्य के राजनीति, आर्थिक तथा सामाजिक जीवन के अभ्यास में महसूस करता हूँ।[5]'' धनंजय कीर ने 'लाइफ एण्ड मिशज' पुस्तक में लिखा है कि, ''यदि प्रत्येक समुदाय को समानता के स्तर पर लाया गया तो एक ही असमानता के सिद्धांत को

---

1. डा. अम्बेडकर (1932): 'जनता' सितम्बर 24, 1932।
2. डा. अम्बेडकर (1928): ज्ञापन भारतीय स्टेट्टरी आयोग के सम्मुख प्रेसित, 29 मई, 1928।
3. डा. अम्बेडकर (1938:38): जाति का उच्छेदवाद, पवलीकेशन, महाराष्ट्र शिक्षा विभाग।
4. धनंजयकीर : लाइफ एण्ड मिशन, पृष्ठ-459
5. डा. अम्बेडकर (1943:438): रानाडे, गांधी, जिन्ना, थेकर को. मुम्बई।

ग्रहण किया जाये और अनुकूल उपचार उन्हें दिया जाय जो स्तर से नीचे हैं।"[1] डा. अम्बेडकर ने पाकिस्तान का बटवारा पुस्तक में लिखा है, "बिना सामाजिक एकता के राजनैतिक एकता प्राप्त करना कठिन है, यदि प्राप्त कर ली जाय तो इतना कीमती होगा जितना ग्रीष्म में रोपा हुआ छोटे पौधे का जीवन होना जो किसी भी विपरीत वायु के झौके से उखड़ जाता है।"[2]

डा. अम्बेडकर अपने आलोचनात्मक अध्ययन में कहते हैं कि-"एक आदर्श समाज में अनेक स्वार्थो को चेतनापूर्वक सम्प्रेरक्षा की प्रक्रिया के माध्यम से आदान-प्रदान किया जाता है और ये तो सामाजिक रूप से ....।"[3]

डा. अम्बेडकर (1943:36): ने अपनी पुस्तक 'रानाडे-गांधी-जिन्ना' में बताया कि प्रथम तो एक मानसिक धारणा होती है, एक धारणा अपने साथी के प्रति आदर की, दूसरा सामाजिक संगठन की सामाजिक बाधाओं से स्थिरता से स्वतंत्रता की.... प्रजातंत्र अप्रतियोगी तथा अनिरन्तर पृथकीय हो परिणाम स्वरूप सुविधा एवं असुविधा भोगी श्रेणियों में वह जाता है।"[4]...... ब्रूट के लिए संस्कृति आवश्यक नहीं होती परन्तु यह मनुष्य के लिए आवश्यक होती है। वह इसलिये क्योंकि मानव समाज का उद्देश्य प्रत्येक व्यक्ति को संस्कृति जीवन यापन के योग्य बनाये जिसका अर्थ है मानव मस्तिक का उवर्रक बनाए ताकि मात्र भौतिक इच्छाओं की संतुष्टीकरण के"।[5] इसी सन्दर्भ में धनंजय कीर, जब समाज सुधारक समाज का आह्वान करता है कि ऐसा कोई नहीं जो उसे नर्क में फैंक दे और यहां ऐसा कोई नहीं जो दुश्मन बनाये। लेकिन जब एक देश भक्त सरकार को चुनौती देता है तब सम्पूर्ण समाज उसका समर्थन करता है। उसे सराहा जाता है, तारीफ की जाती है और उसे एक नायक के रूप में ऊपर परिदृश्य में लाया जाता है, जो अधिक साहस

1. धनंजयकीर : (पृष्ठ:84): लाइफ एण्ड मिशन।
2. डा. अम्बेडकर (1945:185): पाकिस्तान और पार्टीशन आफ पाकिस्तान, थेकर को. बम्बई
3. डा. अम्बेडकर : 'एक आलोचनात्मक अध्ययन', पृष्ठ-68
4. डा. अम्बेडकर (1943:36): "व्हाट गांधी एण्ड कांग्रेस इन द अनटचेबिल्स"
5. डा. अम्बेडकर : रानाडे, गांधी, एण्ड जिन्ना, पृष्ठ-36

दिखाता है, एक समाज सुधारक जो अकेले ही लड़ता है और एक राजनैतिक देशभक्त एक कवच के नीचे ढका हुआ बहुजन व्यक्तियों के समूह समर्थन के साथ"। डा. अम्बेडकर ने अपने पाकिस्तान के बटवारे में लिखा है कि-"कोई नहीं कह सकता कि समाज सुधार की समस्या को अलग रख देना ऐच्छिक स्थिति है जबकि समाज में बुराइयां हो । स्वस्थ्य संरचना यह मांग करती है कि सभी सामाजिक व्याधिकियों का निवारण हो जाये उनके अन्याय एवं दुख प्रेरक प्रतीक बनने से पहले। इसके लिए सामाजिक एवं आर्थिक व्याधियां जो समाज में सर्वत्र हैं, वे ही क्रांति के माता-पिता होते हैं"। डा. अम्बेडकर 'जाति के उच्छेदवाद' में व्याख्या करते हैं कि, "इसका आशय है सामाजिक मूल्यों के जीवन में पूर्णरूपेण परिवर्तन करना अर्थात व्यक्ति के दृष्टिकोण और अवलोकनों में व्यक्ति एवं वस्तुओं की ओर पूर्ण परिवर्तन लाना.... यानी कि, नव जीवन का संचार करना। परन्तु नवीन जीवन एक मृत्यु शरीर में प्रवेश नहीं कर सकती। नव जीवन का संचार नव संरचना में ही सम्भव है। इसके लिए पुरानी सामाजिक व्यवस्था को मर जाना चाहिए नव सामाजिक रचना के प्रार्दुभाव होने के पूर्व ताकि नव जीवन का व्यवस्था में संचार हो सके। इसे सरलता से कहे तो अतीत का चलन से बाहर करना, नव सामाजिक व्यवस्था के प्रारम्भ होने और जीवित रहने हेतु"।

डा. अम्बेडकर (1945:237): जब तक एक समाज अपने को उच्च देखता है तो दूसरा समाज अपने को निम्न तो सामाजिक प्रगति नहीं हो सकती और तब एक की दूसरे में विलय की प्रक्रिया सतत चलेगी, निम्न और उच्च के विचारों एवं कार्यो में।"[1] वे आगे अपने दलित बन्धु निबन्ध में लिखते है कि-"एक समय हो जिसमें हम (दलित) हिन्दू व्यवस्था में अपना सम्माननीय स्थान पाये। अब हमने मांग की है कि दलित हिन्दू को सामाजिक व्यवस्था में समानता के रूप में पहिचान प्रदान की जाय। अब दलित राजनैतिक समानता मांग करते है। दल,

1. डा. अम्बेडकर (1945:237): पाकिस्तान और डिवीजन आफ पाकिस्तान, थेकर को. बम्बई

सामाजिक व्यवस्था में राजनैतिक, सामाजिक तथा राजनैतिक समानता पाने या स्थापित करने का कटिबद्ध है।''[1] डा. अम्बेडकर (1956:325) : कहते है कि-''यदि समाज में असामाजिक समूह निरन्तर रहेगें तो समाज पुनः अंगठित एवं क्रियात्मक बना रहेगा और इस असंगठित गत्यात्मक सामाजिक स्थिति से समाज में विविध स्तरात्मक संरचनाएं हो जायेगी। समान संरचना के तथा समान स्तर के अभाव में समाज में मधुर संबंध नहीं रहेगें। इस विभेदीकरण से यह व्यक्ति के लिए असम्भव होगा कि वह अपना ध्यान केन्द्रित रख सके। एक समाज जिसमें एक समूह की उच्चता और दूसरे की निम्नता बिना बौद्धिक आधार पर और अनुपात के विरुद्ध हक अदा करने के लिए हमे, समान नियम, नैतिकता के, सबके लिए पवित्र, रखना पडेगा।''[2] डा. अम्बेडकर (1943:34): मानवधिकार कानूनों से सुरक्षित नहीं रहते अपितु सामाजिक तथा नैतिक समाज की चेतना से। यदि सामाजिक चेतना नैतिक विकशित करली जाती है, उन कानून के द्वारा प्रतिपादित मानवधिकारों को सम्मान देने की, तभी अधिकार सुरक्षित होते है परन्तु आधारभूत मानव अधिकारों का समाज द्वारा विरोध किया जाता है तो कोई कानून न कोई संसद न कोई न्यायपालिका उन्हें गारंटी नहीं दे सकती विश्व में, वास्तविक रूप में।'' डा. अम्बेडकर (1948:7): में लिखते है कि-''समाज में वर्गो का अस्तित्व प्रशासनिक दशा है और कोई समाज प्रशासनिक दशा की न्यायीक विचार में बदल नहीं सकती एक आदर्श समाज की रचना में ......ग्रीक देश के सन्दर्भ में जैसा कि प्लेटों द्वारा सामाजिक आदर्श संरचना की वकालत की गई लेकिन ग्रीकों ने कभी इसे आदर्श समाज बनाने की स्वीकृति प्रदान की। समाज में सदा आदर्श दशा को स्वीकृति भी नहीं किया जाता। वे उवे प्राकृतिक एवे दैवीय रूप में स्वीकारते रहे।''

1. डा. अम्बेडकर (1945:185): पाकिस्तान और डिवीजन आफ पाकिस्तान, थेकर को. बम्बई
2. डा. अम्बेडकर (1956:325): बुद्ध एण्ड हिज धम्मा, सिद्धार्थ पवलीकेशन

डा. अम्बेडकर (1948:7): "हिन्दुओं ने समाज व्यवस्था की स्थायीपन तो चाहा परन्तु परिवर्तन के मूल्य पर नहीं। परिवर्तन सदैव सापेक्ष होता है। उनके द्वारा समायोजन चाहा गया परन्तु सामाजिक न्याय के बलिदान पर नहीं।"[1] डा. अम्बेडकर (1986:317): "अराजकता एवं तानाशाही में मानव स्वतंत्रा नष्ट हो जाती है।"[2] डा.अम्बेडकर (1956 :78) यद्यपि समाज में कुछ भी स्थाई नहीं है। कोई अमर है न कुछ सनातन है, प्रत्येक परिवर्तनशील है। व्यक्तियों एवं समाज के जीवन के लिए जीवन का कानून परिवर्तनशील है।[3]" डा0 आम्बेडकर (1943:7) व्यक्ति, इतिहास रचना का कारक है और पर्यावरण शक्तियां उसे प्रेरित करती है कि वह वैयक्तिक या सामाजिक बनने और ये इस प्रकार प्रथम पर अन्तिम वस्तुऐं नहीं होती'[4]'। डा0 अम्बेडकर अपने राष्ट्रीय आन्दोलन की भूमिका में बताते है कि- "हम महान नेताओं में और न महात्मा में विश्वास बनाने को तैयार नहीं हैं इतिहास साक्षी है महात्मा लोग -----------धुन्ध उड़ाते परन्तु वे किसी स्तर तक उठाते नहीं"[5]।

मानव वाद :-

मानववाद पर डा. अम्बेडकर (1936): की सामाजिक विचारधारा निम्न प्रकार थी- डा. अम्बेडकर के अनुसार, "एक वस्तु निश्चित है कि कोई व्यक्ति स्थाई संबंध नहीं चाहता। सब कुछ वह तो अपरिवर्तनीय, जो सब के लिए निश्चित है। स्थायित्व चाहा जाता है परन्तु परिवर्तन की बलि वेदी पर रख कर नहीं जब परिवर्तन सापेक्ष है। दूसरे तथ्य, एक व्यक्ति मात्र समायोजन ही नहीं चाहता समायोजन चाहिए पर सामाजिक न्याय की बलिबेदी पर नहीं '[6]'। वे आगे कहते है कि-"मैं अनुभव करता हूँ कि विश्व बहुत अपूर्ण है और जो व्यक्ति इसमें

1. डा. अम्बेडकर (1948:7): "हू वेयर द शूद्राज, थेकर को. बम्बई
2. डा. अम्बेडकर (1986:68): "ए कृटीकल स्टडी" पृष्ठ-68
3. डा. अम्बेडकर (1956:317): बुद्ध एण्ड हिज धम्मा, सिद्धार्थ पवलीकेशन
4. डा. अम्बेडकर (1943:7): रानाडे, गांधी, एण्ड जिन्ना, थेकर को. बम्बई
5. रोल आफ डा. अम्बेडकर इन नेशनल मूवमेन्ट, पृष्ठ-77
6. डा. अम्बेडकर (1936:21): जाति का उच्छेद वाद

जीवन यापन करता हैं उसे सहन करना चाहिए संसार की अपूर्णता को। परन्तु में इस संसार की अपूर्णता की स्थिति में। मैं अनुभव करता हूँ कि मुझे समाज का जीवन जीने की स्वीकृति नहीं चाहिए जो गलत विचारों को पनपाती है और वह समाज जिसमें आदर्श के उचित ढंग है, उनकी स्वीकृति अर्जित करना जो सामाजिक जीवन में उन आदर्शों के साथ दृढ़ता लाते है''[1]। डा. अम्बेडकर (1945): अपनी पुस्तक पाकिस्तान और पार्टीशन आफ पाकिस्तान में उल्लेख करते हैं कि-''मनुष्य राजनैतिक या धार्मिक से अधिक सामाजिक प्राणी है। वह रख सकता है, रखने की आवश्यकता भी न अनुभव कर सकता है, आवश्यकता राजनीति की पर उसे समाज अनिवार्य रूप से चाहिए क्योंकि समाज के बिना वह कुछ नहीं कर सकता''[2]।

<u>नवीन सामाजिक व्यवस्थाः-</u> के ऊपर डा. अम्बेडकर (1942): ने बम्बई आकाशवाणी केन्द्र पर वार्ता में अपने विचार इन शब्दों में अभिव्यक्ति किए-''स्वदेश को एक नेतृत्व चाहिए। प्रश्न उठता है कि यह नेतृत्व कौन प्रदान करे। मै यह कहने का साहस करता हूँ कि श्रमिक देश को नेतृत्व देने में सक्षम हैं। इसके लिए उचित नेतृत्व अन्य वस्तुओं से हटना चाहिए, नेतृत्व चाहिए आदर्शवाद का तथा स्वतंत्र विचारों का। कुलीनतंत्र में लिए आदर्शवाद सम्भव है, यद्यपि स्वतंत्र, यद्यपि नहीं भी। आदर्शवाद एवं स्वतंत्र विचार, दोनों ही मध्यम वर्गीय के लिए सम्भव है। मध्यम वर्ग उसे नहीं रखता, कुलीनतंत्र की स्वतंत्रता। जो स्वागत करने तथा नव आदर्श को पोषण के लिए आवश्यक है। यह नव सामाजिक की भूख नहीं रखती, जो आशा है जिसके ऊपर श्रमिक वर्ग जीवित रहता है। श्रम इसलिए एक महत्वपूर्ण योगदान करता है, बनाने में उन्हें सुरक्षित माध्यमों को जो भूतकाल में भी, जिन्हें भारतीय अतीत से करते आये है, लाने में, राजनैतिक भाग्य के लक्ष्य को

---

1. डा. अम्बेडकर (1936:25): जाति का उच्छेद वाद
2. डा. अम्बेडकर (1945:119): पाकिस्तान और पार्टीशन आफ पाकिस्तान

पाने में। श्रमिक भारत का नेतृत्व करे और भारतीजन लड़े और एक होकर। विजय का फल स्वतंत्रता होगी और यही समाज की नयी व्यवस्था। ऐसी विजय के लिए हम सबको संघर्ष करना चाहिए। तब विजय का फल हम सबकी सम्पत्ति होगा। और फिर कोई भी ऐसा नहीं होगा जो भारत को एक शक्ति के रूप में मना करे, 'सबकी सम्पत्ति में भागीदार बनने के लिए'[1]'। वार्ता के सारांश में डा. अम्बेडकर ने कहा-"कि मैं सामाजिक सुधार को अधिक आधारभूत मानता हूँ। राजनैतिक सुधार की तुलना में "[2]।

सामाजिक व्यवस्था :- डा. अम्बेडकर (1989): ने हिन्दू सामाजिक व्यवस्था संबंधी अपने विचारों को "राइटिंग्स एण्ड स्पीचेज" खण्ड-5 में व्याख्या की है। वे कहते हैं कि-"हिन्दू सामाजिक व्यवस्था में एकता ढूंढने के कारणों की आवश्यकता है। वह तो हिन्दू असमान सामाजिक स्तरीकरण में विद्यमान है जिसमें ब्राह्मण उच्च स्तर पर तथा शूद्र निम्न स्तर पर। शूद्र ब्राह्मण से निम्न परन्तु अस्पृश्य से उच्च है। यदि हिन्दू सामाजिक व्यवस्था असमानता पर आधारित थी तो उसे बहुत पहले ही उखाडकर फैका क्यो न गया ? क्योंकि यह तो श्रेणी बद्ध असमानता पर आधारिता थी। ताकि शूद्र जब चाहे तब ब्राह्मण भी ब्राह्मणवाद को उखाड फैकने को जिज्ञासु हो। परन्तु वह ऐसा करने हेतु तैयार नहीं थे। यह देखने के लिए अस्पृश्य उसके स्तर तक उठे। इसलिए वह देशी कूड़े के ढेर को ढोने के लिए दुखी रहा। अतः अस्पृश्य सामाजिक व्यवस्था के सामान्य स्तर पर न आ जाये। परिणाम निकला जो अस्पृश्यो को संघर्ष में किसी ने साथ नहीं दिया। अस्पृश्य पूर्णरूपेण अलग-थलग हो गया। वह केवल समाज व्यवस्था से पृथक ही नहीं अपितु उसका विरोध भी किया गया। वैश्य व शूद्र वर्गों के द्वारा विरोध भी किया गया जो "स्वाभाविक रूप से उसके संघ मित्र हो सकते थे। इस प्रकार यह

1. डा. अम्बेडकर : रेडियो वार्ता बम्बई आकाशवाणी, 9 नवम्बर, 1942
2. डा. अम्बेडकर (1943:34): रानाडे, गांधी, एण्ड जिन्ना, थेकर को. बम्बई

सामाजिक अलगांव एक अन्य सामाजिक व्यवस्था में अड़चन थी। विशेषकर अस्पृश्यता निवारण में''। डा. अपनी बात का सतत रखते हुए वयान करते हैं कि-''हिन्दू समाज में अस्पृश्य के विरोध में एक सकारात्मक औषध थी वह यह कि ''सुधार की कोई गुन्जायस नहीं। वे हिन्दू समाज के पृथक वर्ग व वर्ण बने रहें अस्पृश्य हिन्दू समाज के अंग नहीं हैं। यदि वे अंग है तो अंग है परंतु सम्पूर्ण व्यवस्था के नहीं। अस्पृश्यों का हिन्दुओं जो संबंध था उसे कट्टरपंथी हिन्दुओं के नेता ने बम्बई में हुए सम्मेलन में बताया था''। उसने कहा, ''अस्पृश्य हिन्दुओं से उसी प्रकार संबंधित हैं जैसे मनुष्य अपने जूतो से। व्यक्ति जूते पहिनता है''[1]।...... इस ध्येय से वह स्वर्ण व्यक्ति से जुडा है और इसे व्यक्ति का एक भाग कहना चाहिए परन्तु वह सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था का नहीं। दो चीजो के लिए जिन्हें जोडा या घटाया जाता है उसे सम्पूर्ण का अंग नहीं कहा जा सकता। यद्यपि ये विधि कुछ नहीं और कम सटीक है''।

वर्ण व्यवस्था :- वर्ण व्यवस्था पर डा. अम्बेडकर (1989): सामाजिक विचारों का विवरण भी उनकी स्पीचेज एवं राइटिंग्स के खण्ड-5 में इस प्रकार अभिव्यक्ति किए गये है-''यथार्थ यह है चार वर्णो के निर्माण का समाज कभी प्रेम, बन्धुत्व या आर्थिक संगठन, सहकारिता के प्रयास का फल होता है। चार वर्णो..........

यह तो एक दूसरे के प्रति दुशमनी की चेतना है। इसके कहने में तनिक भी गलती नहीं कि हिन्दुओं का सामाजिक इतिहास कोई इतिहास है, न केवल वर्ग संघर्ष की दृष्टि से वर्ग.........

और न मार्क्स ही अपने वर्ग संघर्ष से इसे अनुरूप पाया।

डा. अम्बेडकर (1989): वर्ण व्यवस्था पर प्रकाश डालते हुए कहते है कि-''जाति धर्म में जन्म लेती है जो वर्ण से संबंधित है और इसे पवित्र बनाती है ताकि इसे ठीक एण्ड सत्य कहा जा सके। धर्म एक चट्टान है जिसके ऊपर हिन्दुओं ने अपनी

---

1. डा. अम्बेडकर (1989:169): स्पीचेज एण्ड राटिंग्स, खण्ड-5, महाराष्ट्र शिक्षा विभाग पवलीकेशन।

सामाजिक संरचना का निर्माण किया है''[1]। डा. अम्बेडकर आगे बताते है कि-''घर संघर्ष ने हिन्दू के लक्षणों को प्रकट किया है। यदि अस्पृश्य इस पर शोर नहीं करते तो हिन्दू भी अपनी शरमिंदगी को महसूस नहीं करते और अपनी संख्या में विरोधी बने रहते हैं। फिर चाहे वे हजारों या लाखों हो, वह इसकी परवाह नहीं करता। परन्तु यदि अस्पृश्य उठकर अपनी पहिचान के बारे में पूछता है तो वह (हिन्दू) उनके अस्तित्व को नकारता है, अपने को गैर जुम्मेदार बताता है और अस्पृश्य को सामाजिक संरचना में शक्ति देने को मुकर जाता है बिना .... महसूस किए''।[2] डा. अम्बेडकर वर्ण की व्याख्या अपनी पुस्तक 'जाति के उच्छेदवाद' में करते हुए लिखते है कि,''यदि में हिन्दू या हिन्दुत्व के साथ ऐसा क्यो करता हूँ; ऐसा इसलिए क्योंकि में समझ चुका हूँ कि वे त्रुटिपूर्ण आदर्श अपने हृदयों में पाले हुए हैं और त्रुटिपूर्ण सामाजिक जीवन जीते हैं। मैरी हिन्दू और हिन्दुत्व से लड़ाई उनके सामाजिक आचरण से समाप्त नहीं हो जाती। यह अधिक आधारितपूर्ण है। यह उनके आदर्शो की अधिकता है''।[3]

डा. अम्बेडकर (1936): एक आलोचनात्मक अध्ययन में एक उल्लेख जो वर्ण व्यवस्था के बारे में किया गया है कि-''हिन्दुओं के निम्न वर्ग में चातुर्थ वर्ण के बारे में कोई भी कार्य करने के लिए अपंग बना दिया है''। डा. अम्बेडकर 'जाति के उच्छेदवाद में वर्ण व्यवस्था के सम्बन्ध में लिखते है कि-''प्रत्येक पुरुष एवं महिला शास्त्रों के दवाब से मुक्त हैं अपने मस्तिक की स्वच्छता करने के लिए; शास्त्रों में वर्णा धर्म के बारे में पाये गये विचारों। मान्यताओं के बारे में ताकि वे अपनों के साथ आन्तरिक भोज तथा जातिया विवाह कर सके बिना भय के ''[4]। इसी पुस्तक में वे आगे लिखते है कि-''यदि तुम सामाजिक व्यवस्था में कोई तोड़-मरोड़ करना

1. डा. अम्बेडकर (1989:192): स्पीचेज एण्ड राटिंग्स, खण्ड-5, महाराष्ट्र शिक्षा विभाग पवलीकेशन
2. डा. अम्बेडकर (1989:245): स्पीचेज एण्ड राटिंग्स, खण्ड-5, महाराष्ट्र शिक्षा विभाग पवलीकेशन
3. डा. अम्बेडकर (1989:129): स्पीचेज एण्ड राटिंग्स, खण्ड-5, महाराष्ट्र शिक्षा विभाग पवलीकेशन
4. डा. अम्बेडकर (1936:75): जाति का उच्छेद वाद, थेकर को. बम्बई

चाहते हो तो वेद या शास्त्र में गतिशीलता को प्रयोग में ला सकते हो जो ज्ञान के किसी अंश में मना करती है, जो नैतिकता के किसी अंश में मना करती है। तुम्हें श्रति एवं स्मृति धर्म को नष्ट कर देना चाहिए। कुछ नहीं प्राप्त होगा। यह मेरा विचार किया गया इस संदर्भ में विचार है''[1]।......''मैं अनुभव करता हूँ और न मेरी राय है कि जो समाज वर्ण धर्म के त्रुटिपूर्ण व्यवस्था को पनपाता है, उसमें नहीं रहना चाहिए ; और एक वह समाज जो उचित आदर्श रखता है उसे इस प्रकार के सामाजिक जीवन की दृढता में विश्वास करना चाहिए न उसके वर्णा धर्म संबंधी आदर्शो से''।[2] डा. अम्बेडकर कहते है कि चातुर्यवर्ण की तुलना में कोई अन्य सामाजिक संगठन का अधिक श्रेणीवद्ध व्यवस्था नहीं होगी जो व्यक्तियों का पारस्परिक सहायता आत्मसात करने में अपंगु बनाती होगी'[3]'। डा. अम्बेडकर इसी पुस्तक के पृष्ठ-77 पर लिखते है कि-''ब्राह्मण वाद वह जहर है जिसने हिन्दूवाद को वर्बाद कर रखा है। तुम हिन्दूवाद को बचाने में सफल बन सकते हो, यदि तुम ब्राह्मण वाद को मार दो। आर्य समाज का स्वागत करना चाहिए क्योंकि उनका ही एक उपागम है जिसका नाम है गुणकर्म''।[4]

डा. अम्बेडकर (1948): अपनी पुस्तक 'हू वेयर द शूद्राज' में चातुर्य वर्ण के बारे में व्याख्या करते है कि-''चार्तवर्ण भारत में बहुत पुरानी मान्यता रही है। यदि यह केवल समाज के चार वर्गों में मात्र भाग करना होता, परन्तु यह इससे भी अधिक चार्तुवर्ण के सिद्धांत से जुड़ा हुआ है। यह तो समाज को भागों में विभाजन कि अलावा यह लोगों को एक दूजे को निम्न एवं उच्च श्रेणियों में भी बांटता है। आपस में विभाजन का आधार जीवन में सहभागिता एवं अन्तक्रियाओं पर भी प्रभावी बनता है''।[5] डा. अम्बेडकर (1936): आगे लिखते है कि-''भारत में

---

1. डा. अम्बेडकर (1936:70): जाति का उच्छेद वाद, थेकर को. बम्बई
2. डा. अम्बेडकर (1936:124): जाति का उच्छेद वाद, थेकर को. बम्बई
3. डा. अम्बेडकर (1936:49): जाति का उच्छेद वाद, थेकर को. बम्बई
4. डा. अम्बेडकर (1930:77): जाति का उच्छेद वाद, थेकर को. बम्बई
5. डा. अम्बेडकर (1948:56): हू वेयर द शूद्राज, थेकर को. बम्बई

व्यवसाय के अनेक साधन है जिन्हें हिन्दुओं ने उच्चता व निम्नता के आधार पर श्रेणीवद्ध किया है। उनकों इस बात की आशा की गई है कि लोग स्वधर्म (वर्ण) का पालन करे। दूसरे वर्ण का कार्य करने से बचे जिन्हें दैवीय प्रभाव से रचा गया है। ये कार्य धर्म के पालनार्थ ही हो''।[1] डा. अम्बेडकर का सामाजिक मन्तव्य था कि-''निम्न स्तर के हिन्दू पूर्ण रूपेण अपंगु हो चुके हैं प्रत्यक्ष क्रिया-कलापों में, चातुवर्ण त्रुटिपूर्ण व्यवस्था के कारण''[2]। वे आगे कहते है कि-''हिन्दूवाद तथा हिन्दू धर्म समाज में स्वतंत्रता, समानता तथा बन्धुत्व स्थापित करने का इरादा नहीं रखते''। डा. अम्बेडकर -''शास्त्रों से मान्यतों के विश्वासों का भंग किए बगैर तुम कैसे सफल होगे। यदि तुम शास्त्रों के विश्वासों को बनाये रहोगे तो कुछ हल नहीं होगा'[3]'।

बुद्धवाद बनाम हिन्दूवाद :- बुद्ध जयन्ती (1950): 'बुद्ध धर्म की मानव धर्म है' के विषय पर भाषण देते हुए डा. अम्बेडकर ने कहा कि-''बुद्धवाद में तथा ब्राह्मण में बड़ अन्तर हैं। बुद्धवाद माने जाति विहीन और समान अधिकार पर आधारित समाज। ब्राह्मण प्रारम्भिक रूप से जाति व्यवस्था पर आधारित है, यह एक व्यवस्था है जिसमें अलगांव, असमानता तथा शोषण विद्यमान है''[4]।

डा. भगवान दास, ''दस स्पोक अम्बेडकर'' में डा. अम्बेडकर के विचारों को उद्घृत करते हुए उल्लेख करते है कि-''गत 35 वर्षो से मैं राजनैतिक संघर्ष कर रहा हूँ और इस अवधि में मैं, प्रतिष्ठित और बड़े-बडे हिन्दू नेताओं की तलवारों का सामना करता आया हूँ। मैने विश्व के सभी धर्मो का बीच-बीच में बड़ी गहराई से अध्ययन भी किया है। अब में इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ और वह निर्णय जो मैने लिया है वह अमौखिक नहीं है, वह यह है कि अस्पृश्यों के पास ब्राह्मणवाद से मुक्ति का

---

1. डा. अम्बेडकर (1936:73): जाति का उच्छेद वाद, थेकर को. बम्बई
2. डा. अम्बेडकर (1943:68): रनाडे, गांधी, एण्ड जिन्ना, थेकर को. बम्बई
3. डा. अम्बेडकर (1936:75): जाति का उच्छेद वाद, थेकर को. बम्बई
4. डा. अम्बेडकर (1950): बुद्ध धर्म ही मानव धर्म, बुद्ध जयन्ती पर डा.अम्बेडकर द्वारा दिया गया भाषण वर्ष 1952

और कोई साधन भी नहीं है, बस वे बुद्ध धर्म को ही अपनाए। यह केवल बुद्धधर्म में ही अस्पृश्यों की समस्या का स्थाई उत्तर/हल है''[1]।

असमानता एवं समानता :- डा.अम्बेडकर ने असमानता एवं समानता अवधारणाओं पर प्रकाश डालते हुए लिखा है ।.......... हिन्दुओं में ऐसी कोई वस्तु नहीं है कि सभी तरह से असमानता तथा अन्याय के प्रति indeqnation. जिनसे अस्पृश्य दुखी होते रहे। हिन्दू देखता है कि इन असमानताओं तथा अन्याय से कुछ त्रुटिपूर्ण नहीं है.............. इस चेतना के अभाव से हिन्दू उसमें बहुत बड़ी बाधा थे, अस्पृश्यता के समाज से निवारण करने के लिए''।

असमानता, ब्राह्मणवाद की कार्यालयी दर्शन है। बुद्ध ने इसकी जड़ और शाखाओं का विरोध किया था। वह जाति की अवधारणा का बड़ी शक्ति से विरोध किया था। वह सामाजिक समानता का जबरजस्त पक्षपाती था। उसके समय में जाति की अनुकूलता में किसी प्रकार की तेजी दिखाई गई थी जिसका उसने कभी Refut नहीं किया''[2]। डा. अम्बेडकर ने हिन्दू कोड बिल पर पर्लियामेंटरी डिवेट पर बोलते हुए बताया कि-''बुद्ध ने सदैव समानता का उपदेश दिया। वह चार्तुवर्ण व्यवस्था का सर्वाधिक विरोधी थे तथा वेदों के भी विरोधी थे क्योंकि बुद्ध विवेक पर विश्वास करते थे न कि असत्य व अन्धविश्वास की बुक में। बुद्ध अहिंसा में विश्वास करते थे। ब्राह्मण समाज अहिंसा के अन्धविश्वास में विश्वास करते थे। बुद्ध कभी भी उपवास करने की योग्यता को स्वीकार नहीं करते थे वे उपवास का विरोध करते थे । उनका विश्वास सामाजिक समानता में था इसलिए हिन्दू समाज वैसी ही बनी रही जैसी पूर्व में थी''।[3]

जाति व्यवस्था :- डा. अम्बेडकर के जाति व्यवस्था पर ''कास्ट इन इन्डिया'' तथा ''जाति का उन्मूलन'' नामक दो महान ग्रन्थों की रचना की। इन पुस्तकों की विषय

1. भगवान दास : दस स्पोक अम्बेडकर, खण्ड-2, पृष्ठ-142
2. डा. अम्बेडकर (1989:99): स्पीचेज एण्ड राटिंग्स, खण्ड-5, महाराष्ट्र शिक्षा विभाग पवलीकेशन
3. डी.सी. हीर : हाऊ एण्ड व्हाई बुद्धिज्य डिक लाइन इन इन्डिया, पृष्ठ-12

वस्तुओं में उन्होंने 'जाति' का बृहत व्याख्या की है। उनके अनुसार, "स्पृश्यों का अस्पृश्यों के विरूद्ध संबंध आश्चर्य का कारण है, और यह आश्चर्य बिना कारण के भी नहीं है। स्पृश्य लोग एक समान शरीर धारी हैं। वे भी अनेक जातियों में अपने आप बटे हुए हैं। प्रत्येक हिन्दु अपनी जाति कि प्रति चेतन्य है। इस विभिन्नता में, यह नहीं महसूस होता कि यदि सभी स्पृश्य जातियों को एक समूह में कर दिया जाय और अस्पृश्यों से अलग एक खण्ड में रख दिया जाय, एक श्रेणि बनाने से उसका कोई अर्थ न होगा, परन्तु यद्यपि ये श्रेणिकरण स्पृश्यों का यदि अस्पृश्य की तुलना में किया जाय तो एक व्याख्या करने की मांग होगी, श्रेणीकरण जहां तक आधुनिक भारत के परिप्रेक्ष्य में यथार्थ होगा। व्याख्या यह है कि अब सभी स्पृश्य एक खण्ड बन गये और उनमें चेतना रही कि वे अस्पृश्यों से भिन्न हैं, का अभिप्राय कुछ नहीं; लेकिन चार्तुवर्ण के पारस्परिक संबंधों की पुर्न गणना करना होगा"[1]। डा. अम्बेडकर, 'जाति के उच्छेदवाद' नामक पुस्तक में लिखते है कि, "जब तक तुम अपनी सामाजिक व्यवस्था को नहीं बदलते तो तुम्हे प्रगति करने से कुछ नहीं या बहुत कम प्राप्त होगा। कोई भी वस्तु जिसका तुम निर्माण करोगे जाति को आधार बनाकर उसमें दरार पड़ जायेगी और वह पूर्ण न हो सकेगी"।[2] डा. अम्बेडकर आगे कहते है कि, "जाति व्यवस्था समान क्रियाओं का निरोध करती है और समान क्रिया-कलापों के निरोध से हिन्दुओं ने एक समाज होने से रोका है को पूर्ण रूप से चेतन्य होने से रोका है"।[3] वे जाति व्यवस्था की हानियों पर प्रकाश डालते हुए कहते है कि, "जाति ने जन-चेतना की मृत्यु कर दी है, जाति ने जन दान की अवधारणा को भंग कर दिया है और जाति ने जनमत को असम्भव बना दिया है। धर्म जाति बन गया है तथा नैतिकता जाति से बन्धक हो गई है। समाज में जो सहानुभूति उनके लिए भी नहीं है जो इसके लिए आकांक्षी हैं। इसमें

---

1. डा. अम्बेडकर : हिन्दू कोड बिल, खण्ड-2 पार्लियामेन्टरी डिवेट
2. डा. अम्बेडकर (1989:192): स्पीचेज एण्ड राटिंग्स, खण्ड-5, महाराष्ट्र शिक्षा विभाग पवलीकेशन
3. डा. अम्बेडकर (1936:27): जाति का उच्छेद वाद, थेकर को. बम्बई

गुणों की कोई सराहना नहीं होती, निर्धनों व दुर्वलों का दान नहीं मिलता। दुखो से चिल्लाने पर कोई प्रत्युत्तर प्राप्त नहीं होता है। जाति व्यवस्था में याद 'दान' है तो यह जाति वालों को तथा जाति तक ही है। इसमें सहानुभूति है परन्तु मनुष्य के लिए नहीं जो दूसरी जाति का है"।[1]

डा. अम्बेडकर (1936) कहते है कि, "मैरे विचार से हिन्दू समाज तभी जाति विहीन हो सकता है जब कि जाति विहीन के संकल्प की आशा में अदम्य साहसी हों। बिना आन्तरिक शक्ति से स्वराज हिन्दुओं के लिए गुलामी की ओर एक कदम और घूम जायेगा"। डा. अम्बेडकर (1936:29) में लिखते है कि जाति का अस्तित्व एवं जाति चेतना का अस्तित्व पुरानी सामान्तवाद की स्मृति को बनाये रखने को बढ़ावा देती है विशेष कर जातियों एवं सम्प्रदायों के मध्य और इस प्रकार सामाजिक एकता को दूर रखती है"।[2] डा. अम्बेडकर आगे कहते है कि-"धर्म, सामाजिक प्रस्थिति तथा सम्पत्ति आदि सभी शक्ति एवं अधिकार के श्रोत हैं जिसके लिए एक व्यक्ति को दूसरी की स्वतंत्रता पर नियंत्रण करना पड़ता है"।[3] "मैं तुम्हें दुख नहीं देना चाहता लेकिन कुछ समय में अनुभव करता हूँ कि हम किस तरह भूल जाते हैं। मैं दक्षिणी अफ्रीका की बात कर रहा हूँ। मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ अपने में, हम कौन है जो दक्षिणी अफ्रीका में विभेदीकरण के बारे में वार्ता करते हैं। यथार्थ में हम भी जानते हैं प्रत्येक ग्राम में। हमारे यहां भी विभेदीकरण है। यदि हम ग्राम में जाकर देखे। हमारे यहां (भारत में) प्रत्येक स्थान पर तथा प्रत्येक गांव में दक्षिणी अफ्रीका है"।[4] जाति के दोषों को गिनाते हुए डा. अम्बेडकर कहते है कि,"जाति श्रमिकों को विभाजित करती है, जाति रूचिपूर्ण कार्य करने में असहयोग करती है, जाति शारीरिक कार्य का ज्ञान से मुक्त करती

1. डा. अम्बेडकर (1936:37): जाति का उच्छेद वाद, थेकर को. बम्बई
2. डा. अम्बेडकर (1936:29): जाति का उच्छेद वाद, थेकर को. बम्बई
3. डा. अम्बेडकर (1936:17): जाति का उच्छेद वाद, थेकर को. बम्बई
4. डा. अम्बेडकर (1987:7): स्पीचेज एण्ड राटिंग्स, खण्ड-3, महाराष्ट्र शिक्षा विभाग पवलीकेशन

है, जाति व्यक्ति में विशाल संस्कृति बनने पर रोग लगाती है, जाति गतिशीलता का विरोध करती है। इस प्रकार जाति व्यवस्था मात्र श्रम में भेद ही नहीं करती अपितु श्रमिकों में भी भेद करती है। सभ्य समाजों में निःसंदेह श्रम विभाजन अप्राकृतिक श्रमिकों के विभाजन से जोड़ दिया गया है जिसमें घुसकर कोई निकल नहीं सकता। जाति व्यवस्था श्रम विभाजन से एक वंशानुक्रम बन गई है जिसमें श्रमिकों की श्रेणीकरण में एक, दूजे से ऊपर है'[1]'। वे आगे कहते हैं कि, "जब तक भारत में जाति का अस्तित्व रहता है तो हिन्दुओं में अन्तर जातिय विवाह बड़ी कठिनाई से होंगे और न दूसरी जातियों के साथ सामाजिक अन्त क्रियाएं ही। पृथ्वी पर मात्र एक धर्म है जिसके कारण भारतीय जाति विश्व की समस्या बन जायेगी"[2]।

डा. अम्बेडकर (1917:18) जाति, जातिगत व्यवसाय को बनाये रखती है। इसमें किसी भी जाति को अपना व्यवसाय बदलने की छूट नहीं। इसप्रकार जाति बेरोजगारी का एक कारण है जिसे तुम भारत देश में देख सकते हो '[3]'।

डा. अम्बेडकर (1917:65) बताते है कि, "जाति व्यवस्था में सभी एक-दूजे के गुलाम हैं। फिर भी सभी गुलाम अपनी सामाजिक प्रस्थिति में बराबर नहीं है"।

डा. अम्बेडकर शूद्र (1917:65) की भूमिका में लिखते है कि, 'घृणा के रूप में इन वर्णो का अस्तित्व, हिन्दू सभ्यता में, सामाजिक उत्पादन के प्रकाश में सुरक्षित किया गया है, उसे कठिनाई से भी सभ्यता नहीं कहा जा सका। यह तो खण्डों में विभाजन, दवाने तथा मानवता को गुलाम बनाये रखने हेतु किया गया"[4]'।

डा. अम्बेडकर (1936:47) में लिखते हैं कि, "सामाजिक एवं वैयक्तिक निपुणताओं की आवश्यकता व्यक्ति की क्षमताओं में विकास के लिए आवश्यक होती हैं विशेषकर प्रतियोगिता के संदर्भ में जिससे व्यक्ति व्यवसाय [illegible]

1. डा. अम्बेडकर (1987:7): स्पीचेज एण्ड राटिंग्स, खण्ड-3, महाराष्ट्र शिक्षा विभाग पवलीकेशन
2. डा. अम्बेडकर (1917): कास्ट इन इण्डिया, पेरा-3, थेकर को. बम्बई
3. डा. अम्बेडकर (1917:18): कास्ट इन इण्डिया, थेकर को. बम्बई
4. डा. अम्बेडकर (1917:65): कास्ट इन इण्डिया, थेकर को. बम्बई

जीवन यापन के माध्यम का चुनाव कर सके। जाति व्यवस्था में इस सिद्धांत का उलंघन होता है। जहां कार्यों को पहले से ही व्यक्ति पर थोप दिया जाता है बजाय व्यक्ति की मौलिक क्षमताओं अथवा प्रशिक्षण के आधार पर सौपने के वह तो माता-पिता की सामाजिक प्रस्थिति के आधार पर कार्यो के आवंटन का जाति में प्राविधान होता है''[1]।

डा. अम्बेडकर (1917:7) में लिखते है कि,''जाति अन्तर जातिय भोजो से समाप्त नहीं की जा सकती और उदाहरण के लिए अन्तर जातीय विवाह रचाने से। जाति मानसिक स्थिति है। यह मनोरोग है। हिन्दुओं के धर्म उपदेश जाति के रोग के कारण हैं। हम जातिवाद का अभ्यास करते है और अस्पृश्यता का अवलोकन करते हैं क्योंकि हमने हिन्दू धर्म में अपने को पंजीकृत कर लिया है जिसमें हम रहते हैं। कडवी वस्तु को मीठी बनाया जा सकता है? किसी वस्तु का स्वाद बदल सकता है परन्तु जहर कभी-भी अमृत में परिवर्तित नहीं हो सकता'[2]'।

जाति व्यवस्था और बुद्धवाद :- डा. अम्बेडकर (1956:301)[3] ने जाति व्यवस्था और बुद्धवाद का उल्लेख इस प्रकार अन्तर की व्याख्या की है कि-''

1. ब्राह्मण वाद की जाति के बारे में असमानता लिखा-पढ़ी में है,
2. बुद्ध जाति व्यवस्था की जड़ तथा शाखाओं का विरोध करते है,
3. बुद्ध जाति मान्यता के शक्तिशाली विरोधी थे और समानता को समाज में रखने के प्रवल समर्थक,
4. बुद्धवाद में जाति व्यवस्था में विश्वास करने की अनुकूलता का कोई तर्क नहीं दिया गया है,
5. बुद्ध ने वशिष्ठ से कहा,''जो महत्वपूर्ण है वे उच्च आदर्श है न कि नम्र परिवार में जन्म लेना,

---

1. डा. अम्बेडकर (1936:47): जाति का उच्छेद वाद, थेकर को. बम्बई
2. डा. अम्बेडकर (1917:7): कास्ट इन इन्डिया, थेकर को. बम्बई
3. डा. अम्बेडकर (1956:301): बुद्ध एण्ड हिज धम्मा, सिद्धार्थ पवलीकेशन, बुद्ध भूमि प्रकाशन, नागपुर

6. जाति नहीं, असमानता नहीं, उच्चता नहीं, निम्नता नहीं, सभी समान हैं इसके लिए वह उठ खड़ा हुआ था तथा

7. दूसरों के साथ अपने को समान समझो, जैसे तुम हो, जैसा मैं हूँ, ऐसा बुद्ध ने उनसे (वशिष्ठ आदि से) कहा''।

<u>सामाजिक अलगांव :-</u> सामाजिक समरसता पाने के लिए डा. अम्बेडकर (1989) अस्पृश्यों के हेतु तीन उपाय अनिवार्य मानते थे- (1) उनकी सामाजिक अलगांव को समाप्त करना, (2) वे अपने अर्न्तगत व्याप्त हीनता को समाप्त करे तथा धर्मान्तरण को अत्याधिक सशक्ति उपाय। अस्पृश्य अपने सामाजिक अलगाव का कैसे अन्त करेगे,[1]'' उसका उल्लेख उन्होंने अपने स्पीचेज एवं राइटिंग्स में किया है- एक और केवल एक ही मार्ग है जिसके द्वारा वे सामाजिक अलगाव से अस्पृश्य विरोध कर सकते है वह है कि वे अथवा सवर्ण आपस में रिस्तेदारी स्थापित करे जो जाति को स्वतंत्र चेतना से ही होगा। मेरा यह उत्तर बहुत सरल है फिर भी इसमें अधिक लोग इस वैधता का तत्परता से स्वीकार नहीं करेगें क्योंकि कुछ चन्द लोग ही रिस्तेदारी के मुल्य को अनुभव करते हैं लेकिन इसका मूल्य एवं महत्ता बहुत महान है''[2]। सामाजिक अलगांव पर प्रकाश डालते हुऐ डा. अम्बेडकर (1989:413) कहते है-''सामाजिक अलगांव का आशय सामाजिक वर्गीकरण, सामाजिक उपेक्षा, सामाजिक विभेदीकरण तथा सामाजिक अन्याय। सामाजिक अलगांव का अभिप्राय असुरक्षा अन्याय, अवसर हीनता, अलगाव का अर्थ है-हम दर्दी के लिए प्रार्थना, मित्रता के लिए मांग करना तथा विचार करने की मांग करना। रिस्तेदारी होने से अन्य समुदायों के साथ तो दूसरी ओर तो अस्पृश्य अन्य समुदायों समानता की प्रस्थिति, समान सुरक्षा तथा समान न्याय प्राप्त कर लेगे तथा अस्पृश्य सवर्णों की सहानुभूति व साख प्राप्ति के योग्य हो जायेगे''[3]। इस विचार के

1. डा. अम्बेडकर (1989:413): भाषण और लेखन, महाराष्ट्र सरकार का प्रकाशन विभाग, कोलम-5.
2. डा. अम्बेडकर (1989:413): भाषण और लेखन, महाराष्ट्र सरकार का प्रकाशन विभाग, कोलम-5.
3. डा. अम्बेडकर (1989:416): भाषण और लेखन, महाराष्ट्र सरकार का प्रकाशन विभाग, कोलम-5

दृष्टिकोण से जाति व्यवस्था का बिना उन्मूलन किए अस्पृश्यता समाप्त नहीं हो सकती। जाति और अस्पृश्यता को पृथक-पृथक समझना भूल होगी दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। अस्पृश्यता मात्र जाति व्यवस्था का प्रसार है। दोनों एक साथ खड़ी है तथा एक साथ ही गिर जायेगी''।[1] अस्पृश्यता, अस्पृश्यों के लिए दुर्भाग्य है तथा हिन्दुओं के लिए सौभाग्य यह उन्हें एक वर्ग में बांधती है ताकि वे निम्न दृष्टि से देखे, हिन्दू उस व्यवस्था को नहीं चाहते कि कोई 'कुछ सब कुछ से'। वे उस व्यवस्था को चाहते है जिसमें वे 'सब कुछ' तथा अन्य 'कुछनहीं' हो। इसने अस्पृश्यों को कुछ नहीं और हिन्दुओं को सब कुछ बना दिया है। इस व्यवस्था ने हिन्दुओं प्रकृति से दूसरो को निम्न तथा अपने को उच्च मानने को सतत बनाया है। यह एक अतिरिक्त कारण जिसके कारण हिन्दू अस्पृश्यता के अवलोकन को समाप्त नहीं करते, विशेषकर उन बहुसंख्यको जो छोटे व्यक्ति है''[2]।

अस्पृश्यता का तभी देश निकाला हो सकता है जब सम्पूर्ण हिन्दू सामाजिक व्यवस्था से जाति व्यवस्था को समाप्त कर दिया जाय। क्या यह सम्भव है? प्रत्येक संस्थान कुछ मान्यताओं से निरंतर रहती है यहां कुछ शक्तियां है जो एक संस्थान का सतत रहने में मदद करती हैं और वे है कानून, समाज तथा धर्म। किसी संस्थान की वैधता मान्यताओं के स्वभाव पर निर्भर करती है। जाति व्यवस्था के पीछे इस मान्यता का क्या स्वभाव है। जाति व्यवस्था के पीछे धर्म की मान्यता है, जैसे जाति जो वर्ण का नवीन रूप है उसकी मान्यता वेदों से है जिन्हें हिन्दू पवित्र मानते हैं। इस प्रकार जाति पवित्र है तथा प्राकृतिक। यदि जाति उन्मूलन नहीं होती तो क्या आशा करनी चाहिए कि अस्पृश्यता समाप्त हो जायेगी''।[3]

---

1. डा. अम्बेडकर (1989:101): भाषण और लेखन, महाराष्ट्र सरकार का प्रकाशन विभाग, कोलम-5,
2. डा. अम्बेडकर (1989:102): भाषण और लेखन, महाराष्ट्र सरकार का प्रकाशन विभाग, कोलम-5,
3. डा. अम्बेडकर (1989:102): भाषण और लेखन, महाराष्ट्र सरकार का प्रकाशन विभाग, कोलम-5,

अम्बेडकर की दृष्टि में भारतीय नारी का उत्थान और पतन :-

डा. अम्बेडकर भारतीय समाज के प्रमुख नेता थें। उन्होंने भारतीय समाज की असंगतियों तथा असमानताओं का सविस्तार संविधानात्मक विवेचन किया है। अछूत समस्या के साथ मजदूर और जारी जाति की स्थिति पर भी गहराई से विचार किया है। इन्होंने 'द राइज एण्ड फाल ऑफ द हिन्दु वुमैन' नाम से एक लेख कलकत्ता से प्रकाशित होने वाली 'महाबोधी' पत्रिका में छपवाया था। बाद में उनका वह लेख सम्पादक की आज्ञा मिलने पर उन्होंने लघु-पुस्तिका के रूप में प्रकाशित करवाया था। महात्मा बुद्ध शिक्षाओं के कारण भारतीय समाज में नारी की स्थिति निरंतर गिरती गई। इस आरोप का उन पर प्रभाव पड़ा। वस्तु-स्थिति यह थी कि इससे पूर्व की वह महात्मा बुद्ध के ऊपर इस प्रकार के आरोप लगाये जाते रहे थे। डा. अम्बेडकर का ध्यान भी इधर गया था और उन्होंने एक तटस्थ व्यक्ति की हैसियत से महात्मा बुद्ध पर लगाये गये आरोप का सूक्ष्म अध्ययन, मनन किया था। आखिर यह प्रश्न इस तरह से क्यों उठा, डा. अम्बेडकर ने पाया कि महात्मा बुद्ध से आनन्द के प्रश्न करने पर जो उत्तर आया था, उसी को लेकर महात्मा बुद्ध पर आरोप लगाया था। डा. अम्बेडकर को इसमें संदिग्धता का आगाज हुआ था। क्योंकि उनकी शिक्षाओं के अध्ययन से यह तथ्य सभीदीन प्रतीत होता नजर नहीं आता है। उनका ध्यान है कि आनन्द, महात्मा बुद्ध के साथ रह रहा था और उनके जीवन तथा विचारों से भली प्रकार से अवगत था। फिर वह इस प्रकार का प्रश्न उनसे क्यों करता? और न बुद्ध ही वैसा उत्तर दे सकते थे।

डा0 अम्बेडकर अप्रवासी के प्रसंग को प्रस्तुत करते हुए यह तर्क देते है। कि वैशाली की नगर वधु के नाम से प्रसिद्ध सुन्दरी अप्रवासी को क्यों उन्होंने दीक्षा दी। उसकी दावत क्यों कुबूल की। यह कहना समीचीत होगा कि महात्मा बुद्ध को स्त्री जाति से न तो परहेज था और न उन्होंने कभी उपेक्षा ही की थी। स्त्रियां महात्मा

बुद्ध से भयभीत नहीं थी। स्त्री के भी अनेक रूप है- बहिन का रूप, माता का रूप, आदि-अतः वे स्त्री जाति से क्यों उदास हो सकते थे।

महात्मा बुद्ध की दृष्टि में डा. अम्बेडकर का मानना था। कि स्त्री उनकी शिक्षाओं को ग्रहण करने व समझने में पूर्णतया सक्षम है। वह अनुशासन प्रिय भी है फिर उसका अनादर क्यों? महात्मा बुद्ध तो तनिक भी स्त्री को पुरूष से कम नहीं मानते ये न बुद्धि से और न चरित्र से। स्त्री प्रवज्या धारण कर सकती थी। माना कि भिक्षु तथा भिक्षुक संघ अलग-अलग थे। प्रश्न उठता है कि क्या ये दोनों संघ अपना-अपना सम्पूर्ण अस्तित्व रखते थे अथवा आन्तरिक रूप से परस्पर सम्बद्ध थे। डा. अम्बेडकर ने माना है कि स्त्रियों के लिए अलग संघ था। 'कैन एनीबडी देयर फोर से दैट क्रिश्चियनिटी ट्रीपर वुमन इज इनफिरियर टु मैन' क्योंकि डा. अम्बेडकर कहते है कि नंस पादरी के अधीन रहती है। फिर महात्मा बुद्ध के संघ की सम्युक्त व्यवस्था क्योंकर स्त्री के लिए हीनतापूर्ण हो सकती है।

इसके अलावा उन्होंने प्राचीन भारत की उस परम्परा की याद दिलाई, जिसके अनुसार लड़की का जन्म अशुभ माना जाता था। परन्तु महात्मा बुद्ध की मान्यता इसके बिल्कुल विपरीत थी। वह इसलिए महान है कि दुनिया के शासक की भी बड़ी जिम्मेदारी है। बुद्ध ने तो स्त्री को संयास अथवा प्रवक्या का अधिकार प्रदान किया था। जबकि ब्राह्मण इसका विरोध कर रहे थे। डा. अम्बेडकर ने मनु की बात को प्रस्तुत करते हुए यह सिद्ध करने में सफलता प्राप्त की है। हिन्दू धर्म में स्त्री जाति के साथ भेद-भावपूर्ण व्यवहार किया जाता है। मनु की वाणी है वुमन हैव नो राइट टु स्टडी, दैट इज व्हाई देअर संकार्स आर परफारम्ड विदआउट वेद मंत्राज, वुमेन हैव ना नालेज आफ रिलीजन बिकाज दे हैव नो राइट टु ना द वेदाज, द अटरिंग आफ द वेद मंत्राज इज युजफुल फार रिपुविगालिन, इज वुमन कैन नाट अदर द वेद मंत्राज दे आर एज अनट्रूज इज।

भारतीय नारी के साथ तो हिन्दू धर्म ने अन्याय किया है। बिना किसी वजह के हिन्दू स्त्री ज्ञान प्राप्ति से वंचित रह जाती है। ज्ञान प्राप्ति का तो प्रत्येक व्यक्ति का जन्मसिद्ध अधिकार है जबकि महात्मा बुद्ध ने स्त्री की ज्ञानोपलब्धि का व पूरा-पूरा अवसर प्रदान किया है।

डा0 अम्बेडकर का यह निष्कर्ष है कि 'मनस्मृति' नारी को स्वतंत्रता, समानता और सम्मान की गिरावट का कारण है। इसकी युक्ति के लिए उन्होंने 'मनुस्मृति' से उद्धरण देते हुए कहा है कि मनु ने नारी को पुरूषाश्रित बनाया है और यह आवश्यक बताया है कि वह पुरूष के संरक्षण में रहे। बचपन में वह माता-पिता की देख-रेख में पले और बडी हो, जवानी में वह पति की सुरक्षा में रहे और बुढ़ापे में वह अपने पुत्रों पर निर्भर हो। परिभाषतः वह जन्म से मृत्यु तक पुरूषाधीन रहे।

उन्हें इस बात से दुखद आश्चर्य हुआ कि मनु पत्नी को बेचने की भी आज्ञा देता है। वह मनु के इस कथन को प्रस्तुत करते है, कि जिसमें मनु ने कहा हैं कि 'नाइदर बाई सेल नोर रेयूडिरान इज द वाइफ रिलीज फ्राम हद हसबैंड'। डा. अम्बेडकर कहते है कि इसका मतलब हुआ कि पति अपनी पत्नी को बेच भी सकता है। उन्होंने हिन्दू कानून का निर्माण करते हुए इस बात का जरा सा भी ध्यान नहीं दिया। इसके साथ मनु स्त्री पत्नी की सम्पत्ति के अधिकार से भी वंचित करता है यदि अपनी पत्नी को मार सकता है, यह भी इजाजत मनु देता है। वह पत्नी को उन सुविधाओं से वंचित करता है जो उसे बेदों द्वारा प्रदत्त हुई थी। अगर कोई सती वैसा करती है तो उसकी दृष्टि में वह सती नरक में जायेगी।

डा0 अम्बेडकर ने 'भारतीय समाज में नारी को पुनः प्रतिष्ठित करने हेतु ही हिन्दू कोड बिल प्रस्तुत किया था। उन्होंने ब्रहस्पतिवार 26 सितम्बर को इसी कारण मंत्री पद से इस्तीफा दे दिया था। अप्रैल 11, 1947 को यह बिल पेश किया गया था। उस पर ठीक से चर्चा नहीं हो पायी तत्कालीन प्रधानमंत्री पं0 जवाहर लाल

नेहरू ने डा0 अम्बेडकर को सलाह दी कि इस बिल के एक भाग को पेश किया जाय ताकि इसका वह भाग कानून की शक्ल ले ले। पं0 नेहरू ने इस 'मेरिज एण्ड डाइवोर्स' वाला भाग प्रस्तुत करना उचित समझा। परन्तु इसी बीच पं. नेहरू ने उनसे वह प्रस्ताव किया कि इस बात से इस बिल के बारे में जिद ने करें और उसका मेरिज तथा तलाक वाला भाग भी फिलहाल रहने दे। यह व्यवहार उनका पसंद नहीं आया और उन्होंने मंत्री पद से इस्तीफा दे दिया।

डा0 अम्बेडकर को यह बात समझ में नहीं आयी कि पं. नेहरू की ऐसी दोहरी नीति क्यों रही। क्यों उन्होंने आश्वासन देकर उससे मुकर जाना चाहा, डा. अम्बेडकर न केवल अछूत श्रमिक शोषितों के नेता थे अपितु उन्हें जहां भी अन्याय तथा अत्याचार नजर आया, वहां उन्होंने खुलकर उसका विरोध किया। कानून मंत्री की हैसियत से उन्होंने भारतीय समाज में नारी की दयनीय तथा उपेक्षित स्थिति को सुधारने और उसे समाज का स्वरूप तथा शक्तिशाली अंग बनाने हेतु कानून बनाने की सोची। 'हिन्दू कोड बिल' उसी का परिणाम था जिसके लिए उन्हें अथक परिश्रम करना पड़ा। जब से मंत्री नहीं रहे, उस बिल की अनेक धाराओं को स्वीकार किया गया।

निष्कर्षतः यह मानना ही होगा कि मनुस्मृतियों में बटा हुआ भारतीय समाज ही नारी के पतन का कारण रहा है। डा. अम्बेडकर नारी को सम्माननीय स्थान दिलाने के लिए संघर्षरत रहे है। उनका समर्ग चिन्तन भारतीय समाज को जर्जरावस्था से निकालकर स्वस्थ्य समाज के रूप में ढालने का रहा है। उनके प्रयत्नों की लंबी तथा दृश्य-संघर्षपूर्ण गाथा से इस तथ्य की पुष्टि होती है कि वे उपेक्षितों के मसीहा थे और नारी की गरिमा को पुनः संस्थापित करना चाहते थे।

ग्राम जीवन :-

डा. अम्बेडकर (1989): ने अपनी लेखनी में ग्राम जीवन पर प्रभाव डालते हुए उल्लेख किया है, "जाति की चेतना सम्पूर्ण आर्थिक बृद्धि में बाधा डालती है। जाति

व्यवस्था ऐसी अनेक दशाओं को उत्पन्न करती हैं जिससे सामूहिक कार्य में विशेषकर कृषि कार्य में अड़चने आती हैं। ग्राम विकास, जाति संबंधों के संदर्भ में समाजवाद के सिद्धांत के विरूद्ध है। इसलिए बडी जमीदारी व्यवस्था जातिवाद पर आधारित है। अतः इसे समाप्त करना चाहिए और भूमि को उन लोगों में बांट देना चाहिए जो उसे जोततें हैं तथा ग्राम और नगर वासियों को तेजी से फसलों को उत्पन्न कर भेजते हैं, ताकि सामूहिक खेती सम्भव हो''।

डा. अम्बेडकर (1989): ग्राम जीवन की दुर्दशा देखकर कहते है कि-''यह है ग्राम का जनतंत्र जिस पर हिन्दू गर्व करते हैं। इस ग्राम जनतंत्र में अस्पृश्यों की क्या सामाजिक प्रस्थिति है? वे केवल अन्तिम विकेट भी नहीं और कुछ भी नहीं। एक अस्पृश्य निम्नता की एक मुहर है, उसकी सामाजिक स्थिति को इतना गिरा दिया गया है, ग्राम के बहुसंख्यकों के द्वारा अनेक हथकन्डों द्वारा। यह निम्न स्थिति अस्पृश्य का भाग्य बनकर रह गई है अपितु उसके सम्पूर्ण समुदाय की। सभी अस्पृश्य, स्पृश्य की आयु व शिक्षा की परवाह किए और निम्न कोटि के हैं। एक स्पृश्य अपने से वृद्ध अस्पृश्य में उच्च है और एक शिक्षित अस्पृश्य को अशिक्षित स्पृश्य से ऊँचा स्थान प्रदान किया जाता है, ग्रामों में'[1]'। डा. अम्बेडकर आगे कहते है कि,''भारत में ग्राम के भीतर का ऐसा चित्र है भारत के ही गणराज्य में। इस देश में प्रजातंत्र को कोई स्थान नहीं। यहां कोई बराबरी का कमरा नहीं, यहां स्वतंत्रा का कोई कमरा नहीं तथा यहां भाईचारे का कोई स्थान नहीं। यदि यही जनतंत्र है तो यह स्पृश्यों का जनतंत्र है, स्पृश्य द्वारा तथा स्पृश्यों के लिए। इस प्रकार भारत में जनतंत्र अस्पृश्यों के ऊपर हिन्दूओं का सामराज्य है। ये उपनिवेश वाद है हिन्दुओं का जिसे अस्पृश्यों का शोषण करने के लिए बनाया गया है जिससे अस्पृश्यों का कोई अधिकार नहीं है। वे वहां इसलिए है कि अधिकार पाने की प्रतीक्षा करे व सेवा करे, वे वहां (ग्राम में) इसलिए है कि मरे या करे। उन्हें

1. डा. अम्बेडकर (1989:19): स्पीचेज एण्ड राटिग्स, खण्ड-5, महाराष्ट्र शिक्षा विभाग पवलीकेशन

इसलिए अधिकार नहीं क्योंकि वे ग्राम गणराज्य के बाहर के हैं, वे हिन्दू समाज के बाहर के है, यही क्या गणराज्य है? यह कभी न टूटने वाली प्रक्रिया है परन्तु यह सत्य है जिसे कहने से नहीं रहा जाता'[1]'।

पत्र कारिता :- डा. अम्बेडकर (1943): ने पत्र कारिता पर अपने विचार इस प्रकार व्यक्त करते हुए लिखा है-"भारत में एक समय पत्र कारिता एक व्यवसाय था। परन्तु आज यह व्यापार बन गया है। अब इसमें कोई नैतिक कार्य नहीं होते सिवाय दुकान खोलने के। आप पत्रकार जनता को परामर्श देने के उत्तरदायित्व का निर्वाहन नहीं करते। वर्तमान में किसी विचार को जो जन नीति से संबंधित हो, बिना भय के चाहे सूचना उच्च व्यक्तियों से संबंधित स्तर की क्यों न हो उसे सुधारे कि किसने गलत तरीका या निर्थक मार्ग का अनुशरण किया है, यह सब पत्र कारिता में अब मायने नहीं रखता हमारे भारत में, जबकि यह पत्रकारिता में प्रथम उत्तरदायित्व होता है। नायक को स्वीकार करना, उसकी पूजा करना आज उसका कर्तव्य हो गया है"।[2]



1. डा. अम्बेडकर (1989:26): स्पीचेज एण्ड राटिंग्स, खण्ड-5, महाराष्ट्र शिक्षा विभाग पवलीकेशन
2. डा. अम्बेडकर (1943:48): रानाडे, गांधी, एण्ड जिन्ना, थेकर को. बम्बई

अध्याय -5

डॉ0 अम्बेडकर के आर्थिक विचार

प्रस्तुत शोध के इस अध्याय डॉ0 भीमराव अम्बेडकर के आर्थिक विचारों का उल्लेख क्रमबद्ध रूप से करने का शोधार्थी द्वारा प्रयास किया गया है। वे भारत के महान अर्थशास्त्री थे। उन्होंने अर्थशास्त्र के ऊपर कई मौलिक ग्रन्थों की रचना की जो निम्नलिखित हैं -

1. भारत में स्माल होल्डिंग (1917)
2. प्रोब्लम आफ रूपी (1923)
3. बिट्रिस भारत में प्रान्तीय अर्थव्यवस्था का विकास (1925)
4. हिस्ट्री आफ इन्डियन करैन्सी एण्ड बैकिंग खण्ड-I (1947)

प्रस्तुत अध्याय में डॉ. अम्बेडकर के आर्थिक विचार जिन आर्थिक अवधारणाओं एवं प्रत्ययों के बारे में प्रस्तुत किए गये है उनमें मुख्य इस प्रकार हैं -

1. हिन्दू धर्म का अर्थशास्त्र
2. जाति का अर्थशास्त्र
3. बुद्धवाद का अर्थशास्त्र
4. उद्योगीकरण
5. उद्योगीकरण चकबंदी को प्रोत्साहित करता है।
6. भूमि सुधार
7. आर्थिक मुक्ति
8. श्रम
9. श्रम संघवाद
10. बधुआ श्रम
11. ट्रिस्टीशिप
12. कर
13. सम्पत्ति
14. आर्थिक नियोजन
15. उत्पादन
16. मुद्रा
17. बीमा
18. आर्थिक दर्शन

19. आर्थिक व्यवस्था

1. हिन्दू धर्म का अर्थशास्त्र :- के विषय पर डॉ. अम्बेडकर ने उल्लेख करते हुए कहा-"हिन्दुओं के पवित्र कानूनों ने शूद्रों धन उपार्जन के लिए दंडित किया, यह कानून था जिसने गरीबी को उनके ऊपर थोपा, ऐसे विश्व के किसी भाग से ज्ञात नहीं होता "। जाति व्यवस्था के द्वारा जो श्रम विभाजन लाया गया वह व्यक्ति की चाह, प्राथमिकता तथा भावना पर आधारित नहीं था । सामाजिक निपुणता हमें बाध्य करेगी यह पहिचानने की औद्योगीकरण व्यवस्था में यह बहुत बड़ी बुराई न थी जिसके कारण अधिक गरीबी तथा दुखित परिस्थितियां थी, इन्हें तो एक तथ्य के रूप में जोड़ा गया कि अनेक व्यक्तियों ने बताया, जो उसमें सम्मिलित थे, उनकी नहीं सुनी गई । यह तो निरन्तर अनिच्छा तथा यथार्थ से दूर भागना है"।[1]

डॉ. अम्बेडकर (1936:302): हिन्दुओं के पवित्र कानून ने शूद्रों का धनार्जन के लिए दंडित किया । इस कानून ने उन्हें गरीब रहने हेतु बाध्य किया जो विश्व के किसी अन्य देश के लिए अज्ञात है"।[2]

यदि कोई हिन्दू भूखा मरते दिखाई दिया तो वह नया व्यवसाय कर लेता है जो उसकी जातिनुसार आवंटित नहीं है, इसके कारण जाति व्यवस्था में ढूँढा जा सकता है, परन्तु अत्यन्त को ऐसा समायोजन नहीं स्वीकृत है, इस प्रकार जाति बेरोजगारी का प्रत्यक्ष कारण हैं, जैसा कि हम देश में देखते है"। जाति व्यवस्था व्यक्ति को प्रदत रूप से आवंटन में प्रयास करती है तथा व्यक्ति के प्रशिक्षण व मौलिक कार्यक्षमताओं के आधार पर उसके लिए व्यवसाय का चयन नहीं करती वह तो उसके माता-पिता की सामाजिक जन्म-जाति प्रस्थिति पर करती है"। जैसा

---

1. डॉ. अम्बेडकर (1945): अस्पृश्यों के लिए गांधी व कांग्रेस ने क्या किया?,
2. डॉ. अम्बेडकर (1936:302) जाति का उच्छेद वाद,

कि आर्थिक संगठन। संस्थान में जाति इस प्रकार एक हानिकारक संस्थान है। यह व्यक्ति के प्राकृतिक शक्तियों पर अधीनता थोपती है।

डा. अम्बेडकर (1936:20): सामाजिक एवं व्यक्तिक निपुणता की आवश्यकता होती है व्यक्ति की क्षमता में वृद्धि करने के लिए उस सीमा तक एक अपने मन पसन्द जीविका उपार्जन का माध्यम चयन कर सके। इस सिद्धांत का जाति व्यवस्था ने उलंघन किया है। जाति व्यवस्था में श्रम विभाजन कोई स्वतः उत्पन्न नहीं हुआ, यह तो प्राकृतिक अभिरूचि पर आधारित है''।[1]

डॉ. अम्बेडकर (1936:23): वे आगे लिखते हुए कहते है कि-''जाति व्यवस्था, व्यक्ति पर कुछ कार्यो का निष्पादन करने को अग्रिम रूप से नियुक्ति करती है वह भी मौलिक योग्यताओं तथा प्रशिक्षण के आधार पर नहीं अपितु माता-पिता के सामाजिक जन्म-जाति प्रस्थिति के ऊपर''।[2]

जाति का अर्थशास्त्र :- जाति मनुष्य के जीवन को आर्थिक रूप से अधिक प्रभावित करती है। उनका मानना था कि-''अस्पृश्यता जन भूमिहीन श्रमिकों के शरीर होते हैं। वे पूर्णरूप से हिन्दुओं की रोजगार देने की नीति पर सदैव निर्भर करते हैं और उस ढंग से जिसमें हिन्दुओं का सर्वाधिक लाभ हो ग्रामों में, जहां वे रहते हैं। वे स्वतंत्र रूप से लाभकारी किसी व्यापार या व्यवसाय को नहीं कर सकते मात्र अस्पृश्य होने के कारण क्योंकि कोई हिन्दू उसे ऐसा नहीं करने देता। इस प्रकार स्वाभाविक रूप अपनी जीविका उपार्जन नहीं कर पाते और एक हिन्दू ग्राम में वे इस तरह एक विभाग के रूप में जीते हैं। यह उनकी आर्थिक निर्भरता अन्य और कुप्रभाव करती है और वह है गरीबी की दशा तथा आर्थिक निम्न समाज में स्तरीकरण। हिन्दुओं के पास एक सामाजिक विधान है जो धर्म का अंग है, यह

1. डॉ. अम्बेडकर (1936:20) जाति का उच्छेद वाद, थेकर एण्ड को. बम्बई
2. डॉ. अम्बेडकर (1936:23) जाति का उच्छेद वाद, थेकर एण्ड को. बम्बई

जीवन विधान उन्हें अनेक सुविधाएं प्रदान करता है और इन सुविधाओं के ढेर से अस्पृश्य अपने जीवन में सदा दबे रहते हैं''।[1]

अधिकांश लोगों का विश्वास है कि अस्पृश्यता एक धार्मिक व्यवस्था है। यह सच है । परन्तु यह कल्पना त्रुटिपूर्ण है कि अस्पृश्यता केवल धार्मिक व्यवस्था है। यह एक आर्थिक व्यवस्था भी है जो गुलामी से भी बदतर है क्योंकि गुलामी में किसी स्वामी के गुलाम को रोटी-कपड़ा और मकान प्रदान करने की जुम्मेदारी होती है ताकि गुलामों की दशाओं को ठीक रखना ताकि बाजार मूल्य उनका कम न हो पाये । परन्तु अस्पृश्यता की व्यवस्था में हिन्दू कोई जिम्मेदारी नहीं लेता कि उनकी परवाह की जाय । जैसा कि एक आर्थिक व्यवस्थानुसार यह बिना कुछ किये शोषण को प्रेरित करता है और इस प्रकार यह आर्थिक शोषण की अनियंत्रित व्यवस्था भी है''।[2]

<u>बुद्धवाद का अर्थशास्त्र :-</u> इस विषय पर डॉ. अम्बेडकर आर्थिक विचार को श्री धनंजय कीर ने अपनी पुस्तक ''लाइफ एण्ड मिशन'' में इस प्रकार अभिव्यक्ति किया है,'' गरीबी यहाँ है और यहाँ हमेशा रहेगी । आज रूप में भी गरीबी है । परन्तु गरीबी को मानव स्वतंत्रता की बेदी पर बलिदान नहीं किया जा सकता । एक बार इसे महसूस कर लिया जाये कि बुद्ध के सामाजिक उपदेश क्या है तो, गरीबी के निराकरण की अन्तिम घटन होगी''।[3] इसी प्रसंग में डी. सी. कीर ने डा. अम्बेडकर को उधृत करते हुए अपनी पुस्तक में उल्लेख किया है कि,''मै जानना चाहता हूँ कि यदि साम्यवाद के सारांश को अस्वीकृति कर दिया जाय कि निजी सम्पत्ति हो सकती है कोई अधिक और अधिक गम्भीर जैसा कि निजी सम्पत्ति विनयपिटिक में उल्लेख (पाई) जाती है । मै ऐसी नहीं पाता । इसलिए कोई व्यक्ति या कोई किशोर साम्यवाद की व्यवस्था के नियमों से आकर्षित होता है । कि यहां निजी सम्पत्ति नहीं

---

1. डॉ. अम्बेडकर (1945:45) 'गांधी और अस्पृश्यों की मुक्ति'
2. डॉ. अम्बेडकर (1938:196) : पिछड़े वर्ग ।
3. धनंजय कीर : डॉ.अम्बेडकर, 'लाइफ एण्ड मिशन', पृष्ठ-280

होनी चाहिए। क्या वे (किशोर) यहां पा सकते है। प्रश्न यहां यह है कि इस नियम से किस स्तर तक सम्पत्ति को अस्वीकार किया जा सकता है विशेष कर सम्पूर्ण समाज के परिप्रेक्ष्य में। यह मामला उपयुक्त का समय का, परिस्थिति तथा मानव समाज के विकास का है। परन्तु जहां तक सिद्धांत का प्रश्न है, क्या निजी सम्पत्ति को समाप्त करने में कोई चीज त्रुटिपूर्ण है। वुद्धवाद यहां किसी के मार्ग में नहीं खड़ा नहीं होता जो इसे करना चाहता है क्योंकि इसमें पूर्व से ही बुद्धधिस्त संघ में छूट है''।[1]

औद्योगीकरण चकबन्दी को प्रोत्साहित करता है ऐसा डॉ. अम्बेडकर का आर्थिक विचार था। औद्योगीकरण से भूमि पर व्यय की किस्त कम होती है। यह चकबंदी को आगे बड़ाता है। यह भविष्य में भूमि के आगे टुकड़े होने से रोकता है''। यदि औद्योगीकरण के बारे में इसके आवह्मन के भय के बगैर कुछ लिया जाय तो औद्योगीकरण माल के भंडारण को तीव्र गति से बृद्धि करता है। यद्यपि यह चकबंदी को नहीं लाता। परन्तु यह वाद-विवाद का तथ्य है कि जब तक भूमि पर जब तक किस्त पड़ती है तो चकबंदी करना सरल नहीं होता। वैसे औद्योगीकरण को चकबंदी लानी ही चाहिए''।[2]

डॉ. अम्बेडकर (1943:294): यदि मशीनरी तथा सभ्यता यदि प्रत्येक को लाभकारी नहीं है उसका उपचार मशीनरी तथा सभ्यता की भर्त्सना नहीं करना चाहिए, अपितु सामाजिक संगठनों के कार्यो में परिवर्तन करना चाहिए ताकि कुछ के द्वारा ही लाभ न उपार्जित कर लिया जाये, अपितु सभी को लाभ मिले''।[3]

राष्ट्रीकरण :- मूल उद्योगों का राष्ट्रीयकरण पर डॉ. अम्बेडकर ने बहुत अधिक जोर दिया। उन्होंने संविधान सभा में मांगों की जिसको ''द बाम्बे क्रांनिकल दिनांक 22 अप्रैल, 1947 को उसके संवाददाता ने इस प्रकार प्रकाशित किया-''एक

---

1. हीर, डी.सी. - 'डॉ. अम्बेडकर ओन बुद्धिजिम्म', पृष्ठ-103
2. डॉ. अम्बेडकर : भारत में स्मोल होल्डिंग्स, पृष्ठ-28
3. डॉ. अम्बेडकर (1943:294): कांग्रेस ने अस्पृश्यों के लिए क्या किया?

समाचार में डॉ. अम्बेडकर ने संविधान सभा में सहलाकार समिति के चेयरमेन सरदार बल्लभ भाई पटेल से आर्थिक योजना पर एक पृथक समिति गठन करने की मांग की है। समझा जाता है कि ऐसी समिति अल्प संख्यकों के लिए आर्थिक सुरक्षा निर्धारित कर सकती है। संविधान सभा में प्रस्तुत भागपत्र में डा. अम्बेडकर कृषि सहित सभी मूल उद्योगों के राष्ट्रीकरण की मांग करते है"।[1] आर्थिक मुक्तिकरण :- के बारे में डा. अम्बेडकर आर्थिक विचारों का उल्लेख करते हुए भगवान दास अपनी पुस्तक दस स्पोक अम्बेडकर उद्घृत करते है कि-"अब में अनुसूचित जातियों की आर्थिक मुक्ति के मुद्दे पर आता हूँ। यह इसके बारे में मैं सोचता हूँ कि इसके साथ ही उनकी शिक्षा एवं सेवा (कल्याण) अनुसूचित जातियों के सामाजिक प्रस्थिति को ऊंचा उठाने के लिए अधिक महत्वपूर्ण है। अब अनुसूचित जातियों के आर्थिक स्थिति को उठाने के लिए कौन से साधन हैं। सामाजिक रूप से उनकी आर्थिक मुक्ति उनका लाभकारी व्यवसायों में प्रवेश के अवसर उत्पन्न करने में हैं। जब तक लाभकारी व्यवसायों के द्वार उनके लिए नहीं खुलते तब तक उनकी आर्थिक रूप से मुक्ति नहीं होती। तब तक वे गुलाम ही बने रहेगे, गुलाम ही नहीं दास ग्रामों में भू-स्वामियों के वर्ग के, इसमें कोई संदेह नहीं। जब वे लाभकारी व्यवसायों से दूर रहेगे, मैं व्यक्तिगत रूप से अनुभव करता हूँ कि इस प्रसंग में सरकार को चाहिए कि वह उन्हें भूमि आवंटन पर अपना ध्यानाकर्षण करे"।[2]

श्रम :- धनंजय कीर : ने अपनी पुस्तक 'लाइफ एण्ड मिशन' में श्रम के बारे में डाक्टर अम्बेडकर के विचारों का इस प्रकार उल्लेख किया है-"श्रम धन स्वामियों से एक महत्वपूर्ण प्रश्न पूछते हैं, यदि तुम कर अदायगी में बुरा नहीं मानते जो युद्ध व्ययों को करने हेतु एकत्र किया जाता है। फिर धनी ऐसी धनराशि में वृद्धि क्यों

1. धनंजय कीर : "लाइफ एण्ड मिशन" पृष्ठ-293
2. भगवान दास : दस स्पोक अम्बेडकर , पृष्ठ-291

नहीं करते? तब धनी श्रम स्तर को उठाने के लिए क्यों विरोध करते हैं ? कितने अशिक्षित लोग शिक्षित हुए तथा कितने रोगी जन अपना स्वास्थ्य पूर्ण रक्षण कर सके। यदि धन का व्यय युद्ध पर किया गया तो वह जन कल्याण पर ही किया गया''।................फिर कामकाजियों को किस प्रकार सन्तोष दिलायेगे जबकि वे अत्याधिक असमानता को दूर न कर सके न आंशिक रूप से ही जो सिद्धांत त्रुटिपूर्ण है साथ ही एकता के सिद्धांत के विरुद्ध भी। उन्हें ब्राह्मणवाद का उन्मूलन करना चाहिए जो असमानता की चेतना है तो श्रमिक स्तर निश्चित ही संगठित हो जायेगा''।.........यदि विश्व के धनी अपने में बदलाव लाए तथा अपना कुछ समर्पण करे और उन्हें (श्रमिकों) सुविधाऐं दे ताकि गरीबी को समाप्त किया जा सके''।[1]

श्रम संघ :- श्रम संघों के उद्देश्यों पर डालते हुए डॉ. अम्बेडकर निम्न आर्थिक विचारधारा थी-''प्रथम, उद्योग में श्रमिकों के वेतन, कार्य के घंटे तथा सेवा पदों में प्रौन्नति करना है, द्वितीय सामाजिक, श्रम संघों का उद्देश्य होना चाहिए। श्रमिकों को कुछ निश्चित लाभ प्रदान कराना जैसे- बृद्धावस्था पेन्सन, बेरोजगारी भत्ता दिलाना उन कार्मिकों जो मृत्यु हो गये है उनकी विधवा को, तृतीय राजनैतिक तौर पर श्रम संघों को चाहिए कि वे श्रमिकों को एक राजनीति की विशेष का मार्ग दिखाये जिसे श्रम संघ सर्वोत्तम समझते हैं। विशेषकर उनकी सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति के अनुकूल हो''।[2]

धनंजय कीर अपनी पुस्तक में श्रमिक हितों पर डॉ. अम्बेडकर के आर्थिक विचारों को उद्धृत करते हुए लिखते है कि श्रमिकों का आवह्मन करते हुए डॉ. अम्बेडकर कहते है कि-''श्रमिक, पूंजीपति एक महत्वपूर्ण प्रश्न पूछ सकते हैं कि यदि वे (पूंजीपति) बुरा न माने तो, वे युद्ध व्यय की क्षतिपूर्ति करने हेतु कर अदायगी क्यों नहीं करते। वे कर निधि में वृद्धि करने का क्यों विरोध करते हैं?

1. धनंजय कीर : डॉ.अम्बेडकर, 'लाइफ एण्ड मिशन', पृष्ठ-293-295
2. डॉ. अम्बेडकर (1982): राइटिंग्स एवं स्पीचेज, वोलम-2 पृष्ठ-298

जबकि उसका उद्देश्य श्रमिकों की स्थिति में वृद्धि करना है। कितने ही आशिक्षित जन इस निधि से शिक्षित हो सकते हैं तथा अनेकों बीमार अपने उपचार से अपने स्थान की रक्षा कर सकते है। यदि युद्ध पर धन व्यय होता है तो जन कल्याण तो जन कल्याण पर भी''।[1]

डॉ0 अम्बेडकर अपनी पुस्तक 'राइटिंग्स एवं स्पीचेंज' में लिखते है कि धर्मार्थ, एक स्थायी विधि श्रमिकों के कल्याण हेतु स्थापित होना चाहिए जिसका समाज में, श्रमिकों की स्वतंत्रता का विरोध नहीं होना चाहिए अधिकार के, सम्पत्ति के तथा साधनों की जो जीविका उपार्जन के लिए अनिवार्य होते हैं क्योंकि इससे श्रमिक शारीरिक रूप से कुशल क्षेम रहते है''।[2]

बधुआ श्रमिक :- डॉ0 अम्बेडकर ने अपनी पुस्तक 'राइटिंग्स एवं स्पीचेंज' के बोलम प्रथम में बधुआ मजदूर की अवधारणा पर अपने आर्थिक विचार इस प्रकार व्यक्त किए हैं-''मै सुदृढ़ रूप से समझ चुका हूँ कि चाहे बधुआ श्रम को समाप्त करने के हेतु सैकड़ों कानून पास किए जाय। इनका क्रियान्वयन राज्य के हाथों में रहता है। व्यक्ति जो शोषित होते है, बधुआ मजदूरी के लिए, वे कभी-भी कानूनों से लाभ नहीं प्राप्त कर सकते''।[3]

नियोजन :- डॉ0 अम्बेडकर स्टेट्स एण्ड मायनोरिटीज में नियोजन पर अपने विचार अभिव्यक्ति करते हुए लिखा है कि,''एक अनिवार्य दशा सफल नियोजित अर्थव्यवस्था की यह वह है कि उसमें प्रयुतता तथा अधिकता नहीं होना चाहिए, नियोजन स्थाई होनी चाहिए''[4]।

उत्पादन :- डॉ0 अम्बेडकर ने स्मोल होलडिंग्स (1917): में उत्पादन की अवधारणा पर अपने आर्थिक विचारों को इन शब्दों में व्यक्त किया है कि,''कोई

1. धनंजय कीर : डॉ.अम्बेडकर, 'लाइफ एण्ड मिशन', पृष्ठ-293
2. डॉ. अम्बेडकर (1984:292): राइटिंग्स एवं स्पीचेज, बोलम-2 पृष्ठ-292
3. डॉ. अम्बेडकर (1979:301): राइटिंग्स एवं स्पीचेज, महाराष्ट्र शिक्षा पबलीकेशन विभाग, पृष्ठ-301
4. डॉ. अम्बेडकर : स्टेट्स एण्ड मायनोरिटीज, पृष्ठ-34

भी परिभाषा, इसलिए जो उपयोग में त्रुटि करती है एक आर्थिक भण्डारण की प्रकृति में, वह अनिवार्य रूप से उत्पादन की उद्यमता में है। उत्पादन के लक्ष्य में क्या महत्वपूर्ण है, वह है उत्पादन की प्रक्रिया में कारकों का सामूहकीकरण ।''[1]

<u>मुद्रा :-</u> मुद्रा के विषय में डॉ0 अम्बेडकर ने अपने आर्थिक विचारों को 'प्रोवलम्ब आफ रूपीज' नामक पुस्तक में अभिव्यक्त किए हैं। प्रो0 कीन्स और मैरे मध्य मुद्रा विषय विचार में मतभेद मौलिक तथ्यों की ओर आगे बड़ गये जो मेरे मुद्रा विषय विचार थे उनकी प्रो0 कीन्स ने उपेक्षा कर दी कि कोई भी रूपया का ठहराव प्रदान नहीं कर सकता । हम हो जो रूपये के ठहराव को उसकी सामान्य क्रय शक्ति से करते हैं। रूपया विनमय का स्तर रूपया का ठहराव नहीं कर सकता। मुद्रा मान अपने आप में लक्षणों से संबंधित होता है और वह रोग ग्रसित नहीं होता। यथार्थ में मैरे दिखाने से, यदि कोई कारण है तो निश्चित यह रोग की वृद्धि करेगा''।[2] वे आगे कहते है कि- केवल रूपये के अवमूल्यन की वैज्ञानिक पर्याप्त व्याख्या यही है कि रूपये ने अपनी क्रय शक्ति खोदी है''[3]। उन्होंने अपनी व्याख्या को प्रसार करते हुए बताया कि-''यथार्थ में परिवर्तनीय रूपये की दर अनुरूप होती है मुद्रा की क्रय शक्ति के बरावर समस्त वस्तुओं के संदर्भ में अपितु कुछ के सन्दर्भ में और वे वस्तुऐं जो आंतरिक रूप से जिनकों क्रय व विक्रय किया जाता है'' [4] ।.......''अतः मै सोचता हूँ कि वो दोनों अत्याधिक ग्रन्थिपूर्ण हैं, मै व्यक्तिगत रूप से विश्वास करता हूँ कि स्वर्ण धातु मान मुद्रा प्रत्येक व्यवहारिक उद्देश्य के लिए पर्याप्त होती है। मेरा अनुरोध है कि भारत को स्वर्ण धातु मान मुद्रा रखना चाहिए क्योंकि स्वर्ण केवल एक ईकाई के रूप में कार्य नहीं करता''[5]।

---

1. डॉ. अम्बेडकर (1927:13): स्मोल होलडिंग्स इन इन्डिया, पृष्ठ-13
2. डॉ. अम्बेडकर (1923:302): 'द प्रोवलम आफ रूपीज, पी.एस. किंग एण्ड सन्स, पृष्ठ-302
3. डॉ. अम्बेडकर (1923:302): 'द प्रोवलम आफ रूपीज, पी.एस. किंग एण्ड सन्स, पृष्ठ-311
4. डॉ. अम्बेडकर (1923:302): 'द प्रोवलम आफ रूपीज, पी.एस. किंग एण्ड सन्स, पृष्ठ-312
5. रायल कमीशन आफ करेन्सी एण्ड फाइनेन्स, वोलम-2 ,पृष्ठ-314

बीमा :- बीमा के संबंध में डॉ0 भीमराव अम्बेडकर के आर्थिक विचारों का धनंजय कीर ने अपनी पुस्तक में इस प्रकार उल्लेख किया है-"बीमा पर राज्य का एकाधिकार होगा। कृषि राज्य का उद्योग होना चाहिए। भूमि का स्वामित्व राज्य को होना चाहिए और उसे बिना जाति, रंग तथा मजहव का भेद किए ग्रामीणों को जोतने-बोने हेतु वितरित करना चाहिए इस ढंग से ताकि कोई भू-स्वामी न हो, न कोई जोतकर्ता तथा न भूमि हीन"।[1]

भूमि सुधार :- डॉ0 अम्बेडकर 'स्टेट्स एण्ड मायनोरिटीज' पुस्तक में लिखते है कि, "राज्य के नियंत्रण हो तो, स्वतंत्रता किसे कहते हैं, निजी क्षेत्र की तानाशाही के लिए दूसरा नाम हैं। राष्ट्रीकरण कृषि उद्योग निम्न भाँति संगठित होना चाहिए:-

1. राज्य को कृषि भूमि का अधिग्रहण कर समान क्षेत्रीय क्षेत्रफल में विभाजित करना चाहिए तथा कृषि भूमि क्षेत्र को ग्राम के निवासियों, कृषि श्रमिकों तथा उनके समूह परिवारों को किराये पर उठा देना चाहिए। ये कृषि जोता निम्न शर्तो पर कृषि कार्य कर सकते है-

(अ) कृषि भूमि को वे सहकारिता के रूप में खेती करें भूमि क्षेत्रों पर,

(ब) सरकार के द्वारा मार्ग दर्शित नियमों तथा निर्देशानुसार वे खेती करें,

(स) कृषक फिर उत्पादन का आपस में वितरित कर लें, उन नियमों के अनुसार जिनका पूर्व में प्राविधान कर लिया है, और इस कार्य को भूमि क्षेत्र के अधिकारी के अधिकार में रखा जाय।

2. भूमि को ग्रामवासियों पर छोड़ दिया जाय उनकी जाति, रंग तथा धर्म का भेद किए इस ढंग से कि फिर वहां कोई भू-स्वामी, कृषि श्रमिक तथा भूमिहीन शेष न रहे।

3. यह राज्य की जुम्मेदारी होगी कि वह सहकारी कृषि कार्य में सिंचाई कराये, सूखे में मदद करे, पशु प्रदान करे, खाद्य बीज तथा उर्वरक प्रदान करे, ताकि कृषि उत्पादन को बढ़ाने के लिए;

---

1. धनंजय कीर : डॉ.अम्बेडकर, 'लाइफ एण्ड मिशन', पृष्ठ-

4. उपरोक्त कार्य में राज्य का स्वामित्व होगा कि:-

(क) भूमि क्षेत्र का बिना का एक भाग उत्पादन पर कर दें,

(ख) उपज का एक भाग भूमि राजस्व के लिए छोड़े,

(ग) एक भाग भूमि में जिनका धन लगा है उनके लिए छोड़े,

(घ) संसाधनों जो प्रयोग में आये है, उन्हें अदा किया जाय तथा,

(ङ) जिन जोतों ने सहकारी कृषि में बाधा डाली है उन्हें वित्तीय दण्ड दिया जाय अथवा जान बूझकर राज्य द्वारा प्रदत्त सुविधाओं की उपेक्षा की है''[1]।

डॉ0 अम्बेडकर (पृष्ठ-19) में आगे कहते है कि,''वर्तमान में भूमिदारी अनार्थिक है, इस दृष्टि से नहीं कि भूमि स्वामित्व के छोटे-छोटे अंश है या किसी पर बहुत बड़े। भारत में कृषि सुधार की व्याधिकी उपचार यह नहीं है कि लोगों की कृषि क्षेत्र में बृद्धि कर दी जाय अपितु पूंजी बृद्धि तथा पूंजीगत संसाधन। डॉ0 अम्बेडकर (1989:261) अपने लेखन एवं भाषणों में कहते है कि,''मै सोवियत कृषि व्यवस्था को प्राथमिकता प्रदान करता हूँ जहां कृषि के सामूहिकीकरण द्वारा कृषि उपज की व्याधिकी को दूर कर लिया गया है। इस प्रकार मेरे अनुसार सोवियत कृषि व्यवस्था ही सर्वोत्कृष्ट है''।

डॉ. अम्बेडकर का आर्थिक दर्शन

डॉ. अम्बेडकर सामान्यता भारतीय संविधान के निर्माता दलितों के मसीहा के रूप में ही जाने जाते है, परन्तु उनके व्यक्तित्व का एक महत्वपूर्ण पहलू अभी तक जन-साधारण से छुपा हुआ है। डॉ. अम्बेडकर न केवल महान समाजशास्त्री, राजनीतिशास्त्री तथा धर्मशास्त्री थे बल्कि वे एक महान अर्थ-शास्त्री भी थे। यह कहना अतिश्योक्ति न होगी कि वे 'पब्लिक फाइनेन्स' विषय के महान् विशेषज्ञ थे। उनका पी-एच.डी. का विषय 'Evolution of Provincial Finance in British

---

1. डॉ. अम्बेडकर (1927:15): स्टेट्स एण्ड मायनोरिटीज, थेकर एण्ड को. बम्बई, पृष्ठ-15

India' तथा डी.एस.-सी. का विषय 'Problem of the Rupee' अत्यन्त गहन विषय था जो कि बाद में पुस्तक के रूप में प्रकाशित हुआ। उनके एम.ए. का विषय 'Ancieent Indian Commerce' तथा एम.एम-सी. का शोध विषय 'Decentralization of Imperial Finance in British India' भी गम्भीर एवं महत्वपूर्ण विषय थे। उनका इरादा अर्थशास्त्र के संसार प्रसिद्ध अध्ययन केन्द्र 'Bonn University' से एक एडवांस कोर्स करने का भी था जिसे वे पैसे की कमी के कारण पूरा नहीं कर सके। उनकी ये शैक्षिक उपलब्धियाँ उनके अर्थशास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान होने का प्रमाण है। उनके भारतीय अर्थ व्यवस्था को सुधारने के उद्देश्य से वर्ष 1925 में गठित कमीशन के सामने अपना पक्ष रखने हेतु बुलाया गया था। उनके दूसरे असंख्य लेख एवं भाषण न केवल उनके एक अग्रगणी अर्थ-शास्त्री होने को प्रमाणित करते है बल्कि इससे उनकी भारतीय अर्थ व्यवस्था को सुधारने की उत्सुकता भी प्रमाणित है। डॉ. अम्बेडकर द्वारा विद्यार्थियों की एक संस्थान की सभा में 'Responsiblities of a Responsible Government in India' विषय पर पढ़े गये सनसनीखोज लेख में व्यक्त विचारों के बारे में उस समय के संसार प्रसिद्ध राजनीतिशास्त्र के विद्धान प्रोफेसर 'हैराल्ड पजे. लास्की' ने कहा था कि "लेख में प्रकट किये गये डॉ. अम्बेडकर के विचार क्रांतिकारी स्वरूप के हैं।"

डॉ. अम्बेडकर के शोध ग्रन्थ 'Provincial Decentralisation of Imperial Finance in British India' पर उनके आचार्य एडिवन केनन ने अपनी प्रस्तावना में उनके तर्क से मतभेद व्यक्त करते हुए उस ग्रन्थ में व्यक्त विचारों और युक्तिवाद में प्रकट कुशाग्र बुद्धि की सराहना की है।

1. रायल कमीशन :-

भारत की मुद्रा प्रणाली में आवश्यक सुधार लागू करने के लिए 'रायल कमीशन आन इण्डियन करेन्सी एण्ड फाइनेन्स' की स्थापना की गई थी। इस कमीशन के अध्यक्ष 'एडवर्ड हिल्टन यंग' थे। इस कमीशन ने 40 लोगों के बयान

लिये, जिनमें डॉ. अम्बेडकर को जब बयान देने के लिए आमंत्रित किया गया था तो कमीशन के हरेक सदस्य के हाथ में डॉ. अम्बेडकर लिखित 'Evolution of Provincial Finance in British India' ग्रन्थ की प्रतियां थीं। यह इस अद्भुत भारतीय मनीषी के प्रति अंग्रेज बुद्धिजीवीयों द्वारा प्रदर्शित बौद्धिक सम्मान था।

सारे भारत में यह चर्चा का विषय बना हुआ था कि रूपये का मूल्य पौण्ड के हिसाब से एक शिलिंग 4 पैन्स रखा जाए या एक शिलिंग 6 पैन्स। इस विषय में डॉ. अम्बेडकर ने दो लेख लिखकर अपनी राय जाहिर की थी। उसमें उन्होंने यह सुझाव दिया था कि रूपये का मूल्य एक शिलिंग 6 पैन्स रखना ही राष्ट्र के लिए हितकर होगा। उन्होंने एच. एल. शावलानी की पुस्तक 'इण्डियन करेन्सी एण्ड एक्सचेन्ज' पर समालोचना भी लिखी थी।

कमीशन ने सामने दिये गये अपने बयान में डॉ. अम्बेउकर ने साफ-साफ कहा था कि सरकार की मुद्रा नीति की दुविधामय स्थिति के कारण ही कीमतों में भारी उतार-चढ़ाव होते रहते हैं और उसका परिणाम गरीबों को भुगतना पड़ता है।

डॉ. अम्बेडकर ने अपनी कृतियों में अंग्रेज सरकार की तत्कालीन कर नीति जैसे अत्याधिक भूमि लगान, नमक कर, इंग्लैण्ड तथा भारतीय उत्पादन पर असमान कस्टम ड्यूटी, जागीरदारी तथा जमींदारी व्यवस्था द्वारा किसानों का घोर आर्थिक शोषण तथा अंग्रेजों एवं भारतीय सरकारी अधिकारियों के वेतन में भारी अन्तर आदि थे। इस व्यवस्था के परिणामों का चित्रण बाबा साहेब ने इन शब्दों में बखूबी किया है। 'the Agencies of war were cultivated in the name of peace and they usurped so much of the total funds that nothing was practically left for the agencies of progress.'

'The Problem of Rupee' विषय पर उनका मत था कि भारतीय रूपये का आधार सोना होना चाहिए न कि चांदी। डॉ. अम्बेडकर 'गोल्ड एक्सचेन्ज स्टैण्डर्ड' तथा गोल्ड रिजर्व फण्ड' के विरोधी थे। वे रूपये के मूल्य को उसकी आंतरिक

क्रय-क्षमता से जोड़ने तथा उसके नियंत्रित प्रचलन के पक्षधर थे। उनका सुझाव था कि रूपये का मूल्य सोने के रूप में रखा जाए तथा कागज के नोट चलाये जायें। इस विवरण से स्पष्ट है कि बाबा साहब भारतीय अर्थव्यवस्था के प्रति कितने चिन्तित थे तथा उन्होंने इसे सुधारने में अथक योगदान दिया।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि डॉ. अम्बेडकर को अर्थशास्त्री के रूप में योग्यता अंग्रेजी सरकार तथा पश्चिम के विद्वानों द्वारा सराही गई थी।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत में वांछित अर्थव्यवस्था के बारे में उनके विचार उनकी 'स्टेट एण्ड माइनोरिटीज' नामक पुस्तिका में स्पष्टतया अंकित है,

डॉ. अम्बेडकर प्रत्येक नागरिक की मूल आवश्यकताओं की आपूर्ति किसी भी लोकतंत्र का प्रथम कर्तव्य मानते थे। वे साम्राज्यवाद और पूंजीवाद के खुले विरोधी थे। उनकी सोच में कार्लमार्क्स और गौतम बुद्ध के विचारों का अद्भुत समन्वय है। वे पक्के यथार्थवादी थे। उनकी मान्यता थी कि मानव समाज में पूर्ण समानता नहीं लाई जा सकती है। इसलिए वे धन-दौलत एवं अन्य प्रकार की सामाजिक-शैक्षिक असमानताओं को ही क्रामिक एवं तार्किक ढंग से दूर करना चाहते थे। उन्होंने 'प्रिवी पर्स' की समाप्ति, बैंकों, बीमा कम्पनियों तथा कोयले की खानों के राष्ट्रीकरण की बात बहुत पहले उठाई थी। इससे भी आगे बढ़कर उन्होंने भूमि तथा कृषि के राष्ट्रीकरण की वकालत की थी। वे समाजवाद और सार्वजनिक क्षेत्र के पक्षधर थे जिनके माध्यम से नेहरूजी ने भारतीय अर्थव्यवस्था को नियंत्रित एवं विकसित करना चाहा। डॉ. अम्बेडकर की आर्थिक योजना पर उनके निम्नलिखित शब्द पर्याप्त प्रकाश डालते है: 'यदि विदेशी तत्वों को निष्कासित कर आर्थिक परिवर्तनों को वरीयता दी जाय तो सशक्त प्रशासन आसानी से दूरगामी समाज-सुधार ला सकता है।

डॉ. अम्बेडकर का दृढ़ मत था कि "हमें अपने राजनीतिक लोकतंत्र को सामाजिक लोकतंत्र बनाना चाहिए क्योंकि इसके बिना राजनीतिक लोकतंत्र

अधिक दिनों नहीं चल सकता।'' उन्होंने भारतीय समाज की सामाजिक दशा का चित्रण एक जोरदार राजनीतिक एवं आर्थिक शब्दावली में इस प्रकार किया है:

''यह असन्तोषजनक स्थिति है कि अधिकांश लोगों को अपनी जीविका चलाने के लिए भार ढोने वाले पशुओं की तरह 14-14 घंटे पसीना बहाना पड़ता है और इस प्रकार वे मनुष्य की अमूल्य धरोहर मस्तिष्क एवं मन का प्रयोग करने के अवसरों से वंचित रह जाते हैं। पूर्व में कैसा भी रहा हो, परन्तु वर्तमान समय में वैज्ञानिक एवं तकनीकी प्रगति ने इसे सम्भव बना दिया है। कुछ लोगों द्वारा दूसरों का शोषण इसलिए सम्भव हो रहा है कि उत्पादन के साधनों में भूमि तथा उद्योगों पर समाज का नियंत्रण नहीं है। जब यह सम्भव कर दिया जाएगा तो मैं इसे वास्तविक सामाजिक क्रांति मानूँगा।''

डॉ. अम्बेडकर की यह भी मान्यता थी कि सामाजिक और आर्थिक मुक्ति के बिना जीवन और राजनीतिक स्वतंत्रता का कानून एवं संविधान द्वारा संरक्षण बेमानी हो जाता है। उन्होंने कहा कि 'हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि लोग, दलितों सहित, केवल कानून और व्यवस्था पर जीवित नहीं रह सकते हैं, उन्हें तो रोटी चाहिए।' लोकतंत्र की सफलता के बारे में उन्होंने कहा कि ''मेरे विचार में लोकतंत्र की सफलता की पहली शर्त यह है कि समाज में घोर असमानतायें न हो। वहाँ पर कोई भी शोषित एवं दलित वर्ग न हो। वहां पर न तो कोई सर्वाधिकार सम्पन्न वर्ग हो और न ही कोई सर्वथा वंचित वर्ग हो। अन्यथा ऐसा विभाजन, ऐसी परिस्थिति तथा ऐसा सामाजिक संगठन हमेशा हिंसक क्रांति के बीच संजोए रहता है और लोकतंत्र द्वारा इनका निदान असम्भव हो जाता है।

डॉ. अम्बेडकर उन राष्ट्रवादियों से असहमत थे जो केवल राजनीतिक स्वतंत्रता को प्राथमिकता देते थे। वे ऐसी कोरी एवं भावुक देशभक्ति को आदर्श नहीं मानते थे। उनकी मान्यता स्पष्ट थी।

भारत में वे लोग राष्ट्रवादी और देशभक्त माने जाते हैं, जो अपने भाइयों के साथ अमानुषिक व्यवहार होते देखते हैं। किन्तु इस पर उनकी मानवीय संवेदना आंदोलन नहीं होती। उन्हें मालूम है कि इन निरपराध लोगों को मानवीय अधिकारों से वंचित रखा गया है। परन्तु इससे उनके मन में कोई क्षोभ नहीं पैदा होता। वे एक वर्ग के सारे लोगों को सरकारी नौकरियों से वंचित देखते हैं, परन्तु इससे उनके मन में न्याय और ईमानदारी के भाव नहीं उठते। वे मनुष्य और समाज को आहत करने वाली सैकड़ों कुप्रथाओं को देखकर भी मर्माहत नहीं होते। देशभक्तों का तो मात्र एक ही नारा है-'उनकी तथा उनके वर्ग के लिए अधिक से अधिक सत्ता।' मैं प्रसन्न हूँ कि मैं इस प्रकार के देशभक्तों की श्रेणी में नहीं हूँ। मैं उस श्रेणी से संबंध रखता हूँ, जो लोकतंत्र के पक्षधर हैं और हर प्रकार के एकाधिकर को समाप्त करने के लिए संघर्षरत हैं। हमारा उद्देश्य जीवन के सभी क्षेत्रों -राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक- में एक व्यक्ति, एक मूल्य के आदर्श को व्यवहार में उतारना है।

बाबा साहब ने राजनीतिक आंदोलनों में मजदूर वर्ग की भूमिका के बारे में 6-7 सितम्बर, 1943 को पांचवी मजदूर सभा को सम्बोधित करते हुए कहा थाः

मैं दो टिप्पणियां करना चाहता हूँ। पहली-"वह कि जो लोग औद्योगिक ढांचे की पूंजीवादी व्यवस्था और राजनीतिक ढांचे की संसदीय व्यवस्था में रह रहे हैं, वे अपनी व्यवस्था के अन्तर्विरोधी को अवश्य पहचानें। इसमें प्रथम अन्तर्विरोधी काम न करने वालों के लिए असीम सम्प्रदा एवं काम करने वालों के लिए भीषण गरीबी के रूप में है। दूसरा-अन्तर्विरोध राजनीतिक और एक-वोट-एक-मूल्य हमारे राजनीतिक आदर्श हैं, परन्तु आर्थिक क्षेत्र राजनीतिक आदर्श के ठीक उल्टे हैं। इन अन्तर्विरोधों को दूर करने के रास्तों के बारे में मतभेद हो सकते हैं, परन्तु इसमें कोई मतभेद नहीं हो सकता कि ये अन्तर्विरोध हैं।

मेरी दूसरी टिप्पणी यह है कि जबसे सामाजिक जीवन को आधार स्तर और संविदा हुआ तब से जीवन की असुरक्षा एक सामाजिक समस्या बन गई है और मानवीय जीवन को बेहतर बनाने वालों को इसका हल ढूँढना होगा। मनुष्य के जन्म-सिद्ध अधिकारों एवं स्वतंत्रताओं को व्याख्यापित करने में बड़ी शक्ति लगाई है। यह सब बहुत अच्छा है। लेकिन मैं यह कहना चाहता हूँ कि तब तक सुरक्षा सम्भव नहीं होगी जब तक............. इन अधिकारों को मूर्त रूप नहीं दिया जाता। जिन्हें जनसाधारण समझ सकें जैसे- शांति, मकान, पर्याप्त कपड़ा, शिक्षा, अच्छी सेहत तथा सबसे ऊपर गिरने के भय के बिना सिर को ऊंचा रखकर चलने का अधिकार।''

डॉ. अम्बेडकर ने कहाः ''हम भारत में इन समस्याओं को नजरअंदाज नहीं कर सकते। हमें अपने मूल्यों का पुर्नमूल्यांकन करना होगा। भारत में केवल आर्थिक उत्पादन पर सारी शक्ति लगा देना पर्याप्त नहीं होगा। हमें न केवल सभी भारतवासियों के सम्मानजनक जीवन के साधन के रूप में इस सम्पदा में उनकी हिस्सेदारी के मौलिक अधिकार पर सहमत होना होगा, बल्कि असुरक्षा से बचाने के तरीके भी ढूँढने होंगे।''

वे गाँधीवादी अर्थव्यवस्था से खुले रूप में असहमत थे। उनकी दृष्टि में 'गाँधीवाद केवल वर्ग-भेद से ही संतुष्ट नहीं है, वह वर्ण व्यवस्था पर भी जोर देता है, यह तो समाज की वर्ण अर्थात् आर्य-संरचना को पवित्र मानना है जिसके फलस्वरूप अमीर-गरीब, ऊंच-नीच, मालिक-नौकर आदि हमारे सामाजिक संगठन के स्थायी अंग हो जायेंगे। उन्होंने आगे कहा कि ''गांधीवाद ऐसे समाज के लिए उपयुक्त हो सकता है, जो लोकतंत्र के आदर्शो को अस्वीकार करता हो। ऐसा समाज आत्मनिर्भरता और संस्कृति के प्रति उदासीन हो सकता है, परन्तु लोकतांत्रिक नहीं। पहला समाज कुछ लोगों के लिए आराम तथा सुसंस्कृत जीवन तथा अधिकांश लोगों के लिए कड़ी मेहनत और दरिद्रता का जीवन स्वीकार

करेगा। परन्तु एक लोकतांत्रिक समाज के लिए अपने सभी नागरिकों को सुखी एवं सुसंस्कृत जीवन सुनिश्चित करना आवश्यक है।''

आधुनिक भारत के निर्माता पण्डित नेहरू गांधीवादी अर्थव्यवस्था के विरूद्ध उतने मुखर नहीं थे जितिने कि डॉ. अम्बेडकर। नेहरूजी के लिए भी राजनीतिक स्वतंत्रता सर्वोपरि थी। डॉ. अम्बेडकर और नेहरूजी दोनों ही राजकीय समाजवाद में विश्वास रखते थे।

डॉ. अम्बेडकर के शब्दों में :

''समस्या यह है कि अधिनायकवाद के बिना राजकीय समाजवाद तथा संसदीय लोकतंत्र के साथ राजकीय समाजवाद कैसे रहे। इसका केवल यही हल दिखता है कि संसंदीय लोकतंत्र तथा संवैधानिक कानूनों द्वारा राजकीय समाजवाद अपनाया जाय जिसे संसदीय बहुमत द्वारा निलम्बित, संशोधित अथवा समाप्त करना असम्भव होगा। इस प्रकार समाजवाद लाने, संसदीय लोकतंत्र को स्थापित करने और अधिनायकवाद से बचने के हमारे तीन उद्देश्यों की पूर्ति हो सकेगी।

2. आर्थिक दर्शन :-

डॉ. अम्बेडकर का राजनीतिक दर्शन मूलतः सामाजिक-आर्थिक दर्शन है। वे कहते हैं :

''बेरोजगार लोगों से पूछिए कि उनके लिए मौलिक अधिकारों की क्या उपयोगिता है। यदि किसी बेराजगार व्यक्ति को अनिश्चित घण्टों वाली संवैधानिक नौकरी और किसी मजदूर यूनियन में शामिल होने, संगठन बनाने अथवा धार्मिक स्ववंत्रता के अधिकार के बीच चुनने के लिए कहा जाए तो क्या उसको चुनाव के बारे में कोई शक हो सकता है? वह दूसरी चीज कैसे चुन सकता है? भुखमरी, घर-विहीनता, दरिद्रता, बच्चों को स्कूल रखने जैसी परिस्थितियाँ किसी भी व्यक्ति को अपने मौलिक अधिकार छोड़ने के लिए बाध्य कर सकती है।

इस प्रकार बेरोजगार लोग काम तथा जीवन-निर्वाह के लिए मौलिक अधिकारों को तिलांजलि देने के लिए मजबूर होंगे।''

संवैधानिक विशेषज्ञ यह मान लेते हैं कि स्वतंत्रता की सुरक्षा हेतु मौलिक अधिकारों को दे देना ही पर्याप्त है। उनकी मान्यता है कि अब सरकार व्यक्तिगत, सामाजिक एवं आर्थिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं करती, व्यक्ति की स्वतंत्रता संरक्षित रहती है। किन्तु आवश्यकता इस बात की है कि न्यूनतम, सरकारी हस्तक्षेप को कायम रखते हुए वास्तविक स्वतंत्रताओं को बढ़ाया जाय। स्वतंत्रता को केवल सरकारी हस्तक्षेप से पूर्ण मुक्ति के संदर्भ में ही नहीं परिभाषित किया जाना चाहिए। इससे स्वतंत्रता की समस्या का समाधान नहीं हो जाता। सरकारी हस्तक्षेप के अभाव में जंगलराज अर्थात् 'जिनकी लाठी उसकी भैंस' वाला समाज होगा। इसीलिए ऐसी स्वतंत्रता के सन्दर्भ में डॉ. अम्बेडकर यह प्रश्न उठाते हैं कि ऐसी स्वतंत्रता आखिर कैसी और किसके लिए होगी? इसका उत्तर है:

''स्पष्टतया यह स्वतंत्रता जमींदारों को लगान बढ़ाने, पूंजीपतियों को काम के घण्टे बढ़ाने, और कम मजदूरी देने की छूट देने वाली होगी। यह ऐसी ही होगी''।

इसलिये डॉ. अम्बेडकर ने राजशक्ति की सर्जनात्मक भूमिका पर जोर दिया। सही मायने में लोकतांत्रिक राज लोककल्याणकारी होगा। ऐसे राज्य का उपयोग जमींदारी और पूंजीपतियों जैसे निहित स्वार्थो को अनुशासित करने और उनके सामाजिक-आर्थिक आधार को समाप्त करने में किया जा सकता है। इसके अधिकारों को सीमित किये बगैर आम जन को स्वतंत्रता नहीं दी जा सकती है।

3. आर्थिक व्यवस्था :-

अतः डॉ. अम्बेडकर ने कहा :'एक आर्थिक व्यवस्था में, जिसमें लाखों मजदूर उत्पादनरत हों, समय-समय पर किसी न किसी को नियम बनाने पड़ेंगे ताकि मजदूरों को काम मिले और उद्योग चलते रहें, अन्यथा जीना असम्भव हो

जाएगा। राजकीय नियंत्रण से स्वतंत्रता का मतलब होगा, व्यक्तिगत मालिकों की तानाशाही।'

डॉ. अम्बेडकर के मस्तिष्क में राजकीय समाजवाद की रूप-रेखा स्पष्ट थी। भारत के सामाजिक रूपांतरण और आर्थिक विकास के लिए वे इसे अपरिहार्य मानते थे। अपनी रूप-रेखा को उन्होंने राष्ट्र के समक्ष प्रस्तावित भी किया था। उनके अनुसार भारतीय संघ निम्नलिखित को संवैधानिक कानून का अंग घोषित करेगा :

1. सभी प्रमुख उद्योग सरकारी नियंत्रण में होगे तथा सरकार द्वारा ही चलाए जायेंगे।
2. वे उद्योग भी, जो प्रमुख नहीं हैं, किन्तु आधारभूत हैं, सरकार अथवा सरकारी उद्यमों द्वारा चलाए जायेंगे।
3. बीमा केवल सरकार के हाथ में होगा तथा प्रत्येक व्यस्क व्यक्ति को जीवन बीमा पालिसी लेना आवश्यक होगा।
4. कृषि राजकीय उद्योग घोषित होगी।
5. सरकार सभी बड़े एवं प्रमुख उद्योगों, बीमा कम्पनियों एवं कृषि भूमि को उनके मालिकों को डिबेन्चर्स के रूप में मुआवजा देकर राष्ट्रीकरण कर लेगी।
6. कृषि उद्योग निम्न प्रकार से चलाया जायगा :

(i) सरकार द्वारा अधिग्रहित भूमि को उचित आकार के फार्मो में विभाजित करके ग्रामीणों में परिवार-समूह को इकाई मानकर उत्पादन करने हेतु निम्न शर्तो पर आवंटित किया जाएगा :(क) फार्म पर सामूहिक खेती होगी। (ख) फार्म पर सरकार द्वारा बनाए गये नियमों के अनुसार उत्पादन किया जाएगा।

(ग) किराएदारी कर आदि देने के बाद बचे उत्पाद को निर्धारित तरीके से आपस में बाँटा जाएगा।

(ii) भूमि सभी लोगों में जाति-धर्म आदि के बगैर भेद के इस प्रकार बाँटी जाएगी कि न तो कोई जमीदार होगा, न किराएदार और न ही भूमिहीन मजदूर।

(iii) पानी, उपकरण, पशु, खाद तथा बीज आदि उपलब्ध कराना सरकार का कर्तव्य होगा।

इस प्रकार हम देखते है कि डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तावित राष्ट्र निर्माण का आर्थिक प्रारूप राजकीय समाजवादी था। वे राज्य का सकारात्मक हस्तक्षेप सामाजिक-आर्थिक रूपांतरण के लिए आवश्यक मानते थे। यह प्रारूप गांधीवाद प्रारूप से सर्वथा भिन्न और नेहरूवादी प्रारूप से अधिक स्पष्ट, विकसित और निर्णायक है। भारत में परम्परागत सामाजिक बंटवारा अन्यायपूर्ण है और उस पर आधारित आर्थिक बंटवारा अमानवीय है। इन्हें समाप्त करना ही है। यही हमारा प्रश्न है। इस सन्दर्भ में कुछ विशेष न कर पाने के कारण ही जगह-जगह हिंसात्मक संघर्ष फूट रहे हैं। इन्हें केवल कानून और व्यवस्था की समस्या के रूप में देखना समझदारी नहीं होगी। इसकी आशंका डॉ. अम्बेडकर ने की थी। अतः उन्होंने समय अपना राजकीय समाजवाद का नमूना देश के समक्ष रखा था। यह भारत जैसे पिछड़े देश के लिए आज भी प्रासंगिक है। नेहरूजी इसी देश में चले थे लेकिन आधे मन से। आज हम अपने चिन्तकों द्वारा प्रस्तुत राजनीतिक-आर्थिक नमूनों को भूलकर पश्चिमी पूंजीवादी दुनियां के लुभावने किन्तु खतरनाक नारों और मुहावरों में फँसते जा रहे हैं। अन्ततः यह घातक होगा। आज राजकीय नियंत्रण से स्वतंत्रता को हम वास्तविक स्वतंत्रता माने बैठें हैं। लेकिन डॉ. अम्बेडकर ने इसमें 'व्यक्तिगत

मालिकों की तानाशाही' देखी थी। लोकतांत्रिक राज्य को निपट पूंजीवादी राज्य मानना उचित नहीं। डॉ. अम्बेडकर ने भारत में व्याप्त आर्थिक और सामाजिक अन्तर्विरोधी को दूर करने के लिए, जिस राज्य की कल्पना की थी, वह राजनीतिक दृष्टि से लोकतांत्रिक और आर्थिक दृष्टि से समाजवादी था। उसे उन्होंने राजकीय समाजवाद कहा। उसे समाजवादी लोकतंत्र भी कहा जा सकता है। हमारे लिए यह नमूना अप्रासांगिक नहीं है।[1]

डॉ0 अम्बेडकर एवं आर्थिक नियोजन

1. प्रस्तावनाः-

आधुनिक भारत के निर्माता भारत रत्न डॉ. भीमराव अम्बेडकर एक बहुमुखी प्रतिभा के व्यक्ति थे। उनका दर्शन सामाजिक, राजनीतिक एवं धार्मिक खेत्र तक ही सीमित नहीं था बल्कि उनका आर्थिक दर्शन एवं राष्ट्र के आर्थिक विकास हेतु उनके द्वारा दी गई नियोजन की नीति भी अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं सराहनीय है।

बाबा साहब ऐसे वर्ग में पैदा हुए थे, जो सदियों से उपेक्षित एवं पिछड़ा हुआ था। उनके द्वारा यह अनुभव किया गया था कि समाज में सामाजिक एवं रातनीतिक विषमता ही नहीं बल्कि आर्थिक विषमता भी उग्र रूप धारण किये हुए है जिससे समाज का तीन चौथाई अंग प्रभावित एवं पीड़ित है।

बाबा साहब न केवल महान समाजशास्त्री, राजनीतिशास्त्री तथा धर्मशास्त्री थे बल्कि यह एक अर्थ शास्त्री तथा विचारक भी थे। बाबा साहब द्वारा प्रतिपादित आर्थिक दर्शन के अन्तर्गत जो कृतियां जैसे, प्रावलम ऑफ रूपी (1923), हिस्ट्री आफ इण्डियन करेन्सी एण्ड बैकिंग (1947), इबोल्यूशन आफ प्राविंशियल

1. दारापुरी, एस.आर. : "डॉ. अम्बेडकर का आर्थिक दर्शन", उ.प्र. संदेश, वर्ष-1 अप्रैल 1991, अंक-4

फाइनेंस इन ब्रिटिश इण्डिया प्रकाशित की गई। इनसे यह स्पष्ट होता है कि वह एक महान अर्थशास्त्री थे।

भारत एक कृषि प्रधान देश है जिसकी 80 प्रतिशत जनसंख्या की जीविका कृषक एवं कृषि मजदूर के रूप में कृषि पर ही आधारित है। भारत में कृषि जोतें छोटी-छोटी ही नहीं बल्कि वे बिखरी हुई है, जिससे उत्पादन का पूरा लाभ कृषकों को नहीं मिल पाता है। बाबा साहब द्वारा कृषकों की समस्याओं एवं कृषि जोतों के आकार एवं उनके प्रभाव का अध्ययन किया गया और उनके द्वारा 1918 में एक पुस्तक 'स्माल होल्डिंग्स इन इण्डिया एण्ड देयर रेमेडीज' लिखी गई जिसके अन्तर्गत कृषि जोत, कृषि उत्पादन एवं कृषि अर्थ व्यवस्था के सम्बन्ध में विवेचन किया गया। डॉ. अम्बेडकर द्वारा इस पुस्तक के अन्तर्गत इस ओर ध्यान दिलाया कि भारत की जोतें छोटी-छोटी ही नहीं बल्कि बिखरी हुई भी है। भारतीय कृषि के इस रूप को दृष्टिकोण रखते हुए डॉ. अम्बेडकर द्वारा यह स्पष्ट किया गया कि कृषि जोतों की दो समस्यायें है :- (1) एक ओर जोतों को इकाट्ठा कैसे किया जाय? (2) दूसरी ओर चकबन्दी के उपरान्त उसे कैसे स्थाई रूप में रखा जाय? डॉ. अम्बेडकर द्वारा चकबंदी के जो तरीके प्रतिपादित किये गये, उनके अन्तर्गत जोतों को सीमाबद्ध करना, बिखरी हुई जोतों की पड़ोसी जोत मालिकों को बिक्री पर प्रतिबन्ध लगाना एवं जोत मालिकों को पूर्व क्रय का अधिकार दिया जाना आदि पर विशेष बल दिया गया।

डॉ0 अम्बेडकर द्वारा आर्थिक जोतों के बारे में भी अपने विचार दिये गये। उनका मानना है कि छोटे एवं बड़े फार्म भी आर्थिक रूप से सुदृढ़ हो सकते हैं। आंकड़ों के आधार पर उन्होंने यह निष्कार्ष निकाला कि देश की वर्तमान कृषि जोतें अनार्थिक है, इस रूप में नहीं कि वे छोटी हैं बल्कि उत्पादन के साधनों के अभाव में बड़ी-बड़ी जोते भी अनार्थिक हो सकती है। उत्पादन के साधनों को दृष्टिगत रखते हुए उनका सुझाव था कि इस हेतु जोतों को बढ़ाने से कोई सुधार

नहीं होगा बल्कि पूंजीगत वस्तुओं एवं पूंजी की वृद्धि होगी। डॉ. अम्बेडकर का यह मानना था कि भारतीय सामाजिक अर्थ व्यवस्था में विषमताओं के कारण छोटी-छोटी जोतों की बुराइयां पैदा हुई है। देश की जनसंख्या का बहुत बड़ा भाग बेकार एवं बेरोजगार श्रमिक है जिनका कृषि पर बहुत बड़ा दबाव है। उन्होंने इस तथ्य का विश्लेषण किया कि कृषि क्षेत्र में पायी गई बुराईयों को किस तरह सुधारा जाय। उनका सुझाव था कि भारतीय कृषि का औद्योगीकरण करने से कृषिज्ञ समस्याओं का निदान हो सकता है।

डॉ. अम्बेडकर का राजनीतिक दर्शन मूलतः सामाजिक-आर्थिक दर्शन है। उनका कहना है कि 'बेरोजगार लोगों से पूछिये कि उनके लिए मौलिक अधिकारों की क्या उपयोगिता है। यदि किसी बेरोजगार व्यक्ति को अनिश्चित घण्टों वाले संवैधानिक नौकरी और किसी मजदूर यूनियन में शामिल होने, संगठन बनाने अथवा धार्मिक स्वतंत्रता के बीच चुनने के लिए कहा जाए तो क्या उसको चुनाव के बारे में कोई शक हो सकता है? वह दूसरी चीज कैसे चुन सकता है। भुखमरी, घर-विहीनता, दरिद्रता, बच्चों को स्कूल से दूर रखने जैसी परिस्थितियां किसी भी व्यक्ति को अपने मौलिक अधिकार को छोड़ने के लिए बाध्य कर सकती है। इस प्रकार बेरोजगार लोग काम तथा जीवन-निर्वाह के लिए मौलिक अधिकारों को तिलांजलि देने के लिए मजबूर होंगे।"

संवैधानिक विशेषज्ञ का यह मानना है कि स्वतंत्रता की सुरक्षा हेतु मौलिक अधिकार को दे देना ही पर्याप्त है। जब सरकार व्यक्तिगत, सामाजिक एवं आर्थिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं करती तो व्यक्ति की स्वतंत्रता सुरक्षित रहती है। किन्तु आवश्यकता इस बात की है कि न्यूनतम सरकारी हस्तक्षेप को कायम रखते हुए वास्तविक स्वतंत्रताओं को बढ़ाया जाए। सरकारी हस्तक्षेप के इस अभाव में जंगलराज वाला समाज ही होगा। इस संदर्भ में डॉ. अम्बेडकर यह प्रश्न उठाते हैं कि ऐसी स्वतंत्रता कैसी और किसके लिए होगी? उनका यह मानना है कि

स्पष्टतया यह स्वतंत्रता जमीदारों की लगान बढ़ाने, पूंजीपतियों को काम के घण्टे बढ़ाने और कम मजदूरी देने की छूट देने वाली होगी। इसीलिए डॉ. अम्बेडकर ने राज्य शक्ति की सृजनात्मक भूमिका पर जोर दिया। सही मायने में लोकतांत्रिक राज्य ही लोककल्याणकारी होगा । ऐसे राज्य का उपयोग जमींदारों और पूंजीपतियों जैसे निहित स्वार्थो को अनुशासित करने और उनके सामाजिक आर्थिक आधार को समाप्त करने में किया जा सकता है। उनके अधिकारों को सीमित किये बिना आम जनता को सहायता नहीं दी जा सकती है । अतः डॉ. अम्बेडकर ने कहा कि,"एक आर्थिक व्यवस्था जिसमें लाखों मजदूर उत्पादनरत हों, समय-समय पर किसी न किसी को नियम बनाने पड़ेंगे, ताकि मजदूरों को काम मिले और उद्योग चलते रहें, अन्यथा जीना असम्भव हो जायेगा। राजकीय नियंत्रण से स्वतंत्रता का अर्थ होगा, व्यक्तिगत मालिकों की तानाशाही।"

डॉ. अम्बेडकर के मस्तिष्क में राजकीय समाजवाद की रूपरेखा स्पष्ट थी। भारत के सामाजिक परिवर्तन और आर्थिक विकास के लिए वे इसे अपरिहार्य मानते थे। डॉ. अम्बेडकर द्वारा भारत में स्थापित उद्योगों की समस्याओं, मजदूरों की समस्याओं आदि का अध्ययन किया गया था और उनके द्वारा राष्ट्रीय समाजवाद की अपनी रूपरेखा भी प्रस्तावित की गई थी जिनके मुख्य अंश निम्न प्रकार हैं :-

1. राष्ट्र के सभी प्रमुख उद्योग सरकारी नियंत्रण में रखे जाएं तथा सरकार द्वारा उन्हें चलाया जाए।
2. वे उद्योग प्रमुख नहीं है किन्तु आधारभूत उद्योग हैं उन्हें भी सरकार अथवा सरकारी उपक्रमों द्वारा चलाया जाए।
3. बीमा व्यक्ति एवं श्रमिक के लिए आश्यक है। बीमा केवल सरकार के हाथ में ही रखा जाए तथा प्रत्येक व्यस्क व्यक्ति को जीवन बीमा पालिसी लेना आवश्यक घोषित किया जाए।

4. कृषि को राजकीय उद्योग की श्रेणी में घोषित किया जाए।

5. सरकार द्वारा समस्त भारी एवं प्रमुख उद्योगों, बीमा कम्पनियों एवं कृषि भूमि को उनके मालिक को मुआवजा देकर राष्ट्रीकरण किया जाए।

6. कृषि उद्योग को निम्न प्रकार चलाया जायेगा :-

I. सरकार द्वारा अधिग्रहित भूमि को उचित आकार के फार्मो में विभाजित करके ग्रामीणों में परिवार समूह को इकाई मानकर उत्पादन करने हेतु निम्न शर्तो पर आवण्टित किया जायेगा :

क. फार्म पर सामूहिक खेती होगी।

ख. फार्म पर सरकार द्वारा बनाए गये नियमों के अनुसार उत्पादन किया जायेगा।

ग. किरायेदारी (टेनेन्सी) कर आदि देने के बाद बचे उत्पाद को निर्धारित तरीके से आपस में बाँटा जायेगा।

II. भूमि सभी लोगों में जाति धर्म आदि के बगैर भेद के इस प्रकार बाँटी जायेगी न तो कोई जमींदार होगा, न किरायदार और न ही भूमिहीन मजदूर।

III. पानी, उपकरण, पशु, खाद तथा बीज आदि उपलब्ध कराना सरकार का कर्तव्य होगा

इस प्रकार स्पष्ट है कि डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तावित राष्ट्र निर्माण का आर्थिक प्रारूप राजकीय समाजवाद था। वे राज्य का सकारात्मक हस्तक्षेप सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन के लिए आवश्यक मानते थे।

बाबा साहब डॉ. अम्बेडकर का आर्थिक सुधारों में महान् योगदान रहा। देश के विकास के लिए बड़ी-बड़ी परियोजनाओं के विकास में भी उनकी अहम् भूमिका रही। इस क्षेत्र में भी उनके द्वारा दिया गया योगदान उल्लेखनीय है।

2. बहुउद्देशीय परियोजना :-

दिनांक 17 जुलाई, 1943 को दामोदर नदी के तटबन्ध में उत्पन्न दरार के फलस्वरूप आई बाढ़ के कारण गम्भीर संकट उत्पन्न हो गया था। लगातार जल रिसाव के कारण दरार चौड़ी हो गयी थी। इस प्रकार आई बाढ़ से 20 से अधिक गाँव प्रभावित हुए थे और 18000 मकान नष्ट हो गये थे। अधिकारीगण बचाव एवं राहत कार्य में जुटे हुऐ थे। बंगाल में दुख का मूल कहे जाने वाली दामोदर वस्तुतः भारत की राष्ट्रीय समस्या के रूप में उभरकर सामने आ रही थी। बंगाल के तत्कालीन गर्वनर ने महाराजाधिराज वर्दमान की अध्यक्षता में एक जांच समिति का गठन किया गया, इस जांच समिति की रिपोर्ट अविलम्ब केन्द्रीय सरकार को भेज दी गयी। सम्भवतः बंगाल एकांकी रूप से इस समस्या का समाधान कर सकने में असमर्थ था। इस समस्या के स्थायी समाधान हेतु गवर्नर एक दीर्घकालीन व्यवस्था के पक्षधर थे और उन्होंने किसी अमरीकी विशेषज्ञ द्वारा सर्वेक्षण करने का प्रस्ताव किया। संयुक्त राज्य अमरीका में तत्कालीन ब्रिटिश राजदूत लार्ड हेलीफेक्स के माध्यम से इस कार्य का शुभारम्भ किया गया। भारत में इस कार्य को सम्पन्न करने का कार्य माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर को सौंपा गया। श्री अम्बेडकर वायसराय की कार्यकारिणी समिति में श्रम सदस्य के रूप में कार्यरत थे। उनकी सहायता के लिए श्री एच.सी. प्रेयर, सी.आई.ई., आई.सी.एस., सचिव, श्रम विभाग थे।

3. दामोदर नदी पर बाँध का निर्माण :-

इस नदी का बाँध संबंधी कार्य पहले ही श्री प्रेयर के विभाग को सौंपा गया था। डॉ. अम्बेडकर ने इस महत्वपूर्ण कार्य को पूर्ण रूप से विभाग के सचिव एवं अन्य अधिकारियों पर नहीं छोड़ा। अपने स्वभाव के अनुसार वह टिनेसी घाटी परियोजना अमेरिका संबंधी पुस्तकें इकट्ठी करने तथा उनके अध्ययन में लग गये। इसके अतिरिक्त भारत में भी इस प्रकार की परियोजनाओं का अध्ययन

केन्द्रीय मंत्रीमण्डल में विधि मन्त्री तथा राष्ट्र निर्माण के कार्य में संलग्न थे। उस समय डॉ. अम्बेडकर का राष्ट्र प्रेम इन्हें किसी विदेशी व्यक्ति का योजना आयोग के अध्यक्ष के रूप में स्वीकार करने से रोकता था। वे किसी भारतीय को इसका अध्यक्ष बनाने के पक्ष में थे। उनकी दृष्टि राय बहादुर ए.एन.खोसला पर थी, जो पंजाब के एक उत्कृष्ट तथा विश्व प्रसिद्ध अभियन्ता थे। अन्य हिन्दू अधिकारियों की भाँति श्री खोसला, डॉ. अम्बेडकर के अधीन कार्य नहीं करना चाहते थे, डॉ. अम्बेडकर ने उन्हें समझाया कि वे किसी ब्रिटिश अथवा अमरीकी की अपेक्षा किसी भारतीय को इस आयोग का अध्यक्ष बनाना चाहते हैं, उनकी इस गम्भीर राष्ट्र प्रेम की भावना को देखकर श्री खोसला ने विभाग में कार्य करना स्वीकार किया।

दिल्ली, राँची, पटना एवं कटक में प्रशासक एवं अभियन्तागण इस परियोजना के सफलापूर्वक निष्पादन हेतु पूर्व निष्ठा से कार्य कर रहे थे। डॉ. अम्बेडकर ने अपनी अध्यक्षता में चार-पॉच बैठके इस संबंध में आयोजित कीं। उन्होंने इन बैठकों में भाग लेने वालों को न केवल मार्गदर्शन ही दिया, वरन् बाढ़, अकाल तथा गरीबी जैसी समस्याओं से निपटने के लिए सभी सम्भव सहायता देने के लिए आश्वासन भी दिया।

डॉ. अम्बेडकर निष्ठापूर्वक बाढ़ की समस्या के निदान के लिए प्रयास करते रहे तथा इस संदर्भ में वायसराय की समिति के सदस्य के रूप में हर सम्भव प्रयत्न करते रहे। बाढ़ के लेखकों ने उनके नाम को पूरी तरह मिटा देने का प्रयास किया तथा कोशिश की है कि लोग भारत के औद्योगीकरण में उनकी सराहनीय भूमिका को भूल जायें, जो कि उन्होंने विध्वंसक शक्तियों को सृजनात्मक शक्तियों में बदलकर किया।

5. अणुशक्ति द्वारा बाढ़ नियन्त्रण :-

डॉ. अम्बेडकर ने भारतीय अभियन्ताओं का ध्यान एक सुप्रसिद्ध अभियन्ता के उस प्रस्ताव की ओर दिलाय जो कि बम्बई से प्रकाशित एक पत्रिका में 10 सितम्बर, 1954 की शीर्षक 'एटामिक साइंस टू दी रेसक्यू' में छपा था।

6. नवीन तकनीक :-

डॉ. अम्बेडकर ने श्री सी.एन. पिल्लई से अनुरोध किया कि उन्हें नदियों की बाढ़ संबंधी स्थाई योजना का पूर्ण विवरण दें। श्री सी.एन. पिल्लई ने बताया कि परमाणु विज्ञान के विकास से इस समस्या के स्थायी निदान की आशा बलवती हो गयी है। दुख का कारण बनने वाली इस नदी को नियंत्रण किया जा सकता है, किन्तु इस प्रणाली के कार्यान्वयन को वे भलीभाँति समझ सकते हैं, जो ओम के संतप्तिकरण तथा करण्ट संबंधी नियम से परिचित हैं। आज आणविक संयंत्रों द्वारा न्यूट्रान रश्मियाँ प्राप्त करना सम्भव हो गया है। इन रश्मियों द्वारा नदी की गहराई का पता लगाकर इसके जल स्तर को नियंत्रित किया जा सकता है। इस प्रकार बाढ़ के समय जल बहाव को इस प्रकार नियंत्रित किया जा सकता है कि यह सिंचाई तथा ऊर्जा उत्पादन संबंधी हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके। आवश्यकता से अधिक जल वाष्पीकृत किया जा सकता है।

7. जल संपदा :-

उड़ीसा में प्रचुर मात्रा में प्राकृतिक संसाधन हैं। उड़ीसा के पास लौह, कोयला, क्राम, ग्रेनाइट, बाक्साइट, चूना, पत्थर, अभ्रक तथा ब्रास आदि महत्वपूर्ण प्राकृतिक संसाधन हैं। इसके अन्य अत्यन्त महत्वपूर्ण प्राकृतिक संसाधन, जो उड़ीसा के पास हैं, वह है उसकी जल संपदा। डॉ. अम्बेडकर ने उड़ीसा में निर्धनता के कारण के विषय में कहा कि यह इसलिये है क्योंकि उड़ीसा ने अपनी जल संपदा का भरपूर उपयोग नहीं किया है।

डॉ. अम्बेडकर ने सुझाव दिया कि उड़ीसा को भी अमरीका की उस योजना का अनुकरण करना चाहिए जिसके द्वारा उस राष्ट्र ने अपनी नदियों संबंधी समस्याओं का निराकरण किया है। इस योजना के अन्तर्गत नदी पर विभिन्न स्थानों पर बाँध बनाकर जल को स्थाई रूप से विशाल जलाशय में एकत्रित किया जाता है। इन जलाशयों में सिंचाई के लिए जल की प्राप्ति हो सकती है। यदि महानदी के सारे जल को एकत्रित करना सम्भव हो जाये तो इससे 30 लाख एकड़ क्षेत्र की सिंचाई की जा सकती है। जलाशयों में एकत्रित जल, उत्पादन के लिए भी किया जा सकता है।

8. आन्तरिक जल यातायात :-

भारत में आंतरिक जल यातायात का विचित्र इतिहास है। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासनकाल में सार्वजनिक निर्माण विभाग के बजट में आंतरिक जल यातायात के लिए विशेष प्राविधान किये गये थे। आज जितनी भी यातायात नहरें भारत में हैं, इसी नीति का परिणाम हैं। बाद में रेल यातायात का विकास हुआ तथा कुछ समय तक जल यातायात तथा रेल, दोनों को समान महत्ता प्रदान करने की नीति स्थापित रही। लेकिन बाद में इस बिन्दु पर विवाद उठ खड़ा हुआ। दुर्भाग्यवश रेल को प्राथमिकता प्रदान करने के पक्षधर व्यक्तियों की जीत हुई। डॉ. अम्बेडकर यातायाता नहरों की अपेक्षा रेल को प्राथमिकता दिये जाने से संतुष्ट नहीं थे।

बाबा साहब भारत राष्ट्र के सर्वोत्तमुखी विकास के लिए प्रयत्नशील रहे। देश की ज्वलन्त समस्याओं की ओर देश के कर्णधार लोगों को ध्यान दिलाया और साथ ही उन्हें हल करने के लिए उपाय भी प्रस्तुत किये। भारत की आर्थिक विकास के लिए पंचवर्षीय योजनाओं, घाटी योजनाओं और कृषि तथा बीमा के राष्ट्रीकरण में उनकी भूमिका महत्वपूर्ण रही। उनके अधिकतर शोध ग्रन्थ आर्थिक विषयों पर

थे। उनका आर्थिक सुधारों में महान योगदान रहा। विभिन्न परियोजनाओं के विकास के बारे में उनका योगदान उल्लेखनीय तथा सराहनीय रहा।

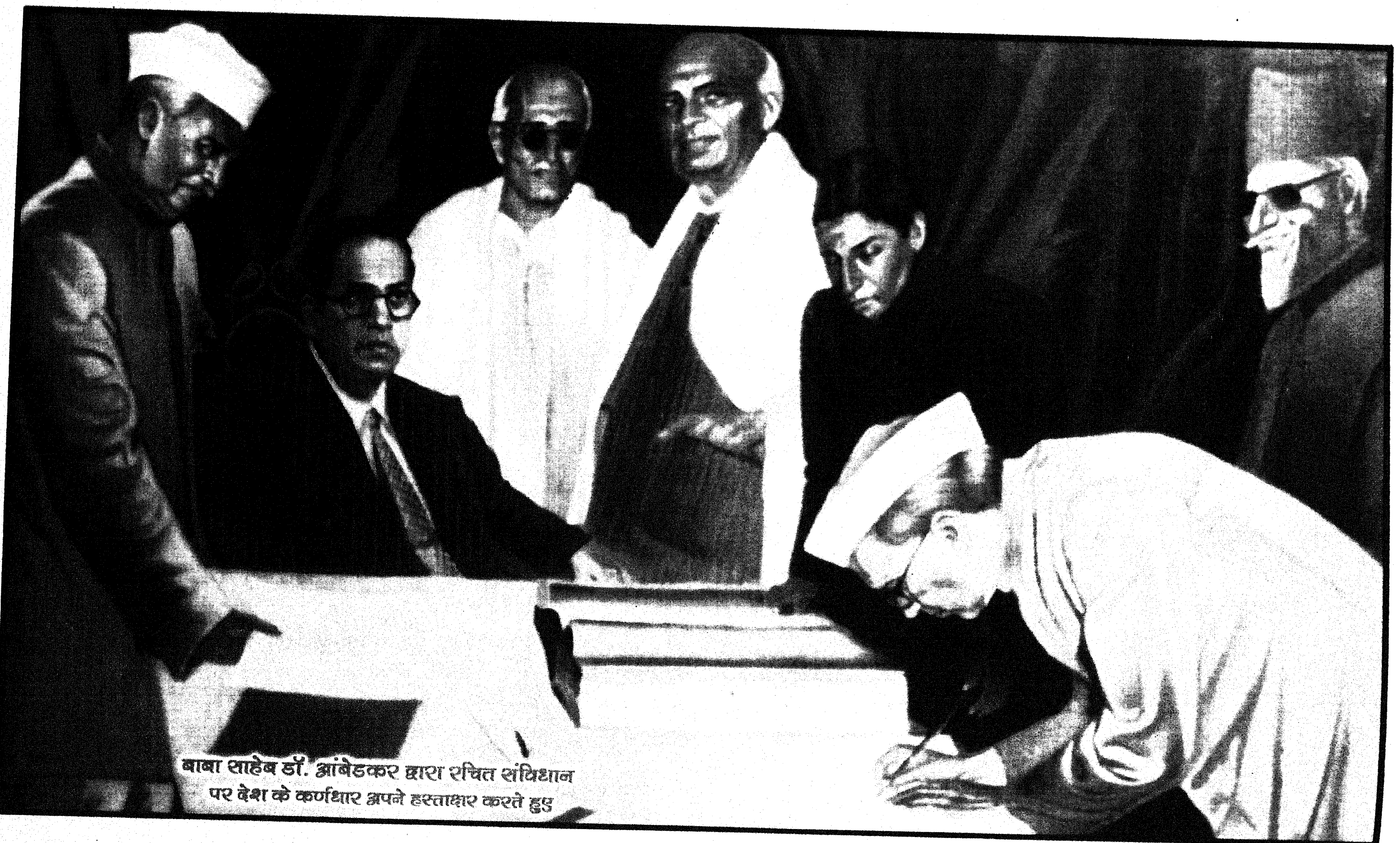
महानदी का सर्वेक्षण :-

इस गोष्ठी का मुख्य उद्देश्य था : (1) उड़ीसा की नदियों के संबंध में एक बहुउद्देशीय, एकीकृत परियोजना के उद्भव तथा उसकी आवश्यकता एवं तत्संबंधी सर्वेक्षण के विषय में विचार करना। इस प्रयास में निम्नलिखित तथ्यों की सम्मिलित किया जाना होगा। (ए) बाढ़ नियंत्रण (बी) जल यातायात (सी) सिंचाई एवं जल विकास (डी) भूमि संरक्षण एवं ऊर्जा का विकास (2) महानदी के नियंत्रण तथा विकास के संबंध में प्राथमिक सर्वेक्षण तथा संबंधित जांच पड़ताल की प्रक्रिया पर बल देने की आवश्यकता पर विचार करना। (3) केन्द्रीय जल मार्ग, सिंचाई एवं यातायात आयोग के सामान्य निर्देशों के अधीन रहते हुऐ तथा उसके सहयोग द्वारा प्रांतीय सरकार द्वारा किये गये सर्वेक्षण एवं जांच की आवश्यकता का विवेचना करना।

उपरोक्त परियोजनाओं में बाबा साहब के योगदान को नकारने की कोशिश एक विडम्बना है। हमें उनके मौलिक योगदान को मानना ही होगा।[1]



1. विमल, के. आर (1991:122) "डॉ. अम्बेडकर एवं आर्थिक नियोजन" उ.प्र. संदेश, अंक-4।



बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर द्वारा रचित संविधान
पर देश के कर्णधार अपने हस्ताक्षर करते हुए

अध्याय -6

डॉ0 अम्बेडकर के राजनैतिक विचार

प्रस्तुत शोध अध्याय में शोधार्थिनी के द्वारा डॉ. अम्बेडकर द्वारा राजनीति पर लिखी हुई पुस्तकों, दिए गये भाषणों तथा उनके ऊपर लिखी गई अन्य लेखकों के द्वारा पुस्तकों की विषय वस्तु को आधार बनाया है। डॉ. अम्बेडकर की भारतीय राजनीति पर लिखी पुस्तके मुख्य रूप से निम्नलिखित हैं-

1. फैडरेशन बनाम फ्रीडम (1936)
2. पाकिस्तान या पार्टीशन आफ पाकिस्तान (1940)
3. मि. गांधी और अछूतों की मुक्ति (1942)
4. रानाडे-गांधी एण्ड जिन्ना (1943)
5. गांधी व कांग्रेस ने अछूतों के लिए क्या किया (1945)
6. स्टेट्स एण्ड मायनोरिटिज (1947)

प्रस्तुत अध्याय में डॉ. अम्बेडकर के राजनैतिक विचार जिन राजनैतिक अवधारणाओं एवं प्रत्ययों के बारे में लिखे गये है उनमें मुख्यतः इस प्रकार हैं -

1. मानवधिकार
2. राजनैतिक दर्शन
3. राजनैतिक शक्ति
4. हीरो वरशिप के विरूद्ध
5. स्वशाषन
6. केन्द्र और राज्य संबंध
7. बहुसख्यक व अल्पसंख्यक
8. बहुसंख्यक शाषन
9. अल्प संख्यकों का अस्तित्व
10. राजनैतिक दल
11. विरोधी दल
12. निरंकुशता एण्ड सरकार
13. देशभक्त

1. मानवधिकार :

डॉ. अम्बेडकर ने दलितों के मानवधिकारों की बात गोलमेज कांफ्रेंस में जब उठाई तो हिन्दुओं में उसकी बड़ी भारी प्रतिक्रिया हुई। उस प्रक्रिया का उत्तर देते हुए उन्होंने कहा कि, "मुझे विश्वास है, कुछ समय के बाद जब प्रतिक्रिया की धूल शांत हो जायेगी और गोलमेज सम्मेलन में मेरे द्वारा कहीं बातें धैर्यपूर्वक ली जायेगी भविष्य के इतिहासकारों द्वारा, तो हिन्दुओं की भावी पीढ़ी मैरे द्वारा राष्ट्र की सेवा को सराहेगे। यदि वे मैरी सेवाओं को महत्व न देगे तो भी मैं उनकी असहमति की चिन्ता नहीं करता। मेरा सबसे बड़ा सन्तोष यह है कि दलित वर्ग ने मेरे कार्य पर विश्वास किया है और उन्होंने बिना विभाजित हुए मिशन का साथ दिया है जिसके लिए मैं उठ खड़ा हुआ था। यह मैरी सम्पूर्ण प्रतिज्ञा है कि मैं मरजाऊ उनकी सेवा में, उन पद दलित लोगों के लिए जिनके मध्य मेरा जन्म हुआ मेरी बृद्धि एवं विकास हुआ और आज में जीवन व्ययतीत कर रहा हूँ। मैं अपने कार्य की सत्यनिष्ठा से एक इंच भी इधर से उधर न हूँगा, न हिन्सा की परवाह करूंगा न अपमान की, न आलोचना की जो मेरे प्रतिद्विदिंयों द्वारा की जायेगी।"[1]

धनंजय कीर ने डॉ. अम्बेडकर के विचारों का उल्लेख करते हुए लिखा है कि-"मै भारत को अपनी जन्म भूमि कैसे कहूँ और हिन्दू धर्म मेरा अपना धर्म है। कुत्ता और बिल्ली की तरह हमारे साथ व्यवहार किया जाता है, यहां तक हमे पीने का पानी तक नहीं मिलता। यदि मै अपने प्रयासों से मानवधिकार सुरक्षित कर लूँ, अपने लोगों के लिए जो सदियों से इस देश में मोहताज बने हुए हैं। तो मैं देश की कोई भी कुसेवा कर सकता हूँ। तब वह पाप नहीं होगा और इस देश की कोई हानि नहीं होगी, मैरे प्रयासों से। मैं कब से मानवधिकार प्राप्त करने के लिए भूखों

1. राष्ट्रीय आन्दोलन में डा. अम्बेडकर की भूमिका, पृष्ठ-92

मर रहा हूँ, अपने लोगों के लिए बिना जीवन अर्थ के, और हानि पहुंचा रहा हूँ इस देश को।''[1]

धनंजय कीर, डॉ. अम्बेडकर के मानवधिकार आन्दोलन की सत्यनिष्ठा को उन्हीं के शब्दों का उद्यृत करते हुए लिखते है कि-''लेकिन मै तुम्हें बताता हूँ कि मैं अपनी इस पवित्र उत्तरदायित्व से कभी-भी विचलित नहीं हूँगा, न पृथक ही हूँगा अपने लोगों के वैधानिक स्वार्थो से चाहे तुम मुझे फांसी पर लटका देना पास के बिजली के खम्भे से जो गली में गडे होते हैं। बहतर होगा तुम (कांग्रेसी) गांधी से अनुरोध करों कि वह सप्ताह भर के उपवास को तोड़ दें और समस्या का हल ढूंढे।''[2]

डॉ. जाटव (1963): इसी प्रसंग में लिखते है कि,''तुम शायद जानते हो मैरे बारे में कि राजनीति मेरे लिए कभी खेल नहीं रहा। यह मेरा मिशन है। मै अनुसूचित जातियों की बेहतरी के लिए पूरा जीवन तथा वैयक्तित्व विकास के अवसर बलिदान कर चुका हूँ। मै तुम्हारा शुक्रगुजार हूँ कि तुमने (कांग्रेस) मुझे मंत्रमंडल में आने का निमंत्रण दिया है और में निमंत्रण को स्वीकार करने में भी चेतन्य हूँ कि इस निमंत्रण की स्वीकृति में कुछ सीमाऐं भी आयेगी लेकिन जो भी सीमाऐं होगी उन्हें स्वीकार करना पड़ेगा। मैं अपने अधिकारों का समर्पण नहीं करूँगा। अपने लोगों को सलाह दूँगा क्या सर्वोत्तम होगा उनकी खातिर उसे मैं पालन करूँगा।''

डॉ. अम्बेडकर (1979:462): में मानवधिकार के सम्बन्ध में लिखते है कि,''व्यक्ति की वृद्धि भौतिक एवं आध्यात्मिक रूप से होती है। समाज उसके लिए नवीन नींव स्थापित करती है, जैसा कि फ्रांस की क्रांति ने तीन शब्दों का निचौड़ दिया- बन्धुत्व, स्वतंत्रता तथा समानता। फ्रांस क्रांति का इन तीन नारों के लिए

1. धनंजयकीर : डॉ. अम्बेडकर : लाइफ एण्ड मिशन, पृष्ठ-133
2. धनंजयकीर : डॉ. अम्बेडकर : लाइफ एण्ड मिशन, पृष्ठ-408

स्वागत करना चाहिए क्योंकि इसका उद्देश्य समानता उत्पन्न करना है । यह समानता लाने में असफल हुई तो हम रशियन क्रांति का स्वागत करते हैं क्योंकि उसका भी समानता लाने का उद्देश्य था । पर उसमें भी जोर नहीं दिया गया कि समानता का कोई मूल्य नहीं और स्वतंत्रता का तीनों की पारस्परिक सह अस्तित्व है । यदि एक बुद्ध के मार्ग का अनुशरण करे तो साम्यवाद एक न कि सभी को समानता दे सकता है ।''[1]

डॉ. अम्बेडकर (1979:462): कहते है कि, ''एक बार अधिकार खो जाते है तो उन्हें भीख मांगने से पूर्न नहीं प्राप्त किया जाता न अनुरोध करने से, उन्हें तो संघर्ष के द्वारा ही आत्मसात किया जाता है ।''[2]

डॉ. अम्बेडकर : में लिखते है कि,''जीवन को कुछ खोदना और कौआ की तरह जीवन यापन करना हजारों वर्ष तक केवल एक और स्वतंत्र जीवन का रास्ता नहीं है दुनिया में रहने को । जीवन का बलिदान, जीवन के अन्तिम सत्य की खातिर, एक प्रतिज्ञा, सम्मान तथा देश की खातिर सर्वोत्तम है । मानवधिकार की सुरक्षा की खातिर सैकड़ों महान लोग अमर हो गये अपने आप बलिदान के कर्तव्य को निभाकर बेहतर है युवास्था में मरजाना महान लक्ष्य की प्राप्ति के लिए न कि ताड़ के वृक्ष के भांति लम्बे समय तक जीवित रहना ।''

डॉ. अम्बेडकर (1936:16): कहते है कि,''यदि स्वतंत्रता आदर्शमय है, यदि स्वतंत्रता का अर्थ क्षेत्र को खण्डित करना है जिसको एक व्यक्ति दूसरे के ऊपर किए हुए है तो स्वाभाविक रूप से उसे आर्थिक सुधार नहीं कहा जा सकता, वह तो नेक उद्देश्य से किया हुआ हो । यदि शक्ति एवं शक्ति क्षेत्र एक निश्चित समय के लिए दिया गया है । या किसी समाज में सामाजिक एवं धार्मिक रूप में तो इस प्रकार

---

1. डॉ. जाटव, डी.आर. (1963): डा. अम्बेडकर का राजनैतिक दर्शन ।
2. डॉ. अम्बेडकर (1979:462): राइटिंग्स एण्ड स्पीचेज, खण्ड-3

के सामाजिक एवं धार्मिक सुधार स्वीकार किए जाने चाहिए, अवश्यक स्वार्थो के प्रकारों के रूप में।''[1]

2. राजनैतिक दर्शन : डॉ जाटव ने अपनी पुस्तक 'द क्रटिक आफ अम्बेडकर' में उनके राजनैतिक दर्शन पर प्रकाश डालते हुए लिखते है कि-'' वर्तमान के लिए भारतीय राजनीति हिन्दुओं के पक्ष है, आध्यात्मिक होने के बजाय, पूर्णरूपेण उसका वाणिज्यीकरण हो गया है इतना अत्याधिक कि उसे भ्रष्टाचार का कहा जाय। बहुत से लोगों की संस्कृति इसके तालाब में सम्मिलित होने को उनसे अपने आपको मना करती है। राजनीति एक प्रकार से गन्दगी की व्यवस्था बन चुकी हैं जिसको न स्वच्छ किया जा सकता है न इससे बचा जा सकता है न यह सहन की जा रही है। एक राजनीतिज्ञ होने के लिए, मल निस्तारण के कार्य के समान है।''[2]

3. राजनैतिक शक्ति : राजनैतिक सम्प्रभूता के बारे में डॉ. अम्बेडकर (1940:337) में लिखा है कि-''समुदाय के जीवन में राजनैतिक सम्प्रभुता एक बहुमूल्य वस्तु है। उस समय जब यह विशेष रूप से आवह्मन को निरंतर करे और समुदाय इसके रख रखाव की चाह रखे। यदि आवह्मनों एवं चुनौतियों को पूरा किया जाय, तब राजनैतिक शक्ति केवल साधन है जिसके द्वारा स्थिति का सतत रखा जा सकता है।''[3] डॉ. अम्बेडकर (1948:123) जब हम दलित वर्गो की समस्या पर विचार करते हैं तो उनकी समस्या कभी न समाधान होगी जब तक उनके हाथों में राजनैतिक शक्ति नहीं आती (उक्त वक्तव्य गोलमेज सम्मेलन के प्रथम सत्र में उन्होंने दिया।)।''[4]

डॉ. अम्बेडकर (1979:340) इसे कहने में कोई परेशानी नहीं कि, ''किसी व्यक्ति को इतनी उटापोह दशा में नहीं रखा गया जितना कि मै तब था। वह Batter

---

1. डॉ. अम्बेडकर (1936:16): जाति का उच्छेदवाद
2. डा. अम्बेडकर (1948:337): पाकिस्तान और पार्टीशन आफ पाकिस्तान, थेकर को. बम्बई
3. भगवान दास : दस स्पोक अम्बेडकर, खण्ड-1, पृष्ठ-87
4. डा. अम्बेडकर (1948:123): पाकिस्तान और पार्टीशन आफ पाकिस्तान, थेकर को. बम्बई

परिस्थिति थी। तब मुझे दो विकल्पों में से एक का चयन करना था। वहां मेरे सम्मुख सामान्य समुदाय के हितों की रक्षा का उत्तरदायित्व था और दूसरी ओर गांधी को मृत्यु से बचाने का। मैरे सम्मुख अस्पृश्यों को इंग्लैण्ड के प्रधानमंत्री द्वारा राजनैतिक अधिकार देने का। तब मैने मानवता की आवाज सुनी और गांधी के जीवन की रक्षा की, साम्प्रदायिक परितोषक को छोड़कर, उस ढंग से जो गांधी को पसन्द था। यह समझौता 'पूना पेक्ट' के नाम से जाना जाता है।''[1]

डॉ. अम्बेडकर (1989:375) यदि अन्याय को समाप्त कर दिया तो इसका विरोध किया जायेगा। यदि अन्याय का सामूहिक शक्ति से आगे बढ़ता है, फिर चाहे सामराज्यवाद के रूप में अथवा समूह प्रभुत्व रूप में उसको शक्ति के द्वारा ही चुनौती दी जायेगी। एक वर्ग जो इसके पीछे है, उसकी स्थापित शक्ति कभी उतारी नहीं जा सकती। जब तक उसके विरुद्ध शक्ति में बृद्धि न हो की जाती। यही केवल एक मार्ग है शक्तिमान के द्वारा निर्वल के शोषण को रोकने का।''[2]

<u>4. नायक पूजा के विरुद्ध :</u> डॉ. अम्बेडकर (1989:375) ने नायक पूजा को सदैव अनुचित बताया-''नायक पूजा अभिव्यक्ति की दृष्टि से हमारी अबन्धनीय प्रशंसा एक तथ्य है। नायक का अनुशरण यौगिक रूप से पूजा करना है। प्रथम अवस्था में कुछ त्रुटिपूर्ण नहीं परन्तु दूसरी अवस्था निश्चित रूप से अपकारक तथ्य है। प्रथम अवस्था एक की मेधा को सोचने स्वतंत्र कार्य करने से दूर नहीं ले जाती परन्तु दूसरी अवस्था एक को पूर्णरूप से पद दलित कर देती है। प्रथम अवस्था से राज्य की हानि नहीं होती। दूसरी अवस्था खतरे का सकारात्मक स्रोत होती है।''[3]

'जनता' (1933) अमान्य न करे, राजनैतिक अधिकार जो तुम्हारे ऊपर नवीन विचारों के रूप में थोपे गये हैं उससे तुम्हारा पूरा वर्ग नीचे गिरा दिया गया है अब तक क्योंकि तुमने असहाय के विचार से अपने को भर लिया है। मैं यहां जोड़ूगा

---

1. डॉ. अम्बेडकर (1979:340): राइटिंग्स एण्ड स्पीचेज,
2. डॉ. अम्बेडकर (1989:375): राइटिंग्स एण्ड स्पीचेज, खण्ड-5
3. डा. अम्बेडकर (1943:59): रानाडे, गांधी, एण्ड जिन्ना, पृष्ठ-36

किस नायक पूजा के विचार ने उत्तरदायित्व को नकार दिया है तथा उत्तरदायित्व निर्वहन को भंग कर दिया है। हमारे देश की हिन्दू समाज ने अधोगति कर दी है। दूसरे शब्दों में देश, राष्ट्रीय आपदाओं में, व्यक्ति सामूहिक प्रयास राष्ट्रीय आपदाओं से रक्षा करते हैं, खतरों से और शांति एवं समवृद्धि को आत्मसात करते हैं। परन्तु हमारे धर्म ने हमारे कानों को सुन्न कर दिया है कि व्यक्ति कुछ नहीं है। वह तो असहाय लठ्ठा है। राष्ट्रीय आपदाओं के प्रगट होने पर भगवान पर विश्वास किया जाता है कि वही खतरों से बचायेगा। फल यह निकलता है कि हम एकीकृत प्रयासों द्वारा दुश्मन के विरूद्ध कार्य करने, प्रतीक्षा की जाती है कि अवतार आयेगा हमारे लिए उत्तरदायित्व निभाने।''[1]

5. स्वशाषन : डॉ. अम्बेडकर : स्वशाषन की अवधारणा की व्याख्या इन शब्दों में करते है कि-''निपुणता स्वार्थी वर्गो के स्वार्थो से जुड़ी होती है, बजाय उत्तम सरकार के निर्माण से, विशेषकर मात्र दलित वर्ग को शोषण करने के इंजन से।'' डॉ. अम्बेडकर (1947:36) कहते है कि-''भारत में बहुसंख्यक साम्प्रदाय बहुसंख्यक हो न कि राजनैतिक बहुसंख्यक यही अन्तर है। जो कल्पना इंलैण्ड में उठ खड़ी हुई थी उसे वैध कल्पना नहीं माना जा सकता, भारत की दशाओं में।''[2] डॉ. अम्बेडकर (1940:294) ने लिखा है कि-''सरकार की सत्ता की आज्ञाकारिता की इच्छा सरकार के स्थाईत्व के लिए अनिवार्य है जैसी कि राज्य के परिप्रेक्ष्य में राजनैतिक दलों की एकता। यह उसी व्यक्ति के लिए असम्भव है कि वह आज्ञाकारिता की महत्ता के बारे में प्रश्न करे, राज्य के रख रखाव के संदर्भ में। जन आज्ञाकारिता, तो अराजगता में विश्वास करना है।''[3]

डॉ. अम्बेडकर (1931:123) गोलमेज सम्मेलन के प्रथम सत्र में बोलते हुए उन्होंने कहा कि-''हमे ऐसी सरकार रखनी चाहिए जिसमें शक्ति व्यक्तियों के

1. जनता : दिनांक, 11.3.1933
2. डा. अम्बेडकर (1947:36): स्टेट्स एण्ड मायनोरटिज, पृष्ठ-36
3. डा. अम्बेडकर (1940:294): पाकिस्तान और पार्टीशन आफ पाकिस्तान, थेकर को. बम्बई

पास हो और जो देश के स्वार्थो को बिना बांटे गठजोड़ करे। हम अनुभव करते है कि हमारी मुशीवतें कोई दूर नहीं कर सकता न हम, और हम उनको दूर नहीं कर सकते जब तक हमारे हाथों में राजनैतिक शक्ति नहीं आ जाती। इस राजनैतिक सत्ता का कोई अंश प्रमाण के रूप में हमारे पास आता है जैसे कि बिट्रिश सरकार इसी दशा में बनी रहती है। यह केवल स्वराज के संविधान में यदि हमे राजनैतिक सत्ता हमारे हाथों में आये और तब तक हम अपने जनों के लिए मुक्ति भी पा सकते है।''[1]

<u>6. केन्द्र राज्य सम्बन्ध :</u> के बारे में डॉ. अम्बेडकर कहते है कि किसी भी कारण के तहत आप कोई सुझाव नहीं दे कि राष्ट्रपति कुल प्रक्रियाओं को समाप्त कर देगे जिसमें राज्य कार्य करने के उत्तरदाई है और वे एलोकेशन-1 के अनुसार प्राप्त कर सकते है। इसलिए आपको इसकी सोचे। यह बहुत त्रुटिपूर्ण होगा कि आप राष्ट्रपति के हाथ बाधें कि वह एक निश्चित ढंग से कार्य करे, उसे आप स्वतंत्रता दे कि वह अपनी राय दे कई ढंग से कार्य करने की, केन्द्र उसे वैसा करने के सुझाव दे सकते है।''[2]

डॉ. अम्बेडकर (पायली.एम.एन. 267) संविधान में लिखते है कि,''संघवाद का आधारभूत सिद्धांत यह है कि विधायका तथा कार्यपालिका की शक्तियाँ केन्द्र तथा राज्य के मध्य बटी होती है। किसी कानून अनुसार नहीं अपितु संविधान द्वारा यह सब होता है। इस प्रकार राज्य किसी तरह केन्द्र पर आधारित नहीं होते विशेषकर विधायका एवं कार्यपालिका सम्बन्धी शक्तियों के लिए। इस प्रसंग राज्य व केन्द्र बराबर होते है।''[3]

भगवान दास : डॉ. अम्बेडकर के विचारों को अपनी पुस्तक 'दस स्पोक अम्बेडकर' में उद्यृत करते हुए लिखते है कि,''तुम संविधान का परिवर्द्धन कर

---

1. डा. अम्बेडकर (1931:123): आर. टी. सी. प्रथम।
2. सी.ए.डी. : खण्ड-1, पृष्ठ-527
3. पाचली, एम.बी. : भारतीय संविधान, पृष्ठ-267

सकते हो। कोई उसके परिवर्द्धन का विरोध करने का हक तक नहीं रखता परन्तु आपको संविधान को कुछ भिन्न ढंग से, बेहतर ढंग से तथा विशेष ढंग से व्यवहार में लाना पड़ेगा। आपको जनता को बताना होगा कि उनका संविधान परिवर्द्धन का क्या उद्धेश्य है और आप उस उद्धेश्य को जान कर संविधान परिवर्द्धन कर सकते हो, अन्यथा यह अनिवार्य हो जायेगा चाहे आप 368 आर्टीकल बदलने में भी ताकि परिवर्द्धन सहज हो जाय संविधान में प्राविधान करने में।"[1]

7. अल्प संख्यकों का अस्तित्व : अल्पसंख्यकों के बजूद पर डॉ. अम्बेडकर के राजनैतिक विचार निम्नवत थे, "राजनैतिक बहुसंख्यकों में वृद्धि होती है और साम्प्रदायिक बहुसंख्यक उत्पन्न होते हैं जैसे ही राज्य के क्षेत्रफल में विस्तार होता है तो अल्पसंख्यक की बहुसंख्या के अनुपात में कमी आती है और अल्पसंख्यकों की दशा खराब हो जाती है तथा बहुसंख्यकों का निरंकुश व्यवहार के अवसर अल्पसंख्यकों के ऊपर करने में बढ़ जाते है। अस्तु राज्य इसलिए छोटा होना चाहिए।"

भगवान दास : 'दस स्पोक अम्बेडकर' में डॉ. अम्बेडकर के विचारो का उद्यृत देते हुए कहते है कि,"अल्पसंख्यक जो अन्याय से पीड़ित हो रहे है, दूसरे से सहायता नहीं पात विशेषकर अन्याय से छुटकारा पाने के उद्धेश्य से। इससे फिर एक बार क्रांतिकारी मानसिकता पनपती है जो प्रजातंत्र को खतरे में डाल देती है।"[2] भगवान दास आगे लिखते है कि,"अल्पसंख्यकों को बहुसंख्यकों के शासन को स्वीकार करने की भवदीयता होती है। जो आधारभूत रूप से साम्प्रदायिक बहुसंख्यकता न कि राजनैतिक बहुसंख्यकता। यह वहुसंख्यकों को अपने उत्तरदायित्व को महसूस करना चाहिए कि वे अल्पसंख्यकों में भेद न करे। या तो अल्पसंख्यक निरन्तर बने रहे या उन्हें निकाल दिया जाय यह

1. भगवान दास : दस स्पोक अम्बेडकर खण्ड-2, पृष्ठ-189
2. भगवान दास : दस स्पोक अम्बेडकर खण्ड-2, पृष्ठ-153

बहुसंख्यक की आदत पर निर्भर होना चाहिए । जिस क्षण बहुसंख्यक विभेदीकरण की आदत को खोती है तो अल्पसंख्यक समूह अस्तित्व में नहीं रह सकता। वह राज्य से निकल ही जायेगी।''

8. बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक : बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक पर डॉ. अम्बेडकर की राजनैतिक मान्यताऐं थी,''भारत में बहुसंख्यक (हिन्दुओं) की बहुसंख्या है। कोई मामला नहीं क्या सामाजिक तथा राजनैतिक कार्यक्रम हो या वे रखे तथा चलाये, पर उनके क्रियान्वयन में बहुसंख्यक पन दिखाई देता है । बिट्रिस की तरह कार्यपालिका अल्पसंख्यक समुदाय को सबजेक्ट नेश बनायेगी। इस प्रकार के मामलों में क्या सरकार को प्रजातंत्र कहा जायेगा। यह तो सामराज्य वाद कहा जायेगा।''[1]

डॉ. अम्बेडकर (1946:438) प्रथम गोलमेज सम्मेलन में बताया कि,''मैं उस वर्ग का हूँ और निरंकुशवाद को समाप्त करना चाहता हूँ प्रत्येक किस्म एवं प्रत्येग रूप में। हमारा उद्देश्य है कि हम एक विचार, एक व्यक्ति तथा एक मूल्य का अनुभव करे जीवन के प्रत्येक मार्ग पर सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक। क्योंकि प्रतिनिधि सरकार एक साधन है उस लक्ष्य को प्राप्त करने की जिससे दलित वर्ग उससे संबंधित है, इसलिए इसका हमारे लिए बहुमूल्य है । मै आपसे अनुरोध करूगा कि आपकी (बिट्रिश की) घोषणा में अनिवार्य रूप से इस विषय को पूर्ण करने का आश्वासन हो।'[2]' डॉ. अम्बेडकर (1943:28) में अपनी राजनैतिक मान्यताओं को अभिव्यक्त करते हुए कहते है, कि ''बहुसंख्यको के शासन को एक सिद्धांत के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता, उसे तो सहन किया जाता है एक शासन के रूप में। मैं यहां यह भी विवरण देना चाहूँगा कि सहन क्यों किया जाता है। इसके दो कारण है, (1) क्योंकि बहुसंख्यक सदा राजनैतिक

1. डॉ. अम्बेडकर : स्टेट एण्ड मायनोरिटिज, पृष्ठ-36
2. डॉ. अम्बेडकर (1946:438): आर. टी. सी. प्रोसीडिंग्स

बहुलवाद में होते हैं, (2) बहुसंख्यक के निर्णयों को स्वीकार किया जाता है और इतना उन पर अमल किया जाता है कि अल्पसंख्यक फिर उसके लिए गये निर्णय का विरोध कर नहीं पाता।''[1]

9. बहुसंख्यक शाषन : डॉ. अम्बेडकर (1942:242)में बहुसंख्यक शाषन पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि,''सबसे पहले देश के राजनैतिक संविधान व सामाजिक संस्थानों के मध्य सह-संबंधों को स्थापित करने की आवश्यकता है। यदि जनतंत्र यथार्थ में है। जैसा कि देश के सामाजिक संस्थान भिन्न-भिन्न हैं अतः संविधान के नियंत्रण तथा संतुलन के लिए आवश्यक होना चाहिए। दूसरी आवश्यकता, दलित वर्गो को एक सुदृढ व्यवस्था प्रदान करना ताकि शाषन करने वाला वहुसंख्यक उन्हें अपनी उच्च समझी जाने वाली शक्ति से उन पर दवाब न डाले जिसकी सम्भावनाऐं है।''[2]

10. राजनैतिक दल : डॉ. अम्बेडकर (1943:80) ने अपने राजनैतिक दलों के बारे में विचार अपनी पुस्तक ''रानाडे-गांधी एण्ड जिन्ना'' में प्रगट किये हैं। वे कहते है कि,''सिद्धांतिक रूप से राजनैतिक दल वे अभिकरण हैं जिनके द्वारा समाज के जनमतों का क्रियान्वयन एवं अभिव्यक्तिकरण किया जाता है। परन्तु व्यवहार में राजनैतिक दल जनमत को उत्पन्न करते है, प्रत्यक्ष रूप से जनमत को प्रभावित करते है और अक्सर जनमत पर नियंत्रण भी करते हैं। वास्तव में राजनैतिक दल के ये मुख्य कार्य होते है।''[3]

डॉ. अम्बेडकर (1943:80) आगे व्याख्या करते हुए बताते है कि-''राजनैतिक दल को दो कार्य करना चाहिए। प्रथमतः राजनैतिक दल को जनता से सम्पर्क रखना चाहिए। दल को जनता के मध्य उपागम करना चाहिए विशेषकर ....के साथ, अपने सिद्धांतों के, नीतियों, विचारों तथा उम्मीदवारों के

---

1. डॉ. अम्बेडकर (1943:28): कमुनल डेडलांक हाउ टू सोल्व इट
2. डॉ. अम्बेडकर (1942 :242): राइटिंग्स एण्ड स्पीचेज,
3. डा. अम्बेडकर (1943:80): रानाडे, गांधी, जिन्ना, थेकर को. मुम्बई।

साथ। द्वितीय स्थान पर, अपने........., प्रचार के साथ जनता के बीच में जाना चाहिए।''

11. विरोधी दल : डॉ. अम्बेडकर ने विरोधी दलों के कार्य कलापों तथा उसकी धारणा पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि,''राजनैतिक दल सरकार चलाने के लिए आवश्यक है, परन्तु देश में दो राजनैतिक दलों का होना भी अनिवार्य है ताकि वर्तमान में काम करने वाली राजनैतिक दल को संयम में रखने के लिए। प्रजासंत्रात्मक सरकार तभी तक प्रजातंत्रात्मक सरकार रहती है जो देश में दो दल होते हैं, एक दल सरकार चलाने वाला तो दूसरा दल विरोध करने वाला।''

राष्ट्रवाद : राष्ट्रवाद पर डॉ. अम्बेडकर जो राजनैतिक विचार इस प्रकार थे। उनके द्वारा पाकिस्तान अथवा पार्टीशन आफ पाकिस्तान में उल्लेख किए गये है-''राज्य होने के लिए राष्ट्र होना आवश्यक नहीं। जो राष्ट्र नहीं है वहां जीवन के अस्तित्व के लिए कम अवसर होते हैं। यह विशेष रूप से सत्य है जहां राष्ट्रवाद है, आज के समय का अत्याधिक गतिशील शक्ति है जो प्रत्येक स्थान पर अपने आपको स्वतंत्र रखने कि लिए, मिश्रित राज्यकीय व्यवस्था को असंगठित तथा बाधा पहुँचती है।'' डॉ. अम्बेडकर आगे कहते है कि,''इसमें क्या चाहिए वह केवल राजनीतिक एकता मात्र नहीं अपितु सत्य हृदय एवं आत्मा की एकता चाहिए। दूसरे शब्दों में सामाजिक एकता एवं राजनैतिक एकता न कि और कुछ। यदि राष्ट्रवाद के हेतु यथार्थ एकता की अभिव्यक्ति नहीं। यह ऐसी अनिश्चिता है। जैसी कि व्यक्तियों के मध्य होती है जो बिना मित्र बने एक दूजे के संघी हो जाते है। व्यक्तित्व के। मैं नहीं सोचता कि एकता बनाई जा सके संतोष और मात्र स्वार्थो पर निर्भर होकर।'' डॉ. अम्बेडकर कहते है कि-''दयालुता की चेतनात्मक भावना से जो एक ओर से साथ-साथ जुड़ी रहती है उनमें जिनमें यह विद्यमान होती है इतनी मजबूती से कि सभी तरह के भेद दूर हो जाते है जब भी परिस्थिति उभरती है। आर्थिक संघर्ष के कारण अथवा सामाजिक श्रेणी बद्धता से, और दूसरी तरफ उनको सेवा प्रदान

करना उनको जो उसी तरह के नहीं है। राष्ट्रवाद एक ऐसी भावना है जिसमें व्यक्ति अनुभव करता है कि मैं किसी अन्य समूह का नहीं हूँ। यह सारांश है जिसे राष्ट्रीयता और राजनैतिक भावना कहते हैं।''

राष्ट्रीय एकता : राष्ट्रीय एकता के बारे में डॉ. अम्बेडकर ने बड़ी गम्भीरता से अध्ययन कर अपने निष्कर्ष इस प्रकार लिखे है-

डॉ. अम्बेडकर (1936:26) ''व्यक्ति शारीरिक रूप से साथ रहकर समाज नहीं हो सकता, व्यक्ति से आगे कुछ बनकर ही वह समाज का सदस्य बन सकता है फिर चाहे वह अन्य लोगों से कई मील दूर ही क्यों न रहे।''[1]

डॉ. अम्बेडकर (1936:26) इसी प्रकार आदते, परम्पराऐं, विश्वास तथा विचार ही पर्याप्त है व्यक्ति का समाज का संगठन करने के लिए। वस्तुओं का भौतिक रूप ईटों की भांति एक से दूजे के पास गुजरना पड़ता है उसी प्रकार आदते, परम्पराऐं, विश्वास और विचार को एक समूह से दूसरे समूह द्वारा ग्रहण किया जाता है तब वहां इस प्रकार दो के मध्य समानता प्रगट होती है।''[2]

डॉ. अम्बेडकर (1936:77) या, यह पर्याप्त है कि मानव शास्त्रियों के विचारानुसार यहां कुछ भी नहीं हैं- विश्वास, आदतें, नैतिकगुण तथा दृष्टिकोण, जीवन के बारे में जो विश्व के विभिन्न लोगों के बीच प्राप्त किया जाता है, सिवाय इसके कि वे अक्सर भिन्न-भिन्न होते हैं। या यह आवश्यक नहीं कि प्रयास किए जाये कि नैतिकता, विश्वास, आदतें, तथा दृष्टिकोण किस प्रकार के होते हैं। जिन्होंने अच्छी तरह से करके देखा, और वे अयोग्य रहे जो उनसे गुजरे, जो उन्हें रखते थे, वे फले-फूले, वे मजबूत हुए इसी पृथ्वी पर और उस पर अधिकार जमाया, जिनकी आदतें, विश्वास, विचार, तथा नैतिकगुण समान थे।''[3]

---

1. डा. अम्बेडकर (1936:26): जाति का उच्छेदवाद,
2. डा. अम्बेडकर (1936:26): जाति का उच्छेदवाद,
3. डा. अम्बेडकर (1936:77): जाति का उच्छेदवाद,

धनंजय कीर : 'डॉ. अम्बेडकर लाइफ एण्ड मिशन' में डॉ. अम्बेडकर के सामाजिक प्रजातंत्र संबंधी विचारों का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि, "यदि हम सामाजिक जनतंत्र के सुरक्षा कवच स्थापित नहीं करते तो जनता का खून हमारे विरुद्ध चिल्ला सकता है। यदि मैरे पास भविष्य में आने वाले राज्यपालों को कोई परामर्श है तो उनको जनता की फिक्र करना चाहिए। वे आज सुरक्षा विहीन हैं लेकिन एक दिन वे शक्तिशाली हो जायेगे। जैसा कि पृथ्वी पर न्याय है। यह कोई ऐसा बैंक नहीं हैं जो सदैव इनके दुखों को मार कर रख सके। भारत की प्रगति का यथार्थ परीक्षण बीस वर्ष में होगा इसलिए "आपने इन लोगों (जनता) के लिए क्या किया ?"[1] धनंजय कीर आगे डॉ. अम्बेडकर को उद्यृत करते हुए अपनी पुस्तक में लिखते है कि, "हमें अपनी राजनैतिक जनतंत्र को सामाजिक जनतंत्र भी बनाना है। राजनैतिक जनतंत्र भंग नहीं हो सकता यदि उसके आधार में सामाजिक जनतंत्र होता है। सामाजिक जनतंत्र क्या करता है? यह एक जीवन शैली है जो स्वतंत्रता, समानता तथा बन्धुत्व की पहिचान करती है एक सिद्धांत के रूप में थे, स्वतंत्रता, समानता तथा बन्धुत्व के तृतीयक रूप सिद्धांत पृथक नहीं है। ये तो तृतीयक संघ का निर्माण करते हैं इस ध्येय में कि एक को दूसरे से त्याग/पृथक नहीं किया जा सकता, नहीं तो जनतंत्र का उद्देश्य ही समाप्त हो जायेगा। स्वतंत्रता समानता से पृथक, समानता से स्वतंत्रता पृथक और न स्वतंत्रता से समानता पृथक हो सकती है। इसी प्रकार बन्धुत्व से पृथक हो सकती है। बिना बन्धुत्व के स्वतंत्रता तथा समानता प्राकृतिक रूप से पृथक हो सकती है। बाबा साहब डॉ. अम्बेडकर कहते है कि, "राजनैतिक जनतंत्र वहां सफल नहीं हो सकता जहां सामाजिक एवं आर्थिक जनतंत्र न हो।"[2]

---

1. धनंजयकीर : डॉ. अम्बेडकर : लाइफ एण्ड मिशन, पृष्ठ-157
2. धनंजयकीर : डॉ. अम्बेडकर : लाइफ एण्ड मिशन, पृष्ठ-412

भाषाई राज्य : भाषाई राज्यों पर अपने विचार व्यक्त करते हुए डॉ. अम्बेडकर कहते हैं कि, "भाषाई राज्य का अभिप्राय है जिसकी सामाजिक रचना, उसकी जनसंख्या की एक समान हो इसलिए अधिक अनुकूल होता है अपने सामाजिक लक्ष्यों को प्राप्त करने में, जिसे एक जनतंत्रात्मक सरकार को करना चाहिए। इस दृष्टि से एक भाषाई राज्य के पास कुछ करने को नहीं होता अपनी भाषा के साथ। संविधान को चाहिए कि वह अपने प्रत्येक प्रान्त को एक भाषा दे जो वही हो जो केन्द्र की सरकारी भाषा होती है।"[1] डॉ. अम्बेडकर आगे लिखते है कि, "भाषाई राज्य जनतंत्र के लिए बहतर कार्य करेगा तुलनात्मक मिश्रित भाषाई राज्य के। ये राज्य जिसमें एक भाषा बोली जाती है आपस में अधिक मधुरता उनमें पाई जाती है। उनमें कोई मद पूर्ण करने में बाधाऐं नहीं आती और न समाज विरोधी उनमें कार्यवाही होती है, परन्तु वे राजनैतिक शक्ति का दुरूपयोग करते है।"[2] भाषाई राज्य पर उन्होंने अलग से एक पुस्तक की रचना की। उसमें उन्होंने विस्तार से भाषाई राज्य पर प्रकाश डाला है-"एक भाषा व्यक्तियों को एकता के सूत्र में बांधती है। राज्य में दो भाषाऐं निश्चित रूप से लोगों दो भागों में बांटती है। यह सारभौमिक कानून है। भाषा के द्वारा संस्कृति धारण होती है। जब से भारतीयों को एक होना है और समान संस्कृति का विकास करना है तो यह वाध्य कर्तव्य है, सभी भारतीयों का तो उन्हें हिन्दी को भाषा के रूप में ग्रहण करना चाहिए।"एक भारतीय के रूप में, जो इस प्रस्ताव को अनिवार्य रूप से भाषाई राज्य स्वीकार नहीं करते, उन्हें भारतीय होने का कोई अधिकार नहीं। फिर चाहे वह शत-प्रतिशत रूप से महाराष्ट्रीयन हो या शत-प्रतिशत तामिल या गुजराती। लेकिन वह वास्तविक अर्थों में भारतीय नहीं हो सकता, सिवाय भूगोल की दृष्टि से। यदि मेरा भारत यह प्रस्ताव स्वीकार नहीं करता तो भारत टूट जायेगा। और

---

1. डॉ. अम्बेडकर : भाषाई राज्यों पर आयोग के सम्मुख विवरण, पृष्ठ-6
2. डॉ. अम्बेडकर : भाषाई राज्यों पर आयोग के सम्मुख विवरण, पृष्ठ-3

अनेक राष्ट्रीयताओं मात्र ढेर रह जायेगा और पारस्परिक दुश्मनी में फस जायेगा एक-दूसरी की में।''[1]

धनंजय कीर डॉ. अम्बेडकर के भाषाई राज्य संबंधी विचारों को उद्यृत करते हुए लिखा है कि-''भाषाई राज्य उत्पादन करते है जो जनतंत्र की आवश्यकता होती है जिसे हम सामाजिक समानता कहते हैं। जो जनतंत्र के कार्यो का बेहतर ढंग से करने देती है, अन्य की तुलना में। इससे भाषाई राज्य बनाने का खतरा उत्पन्न नहीं होता क्योंकि हां बोलने व सरकारी कार्य करने की भाषा एक जो होती है।''[2]

राष्ट्रीय भाषा : राष्ट्रीय भाषा पर डॉ. अम्बेडकर की एक आलोचनात्मक अध्ययन के अनुसार,''आपको भारत एकीकृत करना पड़ेगा। इसके लिए आपको हिन्दी सीखनी पड़ेगी। यदि भाषा देव नगरी लिपि है तब हम दूसरी भाषाओं को भी प्यार करेगे। जब देश का बटवारा हुआ था मैने महसूस किया कि भगवान अपना श्राप उठाने के लिए तैयार हो जायेगा और भारतीय एक हो जायेगे। लेकिन मैं डरता हूँ। कि श्राप हमारे ऊपर फिर न गिर जाय। मै पाता हूँ कि जो भाषाई राज्य की वकालत कर रहे थे वे चाहते है कि उनकी क्षेत्रीय भाषा का प्रांतीय भाषा बना दिया जाय।''[3]

डॉ. अम्बेडकर (1948:146) यह तो, भारत को एकीकृत करने के विचार की घुटने के मूल्य के समान है। क्षेत्रीय भाषा का कार्यालय की भाषा बनाना। यह विचार निश्चित रूप से भारत को विखंडित करने का है। तब भारतीय प्रथम व भारतीय अन्त तक का विचार का देश निकाला ही हो जायेगा। मैं इसमें कुछ अधिक नहीं कर सकता मात्र सुझाव दे सकता हूँ कि हम भारतीय बने रहे इस पर विचार हो।''[4] डॉ. अम्बेडकर 'पायनियर आफ हमन राइटस' के अनुसार-''एक

---

1. डॉ. अम्बेडकर (1948:146): राइटिंग्स एण्ड स्पीचेज, खण्ड-1
2. धनंजयकीर : डॉ. अम्बेडकर : लाइफ एण्ड मिशन, पृष्ठ-406
3. डॉ. अम्बेडकर : एक आलोचनात्मक अध्ययन, पृष्ठ-231
4. डॉ. अम्बेडकर (1948:146): राइटिंग्स एण्ड स्वीचेज, खण्ड-1

भाषाई राज्य, क्षेत्रीय भाषा के साथ, वह भी उसकी कार्यालय भाषा, निश्चित रूप से सरलता पूर्वक स्वतंत्र राष्ट्रीयता का विकास करती है। तब स्वतंत्र राष्ट्रीयता तथा अस्वतंत्र राष्ट्रीयता की सड़क और तंग हो जायेगी। यदि ऐसा होता है तो भारत आधुनिक भारत में बंट जायेगा। तब हम सभी मध्य कालीन भारतवासी हो जायेगे। जिसमें अनेक राज्य होगे और साथ में होगी दुशमनाई और कल्याण भी। क्षेत्रीय भाषा को कार्यालय की भाषा राज्य की नहीं होना चाहिए। राज्य की कार्यालय की भाषा हिन्दी हो, अन्त में भी हिन्दी हो जो पूर्ण रूपेण अनुकूल है। अंग्रेजी को भी क्या भारतीय स्वीकार करेगे? यदि वे भाषाई राज्य न होगे तो खतरे में पड़ जायेगे। प्रांतीय भाषा का प्रयोग कार्यालय की भाषा के रूप में प्रांतीय संस्कृति की ओर ले जायेगा जो पृथकीकरण के समान है, और छोटे-छोटे कठोर टुकड़ों में एकीकृत हो जायेगा भारत।''[1]

शिक्षा : शिक्षा की आवश्यकता पर बोलते हुए डॉ. अम्बेडकर ने कहा, ''शिक्षा को प्रत्येक की पहुंच के भीतर आना चाहिए क्योंकि वह सबकुछ होती है। नीति इसलिए उच्च शिक्षा की बनानी चाहिए वह भी कम कीमती, ताकि उसे निम्न वर्गो तक सुलभ बनाया जा सके । यदि सभी समुदायों को एकता के स्तर पर लाया गया जब एक ही उपचार है कि समानता के सिद्धांत को ग्रहण किया जा सकता है और उनको अनुकूल उपचार मिल सकता है जो सामान्य स्तर से नीचे है।''[2]

डॉ. अम्बेडकर बताते हैं कि, ''मै अध्यापन व्यवसाय का बड़ा शौकीन हूँ। मै विद्याथियों का भी बहुत शौकीन हूँ। मै उनके साथ व्यवहार कर चुका हूँ। मैने उनको भाषण दिए हैं। मै उससे बात करके प्रसन्न होता हूँ। इस देश का सबसे बड़ा भाग्य देश के विद्यार्थियों के ऊपर निर्भर करता है। मात्र समुदाय के मैघावी अंग होते है और वे जनमत का निर्माण कर सकते है।''[3] शिक्षा की महत्ता पर

---

1. डॉ. अम्बेडकर : पायनीयर आफ ह्यमन राइट्स, पृष्ठ-38
2. डा. जाटव, डी.आर. (1967): पोलिटिकल फिलोसोफी आफ डा.अम्बेडकर, पृष्ठ-86
3. डिवेट आफ बाम्बे लेजिसलेटिव काउंसिल-खण्ड-1

प्रकाश डालते हुए डॉ. अम्बेडकर कहते है कि,"शिक्षा एक तलवार होती है यदि इसके दोनों किनारे शस्त्र बनकर खतरा पैदा कर देते है। इसलिए एक शिक्षित व्यक्ति बिना चरित्र और मानवता के अधिक खतरनाक होता है बजाय अनपढ़ के।"[1]

धनंजय कीर ने डॉ. अम्बेडकर के शिक्षा संबंधी विचारों को अपनी पुस्तक में उद्यृत करते हुए लिखा है कि,"यदि तुम भारत की निम्न प्रस्थिति समाज को शिक्षा दोगे जो जाति व्यवस्था को चलाये जा रही है तो जाति व्यवस्था समाप्त हो जायेगी एक क्षण बिना भेद के शिक्षा को सहायता दी जायेगी भारतीय सरकार के द्वारा और अमेरीका जाति व्यवस्था के आधार को सशक्त बना रहा है तो भारत में प्रजातंत्र के विकास के द्वार खुलेगे और प्रजातंत्र सुरक्षित हाथों में आयेगा।"[2]

डॉ. अम्बेडकर (1982) पिछड़े वर्ग को महसूस करना चाहिए कि सबकी शिक्षा के बाद भौतिक रूप से बहुत बड़ा लाभ होगा, जिससे वे संघर्ष कर सकते हैं। हमे भौतिक सभ्यता के लाभों को छोड़ देना चाहिए परन्तु हमे उच्च शिक्षा प्राप्त करने के अधिकार व अवसरों को नहीं छोड़ना चाहिए उच्च स्तरीय शिक्षा प्राप्त करने के। पिछड़े लोगों के संदर्भ में यह एक बहुत महत्वपूर्ण प्रश्न है जो अभी हाल ही में महसूस करते है कि शिक्षा के अभाव में उनका अस्तित्व सुरक्षित नहीं है।"[3]

डॉ. अम्बेडकर (1982:62) आगे कहते है कि,"श्रीमान मै कहना चाहता हूँ कि भारत की तीन चौथाई जनसंख्या शिक्षा सेच्युत है अज्ञानता में है और वह अपने अधिकार तथा उत्तरदायित्व नहीं जानती जो पिछड़े वर्ग है जिन्होंने अभी महसूस किया है कि बिना शिक्षा के उनका अस्तित्व सुरक्षित नहीं है।"[4]

1. डॉ. अम्बेडकर (1948: 47): राइटिंग्स एण्ड स्पीचेज, खण्ड-1
2. धनंजयकीर : डॉ. अम्बेडकर : लाइफ एण्ड मिशन, पृष्ठ-491
3. डॉ. अम्बेडकर (1982:62): राइटिंग्स एण्ड स्पीचेज, खण्ड-2
4. डॉ. अम्बेडकर (1982:52): राइटिंग्स एण्ड स्पीचेज, खण्ड-2

हमारी सरकार की यह शर्म की बात है उनका स्वचलन की कोई आशा नहीं, यदि हम स्वशाषन प्राप्त करते है। यहां धन का शाषन गरीबी के विरोध में, यही यथार्थ है, क्या होना चाहिए। मै श्रीमान इसलिए कहता हूँ कि यदि हम प्रांतीय स्वशाषन चाहते हैं तो आधुनिक शिक्षा तक प्रत्येक की पहुंच होनी चाहिए उन समुदायों के जो शैक्षिक रूप से पिछड़े है ताकि वे अपने अधिकारों, उत्तरदायित्वों तथा नागरिकता को महसूस कर सके और इन समुदायों तक प्रत्येक पहुंच होनी चाहिए। वर्तमान परिस्थितियों में इनके लिए यह पूर्णरूपेण अनिवार्य है और इन्हें विशेष प्रतिनिधित्व प्रदान करना चाहिए।''

लोक सेवा आयोग : डॉ. अम्बेडकर के लोक सेवा आयोग के सम्बन्ध में जो थे उनका उल्लेख निम्न पक्तियों में किया जाता है,''हमे केवल लोक सेवा आयोग के विरुद्ध सुरक्षा नहीं करनी है जोकि स्थानीय सरकारों द्वारा रोजगारों के बारे में प्रभावित किया है। हमे लोक सेवा आयोग को भी सुरक्षित रखना है जो अपनी शक्तियों को ही गाली दे रहा है। लोक सेवा आयोग को अपने कार्मिकों को सीमित रखना चाहिए। लोग सेवा आयोग का अपने कार्मिको को सीमित रखना चाहिए। लोक सेवा आयोग का अपने कार्मिकों में भारत की समस्त समुदायों के प्रतिनिधियों का रखना चाहिए और वे मानवीय स्वभाव का व्यवहार करे। लोक सेवा आयोग अपनी शक्तियों को ही गाली न दे। विधायका परिषद को अधिकार है कि वह नियम बनाये ताकि लोक सेवा आयोग में विश्वास करे।''[1]

प्रशाषन : प्रशाषन के संबंध में डॉ. अम्बेडकर के विचारों को श्री भगवान दास उद्यृत करते हुए लिखा है कि,''यदि अधिशासी प्राविधीकरण असहानुभूतिक है। नीति को कितने कल्याणमय होने पर उससे उसे (प्रशाषन) को पृथक नहीं होना चाहिए। यहां मुझे अपना विचार जोड़ने दो, जहां तक मैरा अनुभव है कि प्रशाषन की सम्पूर्ण संरचना जो हिन्दू कहे जाने वाले लोगों के द्वारा निर्मित हुआ है,

1. डॉ. अम्बेडकर पायनियरस आफ ह्यमन राइटस, पृष्ठ - 126

अनूसूचित जातियों के लिए असहानूभूतिक जिसके कारण वे दुख उठाते हैं। यह इसलिए कि प्रशाषन का असहानुभूतिक चरित्र है एवं आचरण है। और हम जब संवाओं में आरक्षण मांगने के लिए चिल्लाते है तो वह (प्रशासन) सुनता नहीं। हम क्या प्रयास कर रहे है? दूसरे लोगों की साम्प्रदायिकता कम करने के लिए। जब तक प्रशाषन और अधिशाषी सहानुभूतिक अधिक नहीं होगे अनुसूचित जातियों के प्रति तब तक तुम्हारा कोई कानून न तुम्हारा कोई प्रशाषनिक नीतियों से कोई लाभ नहीं निकलेगा।''[1]

वैदेसिक नीति : भगवान दास ने डॉ. अम्बेडकर के वैदेशिक नीति सम्बन्धी राजनैतिक विचारों का अपनी पुस्तक में इन शब्दों में उल्लेख किया है, ''सिद्धांत बिना किसी सन्देह के बहुत मूल्यवान होते हैं। परन्तु मै मानता हूँ कि राजनीतिज्ञ सिद्धांतों को पसंद नहीं करते। विशेषकर वे राजनीतिज्ञ जो वैदोशिक नीति का क्रियान्वयन करते हैं। वे वस्तुओं काम चलाऊ रूप में ढील करना पसंद करते हैं बिना सिद्धांतों पर अमल किए।''[2] डॉ. अम्बेडकर के विचारों पर आगे प्रकाश डालते हुए भगवान बताते है कि, ''इस ओर चायना को लासा पर अधिकार जमाने की स्वीकृत देना, इससे प्रधानमंत्री ने भारतीय सीमा के पास सीमा बनाने हेतु सहायता ही की। इन सभी मदों पर देखना है कि मुझे प्रतीत होता है कि यह एक Livity ....का कार्य है, भारत पर विश्वास न करना। यदि यह आक्रमण करने को प्रेरित नहीं करता है चढ़ाई को प्रेरित करना, हो सकता है, उन लोगों के लिए जो सदैव दूसरे देशों पर चढ़ाई करने के आदती होते है।''[3] वे डॉ. अम्बेडकर के विचारों को आगे उद्यृत करते हुए लिखते है कि, ''प्रत्येक देश की वैदेशिक नीति भूगोलिक कारकों के कारण भिन्न होनी चाहिए विशेषकर उन कारकों के जो डील के समय महत्व रखते है। कनाड़ा के लिए क्या उत्तम है वह हमारे लिए उत्तम

1. भगवान दास : दस स्पोक अम्बेडकर, खण्ड -2, पृष्ठ-81
2. भगवान दास : दस स्पोक अम्बेडकर, पृष्ठ-83
3. भगवान दास : दस स्पोक अम्बेडकर, पृष्ठ-93

नहीं हो सकता। इंग्लैण्ड के लिए जो उत्तम है वह हमारे लिए उत्तम नहीं हैं।''[1] डॉ. अम्बेडकर के विचारों से आगे अवगत कराते हुए भगवान दास लिखते है कि,''हम शांति चाहते हैं, कोई युद्ध नहीं चाहता। अब केवल एक ही प्रश्न है, इस शांति की क्या कीमत होगी और किस दर से यह शांति खरीद रहे हैं। शांति को अन्य देशों को भुलाकर तथा विभाजित करके देश की सीमा का रख रखाव करना पड़ता है।''[2] 15 अगस्त 1947 को प्रत्येक देश हमारा मित्र होगा लेकिन आज हमने किसी मित्र को नहीं छोड़ा क्योंकि हमने वुद्धिमान विस्मार्क के विचारों का अनुशरण नहीं किया जिसने कहा था कि राजनीति कोई खेल नहीं है, आदर्शो को महसूस करने का, राजनीति क्या सम्भव है का खेल है।''[3]

सुरक्षा : देश की सुरक्षा के बारे में डा. अम्बेडकर की निम्न राजनैतिक मान्यताऐं थी। डा. अम्बेडकर (1931:379) किसी देश की स्वतंत्रता की सर्वाधिक गारंटी है सुरक्षित सेना, कोई सेना जिस पर तुम विश्वास कर सको कि वह देश के लिए लड़ेगी हमेशा और प्रत्येक परिस्थिति में स्वतः ही।''[4]

डॉ. अम्बेडकर (1940:366) सरकार के साथ जिसका भारत में नवीन राजनैतिक संरचना है। भारत की सुरक्षा भारत के लोगों के संबंध में उसी सीमा तक बढ़नी चाहिए न कि इंग्लैण्ड सरकार की भांति। भारत के भविष्य की सुरक्षा सभी भारतीयों को ध्यान में रखना चाहिए न कि किसी समुदाय विशेष के लिए।''[5]

धनंजय कीर : डा. अम्बेडकर के देश सुरक्षा के सम्बंध में विचारों का उद्घृण करते हुए बताते है कि,''यदि मेरा भय सच होता है और कमीशन ने जो सीमा रेखा बनाई है, यदि वह प्राकृतिक नहीं, वह मांग करती है कि यह कहना उत्पादक नहीं होगा कि इसके रख रखाव की कीमत भारत सरकार को बड़ी महंगी पड़ेगी

1. भगवान दास : दस स्पोक अम्बेडकर, पृष्ठ-89
2. भगवान दास : दस स्पोक अम्बेडकर, पृष्ठ-87
3. भगवान दास : दस स्पोक अम्बेडकर, पृष्ठ-73
4. धनंजयकीर :डॉ. अम्बेडकर लाइफ एण्ड मिशन, पृष्ठ-395
5. डा. अम्बेडकर (1945:185): पाकिस्तान और पार्टीशन आफ पाकिस्तान, थेकर को. बम्बई

और यह सुरक्षित रखेगी भारत के लोगों को संकट के समय। मै आशा करता हूँ, इसलिए चाहे विलम्ब क्यों न हो जाए, सुरक्षा विभाग स्वयं में उत्तम है और अपना कर्तव्य का निर्वाह करेगा, बिना अधिक विलम्ब किए।''[1]

निरंकुशता और सरकार :

डॉ. अम्बेडकर (1943:74) ने निरंकुशता और सरकार की अवधारणा पर अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है कि,''निरंकुशता, निरंकुशता करने से समाप्त नहीं होती क्योंकि यह निर्वाचित होती है। वह स्वीकारनी न होती है क्योंकि उसके धब्बे हमारे ही उधान में फलते-फूलते है। इनको निर्वाचन का विषय बनाने के लिए, निरंकुशता के विरूद्ध कोई गांरटी नहीं। निरंकुशता से छुटकारे की वास्तविक गारंटी इसको सभी सम्भव प्रयत्नों से उखाड़ फैकने का पंगा विरोधी दल द्वारा जब लिया जाता है तभी वह यह समाप्त होती है।''[2] वे आगे कहते है कि,''निरंकुशता स्वतंत्रता के सिद्धांत के विरूद्ध होती है फिर चाहे निरंकुशत स्वदेशी हो या विदेशी।''[3]

देश भक्ति : डॉ. अम्बेडकर (1931:438): ने गोलमेज कांफ्रेंस में देशभक्त के प्रत्यय पर अपने विचार इन शब्दों में व्यक्त किए थे, ''देशभक्त, एक अपने लिए तथा अपने वर्ग के लिए अधिक चिल्लाता है। मै प्रसन्नचित्त हूँ क्योंकि मैं उस वर्ग का देशभक्त नहीं हूँ। मैं उस वर्ग का समर्थक हूँ जो प्रजातंत्र के आधार पर खड़ा है और जो भीड़तंत्र को विध्वंस करना चाहता है, प्रत्येक रूप एवं प्रकार में। हमारा उद्देश्य है कि हम एक व्यक्ति एक मूल्य का मानव जीवन के राजनैतिक, आर्थिक तथा सामाजिक क्षेत्र में आचरण करने में महसूस करे।''[4]

1. डॉ. अम्बेडकर (1931:379): गोलमेज कांफ्रेंस
2. डॉ. अम्बेडकर (1943:74): ''रनाडे, गांधी एण्ड जिन्ना''
3. डॉ. अम्बेडकर (1943:75): ''रनाडे, गांधी एण्ड जिन्ना''
4. आर. टी.सी. (1931:438): प्रक्रियाऐं, लन्दन

भगवान दास : 'दस स्पोक अम्बेडकर' पुस्तक में राष्ट्रवाद पर डॉ. अम्बेडकर के विचारों पर प्रकाश डालते हुए कहते है कि, "एक भारतीय के रूप में, भारतीय राष्ट्रवाद की वृद्धि में अभिरूचि लेता हूँ। में एकात्मक सरकार का पुरजोर विश्वासी हूँ और जो भी इस विचार को भंग करना चाहता है, मैं स्वीकार करता हूँ, वह मुझे प्रसन्न करने का अधिक प्रयत्न न करें क्योंकि एकात्मक सरकार अधिक शक्तिशाली, प्रभावी होती है भारत राष्ट्र को निर्मित करने मैं।"[1]

डॉ. अम्बेडकर (1940:134): बिना सामाजिक एकता के राजनैतिक एकत्र को प्राप्त नहीं किया जा सकता। यह उसी तरह अनिश्चित है जैसे उष्मा में पौधे को अंकुश लगाना। जिसे कभी भी एक विपरीत वायु का झौका धराशाही कर सकता है, भारत एक राज्य हो सकता है लेकिन एक राष्ट्र नहीं। और जो राष्ट्र ही नहीं है उसके अस्तित्व के लघु उज्जवल भविष्य होते हैं, जो पाकिस्तान के विरूद्ध है वे केवल अपने मन में यह विचार न रखे। अपितु उन्हें यह भी महसूस करना चाहिए कि यह प्रयास राष्ट्रीयता को कुचलने का अंग है, एक मिश्रित राज्य बनाने और उनके स्वयं के लिए, पृथक घर को प्राप्त करना, बजाय एक रहने के। यह तो आत्म निर्धारण के सिद्धांत से परम्परागत न्याय आत्मसात करना है।"[2]

डॉ. अम्बेडकर (1940:21): आगे बताते है कि, "यहां दो मुद्दे हैं, जहां व्यक्ति अपनी राष्ट्रीयता के प्रति जागरूक हैं लेकिन यह जागृति उनके लिए उत्पन्न नहीं करती उस धैर्य को जिसे राष्ट्रवाद कहते हैं। वहां तो राष्ट्रवाद के साथ, बिना बदले, उनमें राष्ट्रचेतना हो सकती है।"[3] डॉ. अम्बेडकर (1936:26): राष्ट्रीयता की भावना उनमें विद्यमान हो सकती पर राष्ट्रवाद की भावना का लोप हो सकता है। कहने का अभिप्राय यह है कि दोनों ही मुद्दों में राष्ट्रवाद उत्पन्न होता है।"[4]

---

1. भगवान दास : दस स्पोक अम्बेडकर, भाग-1, पृष्ठ-16
2. डा. अम्बेडकर (1940:20): पार्टीशन आफ पाकिस्तान, थेकर एण्ड को. बम्बई
3. डा. अम्बेडकर (1940:21): पार्टीशन आफ पाकिस्तान, थेकर एण्ड को. बम्बई
4. डॉ. अम्बेडकर (1936:26): जाति का उच्छेद वाद, थेकर एण्ड को. बम्बई

डॉ. अम्बेडकर (1936:26): इसी प्रकार आदतों में, परम्पराओं में, विश्वासों में विचारों में पर्याप्त नहीं कि समाज में ये सब मनुष्य को बना दें। वस्तुऐं ईटों की भांति भौतिक रूप से एक दूजे से गुजर जाती हैं। उसी भाति आदतें नैतिक विचार और जीवन के दृष्टिकोण, एक समूह से दूसरे समूह में और वह इस प्रकार दो के बीच एकता उत्पन्न हो जाती है।"[1]

निर्वाचन : निर्वाचन के सम्बन्ध में भगवान दास अम्बेडकर के विचारों पर प्रकाश डालते हुए लिखते है कि, "निर्वाचन पूर्णरूपेण स्वतंत्र एवं ईमानदारी से होना चाहिए। लोग स्वयं में महसूस करे अपने प्रतिनिधियों के चयन में जिन्हें वे विधान पालिका या लोक सभा में भेजना चाहते है।"[2]

भगवान दास आगे लिखते कि डॉ. अम्बेडकर चाहते थे कि," स्वतंत्र और ईमानदारपूर्ण निर्वाचन एक समुदाय से दूसरे समुदाय में शक्ति के हस्तानंतरण के लिए आवश्यक है वह भी शांतिपूर्ण तथा बिना रक्तपात के।"[3]

डॉ. अम्बेडकर (पृष्ठ-34): में जाति के निर्वाचन पर पड़ने वाले प्रभाव बताते हुए लिखते हैं-

1. वोट डालना सदैव साम्प्रदायिक होता है।
2. साम्प्रदायिक बहुसंख्यकता के कारण लोग अधिक सीटें जीत जाते हैं।
3. अल्पसंख्यक समुदाय को वोट डालने के लिए बाध्य किया जाता है बहुसंख्यक समुदाय के लोगों को।
4. अल्पसंख्यकों के वोट भी कम होते हैं।
5. वृहत समुदास अल्पसंख्यक उम्मीदवार को कभी अपनों सा नहीं कहते।
6. अल्पसंख्यक वोटर बहुसंख्यक उम्मीदवार को वोट देने में गर्व अनुभव करता है।

---

1. डॉ. अम्बेडकर (1936:26): जाति का उच्छेद वाद, थेकर एण्ड को. बम्बई
2. भगवान दास : दस स्पोक अम्बेडकर खण्ड-1, पृष्ठ-55
3. भगवान दास : दस स्पोक अम्बेडकर खण्ड-1, पृष्ठ-54

प्रजातंत्र : डॉ. अम्बेडकर (1951): डी.ए.बी. कालेज जालंधर सिटी में भाषण देते हुए उन्होंने प्रजातंत्र की अवधारणा पर प्रकाश इन शब्दों पर डाला, "जनतंत्र मांग करता है कि केवल सरकार को उसे दीर्घ कालीन शक्ति प्राप्त होनी चाहिए अथवा पांच वर्ष हेतु शक्ति चाहिए, व्यक्तियों के हाथों में परन्तु उसे पार्लियामेन्ट में तुरन्त शक्तियां चाहिए, ताकि जनता के प्रतिनिधि भी अपने अधिकारों के लिए उसको (सरकार) चुनौती दे सके।"[1] डॉ. अम्बेडकर (1955:3) प्रजातंत्र के कार्यों पर प्रकाश डालते हुए बताते है कि, "प्रजातंत्र को बेहतर अवसर प्रदान कर सामाजित राजनैतिक तथा आर्थिक असमानता को दलित वर्गो से दूर करना चाहिए तथा प्रत्येक जन को सम्भवतः कि वह आवश्यकता पूर्ति तथा भय से हीन होकर आनन्दित हो।"[2] डॉ. अम्बेडकर (1955:3): में लिखते है कि प्रजातंत्रात्मक देशों द्वारा कल्याणकारी उपचारों को ग्रहण करना चाहिए, उनके यानी सरकार की शक्तियों पर अंकुश लगाकर, ताकि वे मनचाहा न कर सके और अपना दल न बनाले। उसे चाहिए कि व्यक्ति को अधिक शक्तियां प्रदान की जाय ताकि सरकार उसके ऊपर शक्ति न करे विशेषकर आर्थिक क्षेत्रों में।"[3] डॉ. अम्बेडकर आगे लिखते है कि, "यह केवल स्वराज के संविधान में आप अपने-अपने हाथों में शक्तियां पा सकते हो तब तक तुम अपने लोगों को मुक्ति नहीं ला सकते। अतीत से Observe ......तुम मत होना, न भय से भयभीत होना, अपनी निर्णय की प्रक्रिया में, आपका किसमें भला हो उस पर ध्यान दें। मुझे विश्वास है कि तुम अपने लक्ष्यों की प्राप्ति में स्वराज को स्वीकार करोंगे।"[4] डॉ. अम्बेडकर कहते है कि, "स्वतंत्रता, प्रत्येक जन के जीवन में अधिकारों को बनाये रखती है।"[5]

---

1. डॉ. अम्बेडकर (1915): भाषणः डी.ए.बी. कालेज, जालंधर, दिनांकः 28.10.51
2. डॉ. अम्बेडकर (1955:3): स्टेट्स एण्ड मायनोरिटीज
3. डॉ. अम्बेडकर (1955:3): स्टेट्स एण्ड मायनोरिटीज
4. डॉ. अम्बेडकर (1955:3): स्टेट्स एण्ड मायनोरिटीज
5. डॉ. अम्बेडकर (1955:3): स्टेट्स एण्ड मायनोरिटीज

डॉ. अम्बेडकर (1940:361): पार्टीशन आफ पाकिस्तान में लिखते है कि,"मैं भारतीय को उनकी मूर्खता पूर्ण आदत के प्रति चेतावनी देता हूँ कि इस देश में स्वराज के प्रश्न पर विचार विमर्श ज्यों होता है बिना सेना के प्रश्न पर विचार किए। कोई अन्य अधिक जानलेवा न होगा जितना कि राजनैतिक सेना हमारे भारत की स्वतंत्रता अधिक नुकसानदायक होगी।"[1]

कानून की भूमिका :'कानून की भूमिका' पर डा. अम्बेडकर के विचार 'सिलेवरी एण्ड अनटचेविलिटी' नामक निबंध में इस प्रकार अभिव्यक्त किए गये है कि,"कानून और जनमत शक्तियां है जो मनुष्य के आचरण को शाषित करते हैं। जो एक-दूजे पर क्रिया तथा प्रतिक्रिया करते हैं। एक समय कानून जनतम आगे चला जाता है और उस पर नियंत्रण करता और पुनः माध्यमों में निदर्शित होता है जिससे सही सोच बनती है। एक समय जनमत, कानून से आगे चला जाता है। तब यह कानून की त्रुटि को सुधारता है तथा उसे सहनीय बनाता है। यहां दो केशेज है जिसमें कानून तथा जनमत आपस में विरोध करते हैं। और जनमत शक्तिमान होने पर कानून क्या प्राविधान करता है को नहीं मान्यता देता।"[2]

डॉ. अम्बेडकर : बुद्ध एण्ड फ्यूचर आफ हिज रिलीजन में लिखते है कि,"समाज को कानून की स्वीकृति या नैतिकता की स्वीकृति रखनी चाहिए, दोनों को साथ-साथ रखने के लिए। इनके बिना समाज विखण्डित हो जाता है।"[3] डॉ. अम्बेडकर लिखते है कि,"आन्तरिक उपद्रव से अपने आपकी रक्षा करने के लिए "कानून की व्यवस्था" बनाये रखे, आंतरिक उपद्रव से, और जनता को कम से कम प्रशाषन के स्तर का तथा कल्याण की गारंटी दे, जो आज आधुनिक राज्य से आशा की जाती है।"[4] डॉ. अम्बेडकर (19955:9): बताते है कि,"कानून के

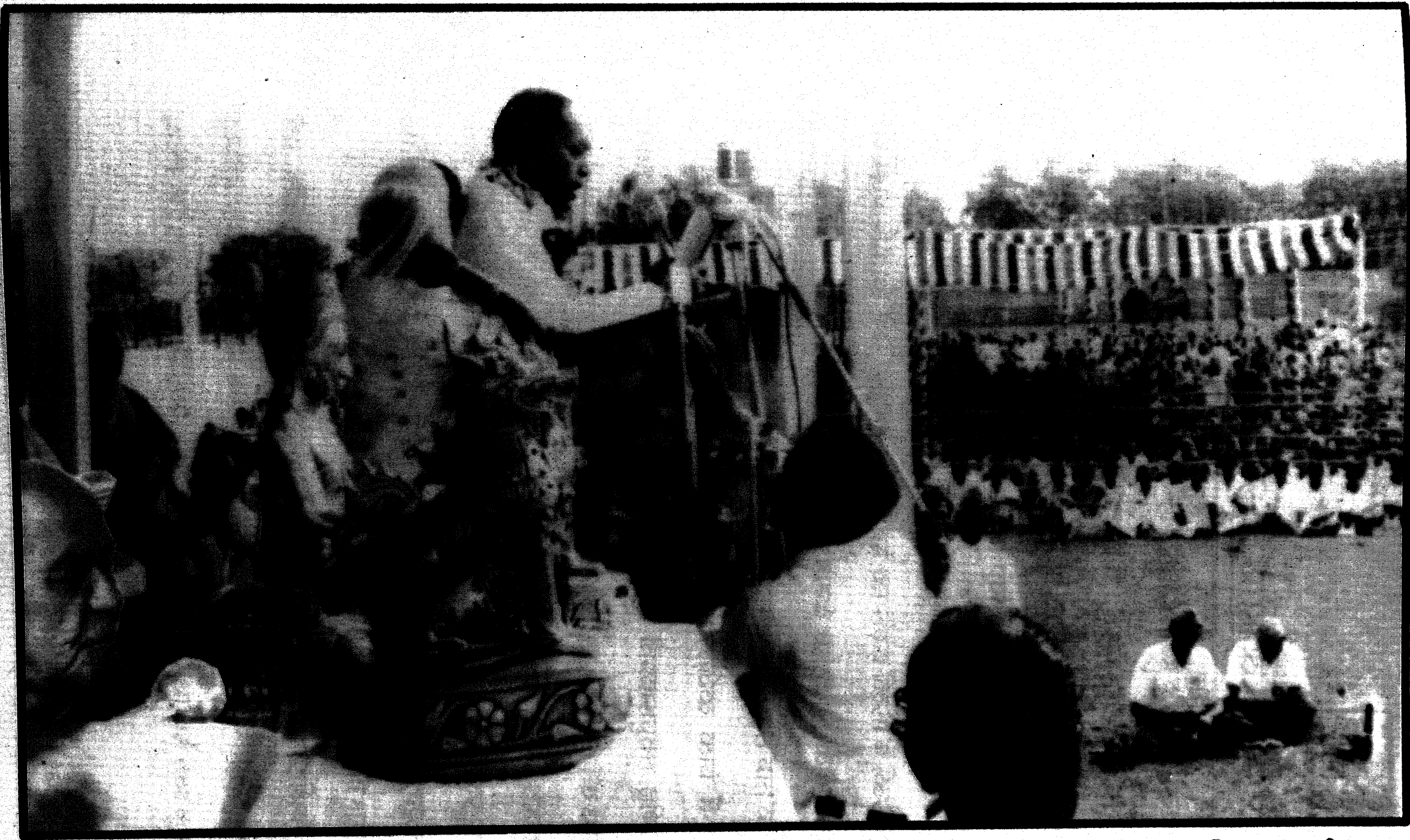
1. डॉ. अम्बेडकर (1940:361): पाकिस्तान या पार्टीशन आफ पाकिस्तान
2. डॉ. अम्बेडकर : सिलेवरी एण्ड अनटचेविलटी
3. डॉ. अम्बेडकर : बुद्ध एण्ड फ्यूचर आफ हिज रिलीजन।
4. डॉ. अम्बेडकर (1955:9): स्टेट्स एण्ड मायनोरिटीज

सम्मुख सभी नागरिक समान है और समान नागरिक अधिकार रखते है। कोई भी वर्तमान में उपलब्ध विधि निर्माण, नियम, आदेश, परम्परा या कानून का विवेचन जिसके द्वारा कोई दण्ड, हानि या अपंगुता किसी पर थोपी जाती है या कोई भेद किया जाता है तो उसको कुप्रभावित करता है।''[1]

सामाजिक प्रजातंत्र : डॉ. अम्बेडकर (1945:34) ''जनतंत्रात्मक प्ररूप की सरकार से पूर्व में ही उम्मीद की जाती है कि वह जनतंत्रात्मक समाज का निर्माण करे। जनतंत्र का औपचारिक स्वरूप मूल्यहीन और यथार्थ में प्रतिकूल होता है और फिर वहां सामाजिक लोकतंत्र नहीं होता। राजनीतिज्ञ कभी महसूस नहीं करते कि प्रजातंत्र एक केवल सरकार का रूप है। यह तो जनतंत्रात्मक समाज की रचना के लिए अनिवार्य है।''[2] इसलिए वे कहते है कि,''राजनैतिक सुधारों की तुलना में जनतंत्र के लिए सामाजिक सुधार आधारभूत हैं।''[3] डॉ. अम्बेडकर (1948:34) में लिखते है कि,''यथार्थ में, सामाजिक संरचना का अत्याधिक प्रभाव राजनैतिक जनतंत्र का।''[4] डॉ. अम्बेडकर (1951:325): में व्याख्या करते हुए लिखते है कि,''एक समाज जो एक समूह की सर्वोच्चता पर निर्भर करती है, दूसरे की तुलना में और उसी अनुपात में हक जमाती है वह संघर्ष की ओर अग्रसारित होती है।''[5]



1. डॉ. अम्बेडकर (1955:9): स्टेट्स एण्ड मायनोरिटीज
2. डॉ. अम्बेडकर (1945:34): ''रनाडे, गांधी एण्ड जिन्ना''
3. डॉ. अम्बेडकर (1945:34): ''रनाडे, गांधी एण्ड जिन्ना''
4. डॉ. अम्बेडकर (1948:34): थाट्स ओन लिंगिस्टिक स्टेट्स।
5. डॉ. अम्बेडकर (1951:325): भगवान बुद्ध और उनका धर्म।



अशोक विजयादशमी 1956 को संसार की सबसे महान धम्मदीक्षा के इतिहास को साकार करते बोधिसत्व बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर

अध्याय -7

डॉ0 अम्बेडकर के धार्मिक विचार

धर्म का समाजशास्त्र बृहत्तर विज्ञान समाजशास्त्र की एक शाखा है जो कि सामाजिक संदर्भ में धर्म का अध्ययन करता है। समाजशास्त्र की इस शाखा का विकास बीसवी शताब्दी के प्रारम्भ में हुआ था। इससे संबंधित विचार यूरोपियन विद्धनों के मस्तिक की उपज थी, जिसका पूर्ण विकास अमेरिकन पर्यावरण में हुआ है। परन्तु इस विकास के दौरान में मूल विचारो में अनेक परिवर्तन व परिवर्द्धन होते रहे हैं।''[1] स्मरण रहे कि धर्म का संबंध किसी न किसी प्रकार की अलौकिक शक्ति के कार्य-कलापों का था उसके चमत्कारों का अध्ययन नहीं है अपितु धर्म एक सामाजिक जीवन में उसका क्या स्थान है? इस बात का वैज्ञानिक अध्ययन करना ही धर्म के समाजशास्त्र का वास्तविक कार्य है। धर्म का समाजशास्त्र के प्रति हमारे कुसंस्कार या अन्ध विश्वासयुक्त दृष्टिकोण को वैज्ञानिक आधारों पर प्रतिष्ठित करने का प्रयास करता है जिससे कि धर्म के संबंध में कुछ वास्तविक ज्ञान प्राप्त हो सके और उस ज्ञान का प्रयोग समाज के लोग अपने सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति या समस्याओं के हल करने में कर सकें। उक्त मापदण्डों के आधार पर डॉ. अम्बेडकर ने धर्म के समाजशास्त्र के चिन्तन की नीव रखी। धर्म को मानव समाज के लिए अनिवार्य मानते थे। परन्तु ''जो धर्म मनुष्यों में भेद करता हो, जो करोड़ों धर्माम्वालियों को कुत्ते तथा अपराधियों की तरह दुर्व्यवहार करता हो तथा असहनीय अयोग्यताएं उन पर थोपता हो उसे वह धर्म नहीं मानते थे। धर्म कभो-भी अन्याय व्यवस्था नहीं करता तथा धर्म तथा गुलामी कभी

---

1. चेस्टर.एल हन्ट (1960:539):'सोशियोलोजी आफ रिलीजन' इन कन्टेम्परेरी सोशियोलोजी, ऐडीटेडे वाई जे.एस.रोकी पीटर ओविन लिमिटेड, लंदन

साथ-साथ नहीं चलते।"[1] यदि तुम कहो कि तुम्हारा धर्म है तो हमारे अधिकार और हम समान हो। पर क्या मामला ऐसा है? यदि नहीं, तो किस आधार पर तुम कहते हो कि हम हिन्दू बने रहे, बावजूद इसके कि तुम्हें ठोकरे मारी जाये" ऐसा डॉ0 अम्बेकडकर दलितों से कहते थे।"[2]........मै तुम्हें बताता हूँ, धर्म आदमी के लिए है न कि आदमी धर्म के लिए। यदि तुम इस विश्व में संगठित रहना चाहते हो, बने रहना चाहते हो तथा सफल होना चाहते हो तो हिन्दू धर्म बदल दो। धर्म, जो तुम्हें मानव के रूप में पहिचान नहीं करता, जो पीने का पानी नहीं देता, मंदिर में घुसने नहीं देता, वह धर्म नहीं सजा है। जो धर्म तुम्हें शिक्षित होने से रोकता है और तो भौतिक विकास, करने से रोकता है, वह किसी भी लायक नहीं।"[3]......जो धर्म अपने अनुयायिओं पर मानवता का व्यवहार करने अपने सधर्मियों के साथ नहीं पहुँचता तो वह धर्म नहीं शक्ति का प्रदर्शन है, जो धर्म अपने अनुकरण कर्ताओं को दुखी करता है, पशुओं को स्पर्स तथा मनुष्य को अस्पृश्य बताता है वह धर्म नहीं मानव उपहास है। जो धर्म कुछ वर्गो को शिक्षा, धन उपार्जन का निषेध, रक्षा कवच न रखने को आज्ञा देता है, जो धर्म अज्ञान को अज्ञान रहने को बाध्य करता है और गरीब को और गरीब, वह धर्म नहीं वह तो मात्र दिखावा है।"[4] हिन्दू धर्म के प्रसंग में डॉ. अम्बेडकर ने देखा तथा अनुभव किया तो उन्होंने हिन्दू धर्म को परिवर्तन करने का मन बना लिया।

1. **मैने अपना धर्म बदलने का मन बना लिया है :** अभी हमने यह तय नहीं किया है कि हम कौन सा धर्म अपनायेगे, उन उपायों पर भी विचार नहीं किया है, जो हम ग्रहण करेगे, परन्तु जो बात हम भली-भांति तय कर चुके हैं, वह यह है कि हिन्दू हमारे लिए हितकारी नहीं है।" यह बक्तव्य डॉ. अम्बेडकर ने ऐसोसियेटेड प्रेस के प्रतिनिधि द्वारा उनके नासिक

1. धनंजय कीर (1962): लाइफ एण्ड मिशन, पृष्ठ-209
2. धनंजय कीर (1962): लाइफ एण्ड मिशन, पृष्ठ-210
3. धनंजय कीर (1962): लाइफ एण्ड मिशन, पृष्ठ-211
4. धनंजय कीर (1962): लाइफ एण्ड मिशन, पृष्ठ-212

भाषण पर गांधी जी की टिप्पणी बताये जाने पर दिया। 'असमानता', उन्होंने कहा, "इसका प्रमुख आधार है और इसका नीतिशास्त्र ऐसा है कि दलित वर्गों को उनकी समग्र मानवता कभी नहीं प्राप्त हो सकती। किसी को यह नहीं सोचना चाहिए कि मैने झुझलाहट में या दलित वर्गों के साथ कविठो या अन्य किसी स्थान पर हुए अत्याचार के विरूद्ध शेष में यह किया। यह बहुत गहराई से सोचा हुआ निर्णय है। मै गांधी जी की इस बात से सहमत हूँ कि धर्म आवश्यक है, परन्तु इस बात से सहमत नहीं हूँ कि आदमी यह जानने के बाद भी उस पैतृक धर्म को अपनाये रहे कि वह उसके उन धार्मिक विश्वासों के सर्वथा विरूद्ध है, जिनकी उसे अपने निजी आचार-विचार के निर्धारण के लिए आवश्यकता है और जो उसकी प्रगति तथा कल्याण का प्रेरणाश्रोत है।"[1]

2. **धर्मान्तरण में हरिजनों के अधिकार प्रभावित नहीं :** "डॉ. अम्बेडकर ने धोषणा की, कि पूना समझौते के अर्न्तगत दलित वर्गों को जो राजनैतिक सुविधाएं प्राप्त हुई हैं, वे उनके द्वारा हिन्दू धर्म छोड़ने की स्थिति में समस्त नहीं होगी। उनका मानना है कि उन्हें तथा उनकी पार्टी को चुनाव लड़ने से भयभीत करने के लिए यह कांग्रेसियों का राजनीतिक हथकण्डा है।"

3. **धर्मान्तरण की आवश्यकता :** "हमारी सभा विशेष रूप से बम्बई महा प्रान्तीय महार सम्मेलन द्वारा पारित किए गये धर्मान्तरण संबंधित प्रस्तावों का आप लोगो को स्मरण कराने के उद्देश्य से आयोजित की गई है। अतः यदि किसी को धर्मान्तरण विषय में कोई सन्देह है तो निश्चित रूप से उसे पूछ लेना चाहिए।" जब कोई भी प्रश्न पूछने नहीं आया तो डॉ. अम्बेडकर ने अपना भाषण जारी किया। उन्होंने कहा,

1. द बाम्बे क्रांनिकल, दिनांक 16 अक्टूबर, 1935

"प्यारे भाइयों और बहिनों, मै इस सभा में भाग लेने वाला नहीं था। परन्तु मुझे मालूम हुआ कि कुछ लोग ऐसे है, जो प्राचीन परम्पराओं से चिपके है और धर्मान्तरण संबंधी उस प्रस्ताव को पूरी तरह कार्यान्वित नहीं करते है जो महार सम्मेलन में पारित हुआ था। इसलिए मैं ऐसे लोगों की शंकाऐं दूर करने के लिए यहां आया हूँ। मै बहुत पहले इस विषय पर अनेक बार अपने विचार व्यक्त कर चुका हूँ। अतः वास्तव में आपकों अपने दिमागों में कोई भी शंका नहीं रखनी चाहिए। 1935 में जो बम्बई महाप्रान्तीय महार सम्मेलन आयोजित हुआ था वह महार समुदाय के इतिहास में स्वर्ण अच्छरों में लिखे जाने योग्य है। इसलिए उस सम्मेलन द्वारा पारित किए गये प्रस्तावों का वस्तुतः सम्पूर्ण महार समुदाय को पालन करना होगा और महार समुदाय के सदस्यों को बहुमत से उन प्रस्तावों को कार्यान्वित करना होगा।" डॉ. अम्बेडकर ने कहा, "हमें उन सभी धार्मिक त्यौहारों और दिवसों को मानना छोड़ देना चाहिए जिन्हें हिन्दू धर्म के अनुसार मनाते आये है।" उन्होंने अपने भाषण के अन्त में कहा कि, "कुछ लोगों की यह राय है कि धर्मान्तरण की लहर अब शान्त हो गई है। किन्तु ऐसा नहीं है, धर्मान्तरण अवश्य किया जाता है। यह अच्छी तरह समझते कि इस आन्दोलन को समाप्त नहीं किया है। बहुत से हिन्दू मुझसे कहते है कि आपके धर्मान्तरण आन्दोलन से परिणाम स्वरूप हमारी आंखे खुल गई हैं। अब हम इतने जागरूक हो गये है कि आपके प्रति अपने कर्तव्य में अब असफल नहीं होगें इसलिए आप अपने धर्मान्तरण आन्दोलन को वापिस ले लो। परन्तु मै उन्हीं कारणों से इस आन्दोलन को वापिस लेने के लिए तैयार नहीं हूँ जिन्हें मैं अब बता चुका हूँ अच्छी तरह से सोचो, जो नया धर्म ग्रहण करना है, वह केवल सूक्ष्म परीक्षण के बाद ही ग्रहण किया जाना चाहिए। मुझे आशा है कि इसके

बाद महार समुदाय के सभी सदस्य उस पद्धति से कार्य करेंगे जो महार सम्मेलन में तय किया गया था।''[1]

4. **अनुसूचित जातियाँ हिन्दू धर्म छोड़ दें :** यह डॉ. अम्बेडकर की दृढ़ धारणा थी जिसको (दि फ्री प्रेस जर्नल, दिनाँक 1फरवरी, 1944) में प्रकाशित किया।

<u>हिन्दू धर्म दुखों का मूल :-</u>

डॉ. अम्बेडकर ने लोगों से दो हजार वर्षो के लम्बे समय से उनके दुखों के कारण पर विचार करने को कहा। उन्होंने जोर देकर कहा कि इसका मुख्य कारण हिन्दू धर्म है। दुनिया के तमाम धर्मो में सिर्फ हिन्दू धर्म ही है, जो जाति, भेद और अस्पृश्यता को मानता है। सवर्ण हिन्दुओं द्वारा अनुसूचित जातियों पर होने वाले सम्पूर्ण अन्यायों का यही एक आधार है। उन्होंने दुख के साथ कहा कि आज भी स्थिति यह है कि गाँवों में वे आत्मसम्मान के साथ जी नहीं सकते

इसलिए उन्होंने अपना दृढ़ मत दुहराया कि उन्हें धर्म छोड़ देना चाहिए तथा लम्बे समय तक अपमान का जीवन जीने से इन्कार कर देना चाहिए।

उन्हें जिस चीज से सर्वाधिक आक्रान्त है, वह यह है कि उनका समुदाय अभी भी अपनमान की स्थिति को स्वीकार किये हुए है, और ऐसा इसलिऐ है, क्योंकि सवर्ण हिन्दुओं ने उनको इतना अधिक दबाया है कि उनका आत्मसम्मान समाप्त हो गया है। उन्होंने लोगों से अपनी निजी शक्ति पर भरोशा करने और उस धारणा पीछा छुड़ाने का आह्वन किया जो दूसरे समुदाय से किसी भी प्रकार से उन्हें हीन बनाये हुए हैं।

5. **अम्बेड़कर बौद्धधर्म ग्रहण करेंगे :** हरिजनों से भी अनुसरण करने की अपील (बारह धर्मदीक्षाएं आज दिल्ली मेंद्व 'भारत'द्व दिनाँक 3 मईद्व 1950) हमारे विशेष प्रतिनिधि द्वारा -

1. मांग पत्र (1938): औरियंटल ट्रान्सलेशन कार्यालय, सचिवालय बम्बई।

आजरात राजधानी में सम्पूर्ण दक्षिण-पूर्व एशिया में विशाल राष्ट्रीय महत्व और हित की प्रभावशाली घटना उस समय घटित हुईद्व जब भारत के विधिमंत्री डॉ. बी.आर. अम्बेडकर ने भगवान बुद्ध की त्रिपक्षीय समारोह में विशाल सभा में बोलते हुए छः करोड़ हरिजनों से बौद्ध धर्म ग्रहण करने का आह्वान किया।

बाद में, डॉ. अम्बेडकर ने 'भारत' के प्रतिनिधि को बताया कि वह बौद्ध धर्म अपनाने वाले है, सभी में श्रीमती अम्बेडकर भी उपस्थित थीं।

यह भी अधिकृत रूप से पता चला हैं कि लगभग 15 हरिजन कल दिल्ली में बौद्ध धर्म ग्रहण करेंगे। ज्ञात हुआ है कि ऐसे ही निर्देश सम्पूर्ण भारत में डॉ. अम्बेडकर के अनुयायियों को भेजे गये हैं।

कल वास्तव में भगवान बुद्ध के जन्म, निर्वाण और मृत्यु का दिवस था। डॉ. अम्बेडकर ने कल सीनीय बिहल में जाकर भगबान बुद्ध के प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त की।

प्रधान बौद्ध भिक्षु के अनुसारद्व डॉ. अम्बेडकर ने प्रार्थना कीद्व 'बुद्धम् शरणंम् गच्छामिद्व धम्मम् शरणम् गच्छामिद्व संघम् शरणंम् गच्छामिद्व। 'उन्होंने बौद्ध धर्म के पाँच सिद्धांतों (पंचशील) को भी स्वीकार किया और सामायन्तः सभी की व्याख्या की।

बौद्ध पुनर्जागरण

एक प्रतिष्ठित बौद्ध भिक्षु नेद्व जो उस समय उपस्थित थेद्व जब डॉ. अम्बेडकर अपना भाषण दे रहे थेद्व कहा कि भारत ने अब स्वतंत्रता प्राप्त कर ली हैद्व अतः बौद्ध धर्म को अपनी भूमि पर आना चाहिए। भारत में साम्भव्य बौद्ध पुनर्जागरण के राजनैतिक महत्व पर बल देते हुए उन्होंने घोषणा की कि भारत को अपनी स्वतंत्रता और आध्यत्मिक शक्ति की रक्षा के लिऐ बौद्ध धर्म की आवश्यकता हैं।

डॉ. अम्बेडकर ने, शुद्ध हिन्दी में अपने तीस मिनट के भाषण में, दावे के साथ कहा कि भारत में बौद्ध पुर्नजागरण एक बार हो चुका है। उन्होंने इस दावे

का समर्थन यह बताकर किया कि गणतंत्र के राष्ट्रपति के पास स्वतंत्र भारत के राष्ट्रीय ध्वज में अशोक चक्र बौद्ध धर्म से ही पहुँचा है, 'ब्राह्मम धर्म' से कुछ भी प्राप्त नहीं किया है। बौद्ध धर्म पुनः गणराज्य के सामने तीन शेरों के प्रतीक के रूप में आया और जब गणराज्य के प्रथम राष्ट्रपति को शपथ दिलायी गयी तो उस ऐतिहासिक अवसर पर किसी हिन्दू देवी-देवता की प्रतिमा को नहीं, बल्कि बुद्ध को प्रतिष्ठित किया गया था।

उन्होंने कहा कि वास्तव में भगवान बुद्ध से कोई ईश्वर मेल नहीं खाता, न राम और कृष्ण। डॉ. अम्बेडकर ने घोषणा की कि उनसे बड़ा ऋषि और नायक कोई पैदा नहीं होगा।

डॉ. अम्बेडकर ने रामायण और महाभारत से कुछ दृष्टान्त प्रस्तुत किये और रामचन्द्र तथा भगवान कृष्ण की महानता पर प्रश्नचिन्ह लगाया "जिन पर महानता थोपी गयी है।' उन्होंने कहा, हिन्दू धर्म ने सत्य का दोहरा सिद्धांत प्रस्तुत किया और उस धर्मान्धिता को प्रस्तुत किया, जिसने विवादों को टालने और अपनी अखण्ड प्रधानता को कायम रखने का प्रयास किया। उन्होंने ब्राह्मणों पर राजा के अधिकार को छोड़कर, जो संयोग से हिन्दू शास्त्रानुसार नरकगामी होता है। समस्त अधिकारों को धारण करने का आरोप लगाया। उन्होंने पूछा, कैसे यह धर्म इन करोड़ों लोगों को प्रिय हो सकता है जिन पर निरन्तर दण्डाज्ञा की गई है। उन्होंने घोषणा की कि समय आ गया है, जब धर्म को पिता के पुत्र को प्राप्त वस्तुओं और चल सम्पत्ति की तरह वंशानुगत नहीं होना चाहिए, अपितु निजी स्वीकृति से पूर्व प्रत्येक व्यक्ति प्रत्येक व्यक्ति द्वारा बौद्धिक रूप से जांचा-परखा जाना चाहिए'।

डॉ. अम्बेडकर ने स्पष्ट किया कि समाजवादियों और कयुनिस्टों की तरह इस बात में विश्वास नहीं करते कि धर्म अनावश्यक है। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा, "मैं मानता हूँ कि धर्म मानव जाति के लिए आवश्यक है। जब धर्म का अन्त होगा तो

समाज भी नष्ट हो जायेगा। कोई भी सरकार मानव जाति को उतना सुरक्षित और अनुशासित नहीं रख सकती, जितना 'नीति' अथवा धर्म रख सकता है।''

बौद्ध धर्म अभी भी भारत की प्राण शक्ति है

डॉ. बी. आर. अम्बेडकर का विचार

(भारत दिनांक 7 जून, 1950

कोलम्बो, 6 जून।

भारत के विधिमंत्री डॉ. बी.आर. अम्बेडकर ने कल यहां उन सभी बातों को अस्वीकार कर दिया, जिन्होंने भारत में बौद्ध धर्म को लुप्त किया था।

उन्होंने दावे के साथ कहा,''यह आम विश्वास है कि इस देश (भारत) में बौद्धधर्म लुप्त हो गया है। यह बताया जाता है कि बौद्धधर्म अपने भौतिक रूप में लुप्त हुआ है। मैं मानता हूँ किन्तु, भावात्मक शक्ति के रूप में, यह अभी मौजूद है।''

डॉ. अम्बेडकर यहां 'भारत में बौद्धधर्म का उत्थान और पतन' विषय पर 'तरूण बौद्ध सभा' को सम्बोधित कर रहे थे। उन्होंने कहा कि अधिकांश लोग, जिन्होंने भारत में बौद्धधर्म का अध्ययन किया है, यह मानेंगे कि यह विषय समुचित रूप से और पूर्णरूप से वैसा नहीं है, जैसा कि समझा जाता है। उन्होंने कहा, ''भारत में बौद्धधर्म का उत्थान और पतन कैसे हुआ, इस विषय पर मैं कोई भी प्रामाणिक सामग्री प्राप्त करने में समर्थ नहीं हुआ हूँ।''

डॉ. अम्बेडकर ने कहा कि जो लोग भारत में बौद्धधर्म के पुनरुद्धार की बात करते हैं, उनके द्वारा दृढ़तापूर्वक यह प्रश्न किया जाता है कि ''यदि बौद्धधर्म में कुछ भी सच्चाई है, तो वह भारत में लुप्त क्यों हुआ?''

उन्होंने कहा, कि वह इस विषय में एक जिज्ञासु के रूप में, भारत में बौद्धधर्म के उदय और पतन के प्रमुख कारणों के विषय में जानकारी एकत्र कर रहे है।

डॉ. अम्बेडकर का मत है कि बौद्धधर्म के महत्व को तब तक नहीं समझा जायगा, जब तक कि उसको जन्म देने वाली वास्तविक परिस्थितियों को नहीं समझा जायगा। वह उन अधिकांश लोगों से असहमत हैं, जिनका विचार यह है कि भारत का धर्म निरन्तर हिन्दू धर्म रहा है। उन्होंने घोषणा कि, "हिन्दू धर्म भारत में सामाजिक विचार के अन्तिम विकास का रूप है।"

पतन के कारण

आगे बौद्धधर्म के पतन से संबंधित कारणों पर विचार करते हुए डॉ. अम्बेडकर ने अनेक लोगों के उन विचारों का खण्डन किया कि बौ,धर्म का नाश शंकराचार्य की तर्क विद्या से हुआ है। "यह इस सत्य के विपरीत है कि बौ,धर्म उनकी मृत्यु के बाद भी अनेक शताब्दियों तक अस्तित्व में रहा।"

डॉ. अम्बेडकर का विश्वास है कि बौद्धधर्म भारत में वैष्णव-धर्म और शैवधर्म के उदय के कारण लुप्त हुआ। दूसरा कारण भारत पर मुस्लिम आक्रमण है। "जब अलाउद्दीन बिहार पहुँचा तो उसने पांच हजार भिक्षुओं का कत्ल किया। बचे हुए भिक्षु चीनद्व नेपाल और तिब्बत जैसे पड़ोसी देशों में भाग गये। बाद में भारत के भिक्षुओं ने बौद्वधर्म के पुनद्वार के उद्देश्य से दूसरी पुरोहिंताई को जन्म देने के लिए प्रयास किए। किन्तुद्व वे असफल हो गयेद्व क्योंकि तब तक नब्बे प्रतिशत बौद्व हिन्दूधर्म अपना चुके थे।"

इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कि क्यों भारत में हिन्दूधर्म जीवित रहा और बौद्धधर्म मृतक हो गया, डॉ. अम्बेडकर ने कहा, "इस धर्म का आचरण करना कठिन है, जबकि हिन्दूधर्म के साथ ऐसा नहीं है।"

समस्त हिन्दू बौद्धधर्म ग्रहण करें

अम्बेडकर का विचार

(दि बाम्बे क्रॉनिकल, दिनाँक 11मई, 1950)

बम्बई ब्रद्धवार।

डॉ. अम्बेडकर ने दलील देकर कहा कि समस्त हिन्दू समुदाय को बौद्धधर्म ग्रहण करना चाहिए। यह बात अखिल भारतीय अनुसूचित जाति फेडरेशन के महासचिव श्री पी.एन. राजभोज ने आज अखबारों को जारी एक वक्तव्य में कही।

श्री राजभोज कहते है कि बौद्धधर्म ग्रहण करने के लिए अनुसूचित जाति समुदाय को डॉ. अम्बेडकर की सलाह के विषय में कुछ विवादों को मद्देनजर रखते हुए उन्होंने डॉ. अम्बेडकर के साथ लम्बी बातचीत की थी। उन्हें यह मालूम हुआ कि डॉ. अम्बेडकर का विचार यह है कि सिर्फ अनुसूचित जातियों को ही नहीं, बरन् सम्पूर्ण हिन्दू समुदाय को बौद्धधर्म अपनाना चाहिए, क्योंकि हिन्दू धर्म का झुकाव निहित स्वार्थो को बनाये रखना हैं और वह उस वर्तमान स्थिति में जहां तमाम लोग समानता, अवसर और स्वतंत्रता की मांग करते है, पूरी तरह अनुपयुक्त है।

श्री राजभोज ने यह भी बताया कि भारत में अनुसूचित जातियाँ अस्पृश्यता और गरीबी जैसी बराईयों के लिए कोई गुंजाइश न छोड़ने के विषय में हिन्दू समाज के मूल आधार को बदलने कि लिए बेहतर स्थिति में हैं।

अम्बेडकर शेष जीवन बौद्धधर्म के प्रसार में व्यय करेंगे

(दि नेशनल स्टैण्डर्ड, दिनाँक 28 मई, 1953)

स्टैण्डर्ड स्टाफ रिपोर्ट

केन्द्र सरकार के पूर्व विधिमंत्री डॉ. बी.आर. अम्बेडकर ने बुद्धवार को बम्बई में कहा कि वह अपने शेष जीवन को बौद्धधर्म के प्रचार के लिए समर्पित करेंगे।

डॉ. अम्बेडकर ने, जो नरे पार्क मैदान में बुद्ध जयन्ती मनाने हेतु अखिल भारतीय अनुसूचित जाति फेडरेशन ,ारा आयोजित सभा को सम्बोधित कर रहे थे, जाति-प्रथा की निन्दा की और कहा कि जब तक जाति-विहीन और वर्ग-विहीन समाज का निर्माण नहीं होता है, तब तक देश में कोई प्रगति नहीं होगी।

बुद्ध जयन्ती अवकाश :

1. बम्बई में भारत सरकार के कार्यालय बुद्ध जयन्ती के उपलक्ष्य में बुद्धवार का बन्द रहे।
2. डाक विभाग में अवकाश रहा।
3. राज्य सरकार के बैंको तथा कार्यालयों में मामूली कार्य हुआ, क्योंकि इस दिन सार्वजनिक अवकाश नहीं था।

9. बुद्धधर्म की ओर प्रबल प्रवृत्ति :

डाक्टर साहब ने वर्षो तक अपनी पैनी और तुलनात्मक दृष्टि से संसार भर के धर्मो का अध्ययन किया और अन्त में इस परिणाम पर पहुँचे थे कि धर्म मानव की एक मूलभूत आवश्यकता हैं।

केवल शिक्षा और बुद्धि से मानव के व्यक्तित्व का पूर्ण विकास नहीं हो सकता। नैतिकता की मानव तथा मानव समूह या समाज को बहुत जरूरत हैं। नैतिकता के बिना न तो एक इकाई और न ही उन इकाईयों से बना समाज सुख और शांतिपूर्वक जी सकता। यह नैतिकता केवल धर्म से पैदा की जा सकती। बशर्ते कि वह धर्म हो, धर्म के रूप में अधर्म न हों।

बुद्ध धर्म की ओर प्रवृत्ति या रूझान डाक्टर साहब का नैसर्गिक और उनके स्वभावनुसार ही था। वह अपनी किशोरावस्था से ही बुद्ध धर्म के सिद्धांतों से भली-भांति परिचित थें।

हाई स्कूल के विद्यार्थीकाल में उनको पुस्तकभ्यासी और विद्या प्रेमी देख कर उनके हितैषी कैलुस्कर महोदय ने उन्हें अपनी स्वयं लिखित पुस्तक जो भगवान बुद्ध के जीवनचरित्र से संबंध रखती थी उपहार में दी थी।

धर्मान्तर की घोषणा के पश्चात् बौद्धधर्म की ओर उनका रूझान और भी तेजी से बढ़ गया और उनका दृढ़ विश्वास हो गया कि अछूतों का कल्याण बौद्धधर्म अपनाने में ही हैं। उनके समय-समय पर प्रकट किए गए विचारों और व्याख्यानों से साफ झलकने लगा कि वह बौद्ध धर्म की ओर झुक रहे हैं।

1946 में उन्होंने जब बम्बई में एक कॉलेज खोला तो उसका नाम सिद्धार्थ कालेज रखा। स्मरण रहे कि भगवान बुद्ध का बचपन का नाम सिद्धार्थ था।

मई 1950 में नई दिल्ली में भगवान गौतम बुद्ध के परिनिर्वाण दिवस महोत्सव के अवसर पर उन्होंने उच्च स्तर से कहा था कि, "बुद्ध धर्म की नींव नैतिकता पर अवलम्बित हैं।" नाम राजगृह रखा गया। उस भवन के निर्माण का नक्शा इस प्रकार से बनाया गया जो निर्माण हो चुकने के पश्चात् बाहर से तो एक बंगला दिखाई पड़ता था किन्तु अन्दर से वह एक वृहद् पुस्तकालय या लायब्रेरी थी जो भारत भर के किसी भी निजी पुस्तकालय से पुस्तक संग्रह की दृष्टि से बेमिसाल या अनुपम कही जा सकती थी।

10. धर्म परिवर्तन की घोषणा :

1935 में जब यह समाचार फैला कि डाक्टर साहब होने वाली येवला कांफ्रेंस में धर्म परिवर्तन की एक अपूर्व घोषणा करने वाले हैं तो सारे देश में एक खलबली मच गई इस कांफ्रेंस में डाक्टर साहब ने हिन्दुओं की बेतुकी और अनैतिक वर्णव्यवस्था (जाति-पांति) की घोर निन्दा की। आपने कहा जो धर्म हमें मानवता के मूल अधिकार देने से वंचित रखता है हमारे लिए यह आवश्यक हो जाता है कि हम ऐसे अधर्म के साथ चिपके न रहें। अपने बारे में उन्होंने कहा कि मैं 'हिन्दू धर्म

में पैदा हो गया यह मेरे अपने वश की बात नहीं थी किन्तु मैं हिन्दू रहकर करूँगा नहीं यह मेरे अपने वश की बात हैं।

उनकी यह प्रतिज्ञा एक प्रकार की भविष्यवाणी ही सिद्ध हुई क्योंकि अपिने परिनिर्वाण से लगभग सात सप्ताह पहले अर्थात् 14 अक्टूबर 1956 का उन्होंने नागपुर में बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया था।

1935 के धर्म परिवर्तन की घोषणा से सारे देश में अजीब सरसनी फैल गई थी। मुसलमानों ने उन्हें इस्लाम धर्म स्वीकार करने के लिए और ईसाईयों ने ईसाई धर्म दीक्षित होने कि लिए निमंत्रण दियें। कुछ दिनों के पश्चात् उन्होंने कहा कि वह इस्लाम और ईसाई धर्म की अपेक्षा सिक्ख धर्म को स्वीकार करने में प्राथमिकता देगें।

सवर्ण हिन्दुओं में काफी समय तक चर्चा होती रही। गांधी जी व्यंग्य भाषा में कहा कि अछूत दूसरा धर्म स्वीकार करेंगे या नहीं किन्तु डाक्टर अम्बेडकर इस घोषणा से अवश्य प्रसिद्ध हो गए हैं।

पण्डित गोविन्द बल्लभ पन्त ने बयान दिया कि धर्म परिवर्तन करने से पूना पैक्ट रद्द हो जाएगा और अछूत सब अधिकारों से वंचित हो जायेगे। डाक्टर साहब ने ऐसे तमाम नेताओं की आपत्तियों का युक्ति-युक्त और मुंहतोड़ उत्तर दिया।

बाबा साहब डॉ. अम्बेडकर के धार्मिक मन्तव्य :

बाबा साहब ने अपनी उच्च शिक्षा अमरीका, इंग्लैण्ड और जर्मनी में प्राप्त की थी। वह समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, कानूनशास्त्र और इतिहास शास्त्र के पण्डित थें। इतना होने पर भी उनका धर्म में अटूट विश्वास था। आजकल के युग में विश्वविद्यालय तक पहुँचने तक विद्यार्थी प्रायः धर्म को तिलांजलि दे देते हैं किन्तु इस महापुरूष में इतनी शिक्षा होने पर भी धर्म की भावना मौजूद थी। वह धर्म को मनुष्य के लिए अनिवार्य समझते थे। उनके विचार में धर्म से विहीन न तो पूर्ण व्यक्ति बन सकता है और न ही धर्म रहित समाज या सोयाइटी आदर्श रूप ग्रहण कर सकती

है। प्रश्न उठता है कि वह किस प्रकार के धर्म के स्वयं अनुयायी थे और उसे मानवता के लिए अनिवार्य समझते थें। इस तथ्य को समझने के लिए पहले यह विवेचन करना जरूरी है कि उनके मत में धर्म का लक्षण या स्वरूप क्या हैं ?

वह धर्म और मज़हब में बड़ा भेद समझते है। संसार भर के प्रसिद्ध विश्वास (फेथ) इस्लाम, हिन्दू और इनकी तरह संसार भर में फैले अनेक विश्वासों या मन्तव्यों को वह मज़हबों धर्म की कोटि में रखते है औ उन्हें धर्म की परिभाषा से पृथक मानते है। जिस धर्म को वह मानव मात्र के कल्याण का मुख्य साधन मानते है, वह है विशुद्ध नैतिकता (Morality) जिसे उर्दू फारसी में इखलाक कहा गया है। इसे वे धम्म की श्रेणी में रखते हैं।

धर्म और धम्म के अन्तर को बाबा साहब ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ बुद्ध और उनका धम्म (Buddha and His Dhamma) में विस्तारपूर्वक समझाया हैं। हमें इस विषय पर इससे बढ़िया विस्तारपूर्वक विवेचना कहीं दूसरे किसी धार्मिक ग्रन्थ या पुस्तक में नहीं मिलती। हम उचित सतझते है कि धम्म के विषय पर उनके प्रसिद्ध ग्रन्थ से हूबहू वह उद्धरण नकल कर लिए जाएं ताकि पाठकों को भली-भांति पता चल सके कि बाबा साहब की दृष्टि में धर्म और धम्म में क्या अन्तर है और मानव मात्र के लिए धर्म की बजाए धम्म ही कल्याणकारी क्यों हैं :-

11.1. 'धर्म' क्या हैं ?

1. 'धर्म' एक अनिश्चित शब्द है, जिसका कोई स्थिर अर्थ नहीं ।
2. यह शब्द तो एक है, किन्तु इसके अर्थ अनेक हैं ।
3. इसका कारण है कि 'धर्म' बहुत सी अवस्थाओं में से होकर गुजरा है हर अवस्था में इस उस मान्यता विशेष को 'धर्म' ही कहते रह हैं। निःसंदेह हर एक समय ही मान्यता अपने से पूर्व की मान्यताओं से भी भिन्न रही है और अपने बाद में आने वाली मान्यताओं से भी भिन्न रही हैं।
4. 'धर्म' की कल्पना कभी स्थिर नहीं रही है।

5. यह हर समय बदलती चली आई हैं।

6. एक समय था जब बिजली, वर्षा और बाढ़ की घटनायें आदि आदमी की समझ में सर्वथा परे की बातें थीं। इन सब पर काबू पाने के लिए जो भी कुछ टोना-टोटका किया जाता था, 'जादू' कहलाता था। उस समय 'धर्म' और 'जादू' एक ही चीज के दे नाम थें।

7. धर्म के विकास में दूसरा समय आया। इस समय 'धर्म' का मतलब था- आदमी के विश्वास, धार्मिक कर्म काण्ड, रीति-रिवाज, प्रार्थनाएं और बलियों वाले यज्ञ।

8. लेकिन 'धर्म' का स्वरूप व्युत्पन्न हैं।

9. धर्म का केन्द्र बिन्दु इस विश्वास पर निर्भर करता है कि कोई शक्ति विशेष हैं जिसके कारण ये सभी घटनाऐं घटती है और जो आदि आदमी की समझ से परे की बातें थी। अब इस अवस्था को पहुँचकर 'जादू' का प्रभाव माना जाता रहा।

10. आरम्भ में यह शक्ति 'शैतान' का रूप थी। किन्तु बाद में यह माना जाने लगा कि यह 'शिव'रूप भी हो सकती हैं

11. तरह-तरह के विश्वास, कर्म काण्ड और यज्ञ शिव स्वरूप शक्ति को प्रसन्न करने के लिए एवं क्रोधरूप शक्ति को संतुष्ट रखने के लिए भी आवश्यक हैं।

12. आगे चलकर वही शक्ति 'ईश्वर' 'परमात्मा' या दुनिया को बनाने वाली कहलाई।

13. तब 'धर्म' को मान्यता ने तीसरी शक्ति ग्रहण की, जब यह माना जाने लगा कि इस एक ही शक्ति ने 'आदमी' और 'दुनिया' दोनों को पैदा किया हैं।

14. इसके बाद धर्म की मान्यता में एक यह बात भी शामिल हो गई है कि हर आदमी की देह में एक 'आत्मा' नित्य है, और आदमी जो कुछ भी भला-बुरा काम करता है, उस 'आत्मा' को 'ईश्वर' के प्रति उसके लिए उत्तरदायी रहना पड़ता है।

15. थोड़े में यही 'धर्म' की मान्यता के विकास का इतिहास हैं।

16. अब धर्म का यही अर्थ हो गया और अब धर्म से यही भावार्थ ग्रहण किया जाता है- ईश्वर में विश्वास, आत्मा में विश्वास, ईश्वर की पूजा, आत्मा का सुधार प्रार्थना आदि करके ईश्वर को प्रसन्न रखना हैं।

12. 'धम्म' 'धर्म' से कैसे भिन्न हैं?

1. भगवान बुद्ध जिसे 'धम्म' कहते है, वह धर्म से सर्वथा भिन्न हैं।

2. यू जिसे भगवान बुद्ध 'धम्म' कहते है, वह उसके समानान्तर है जिसे यूरोप के देववादी 'रिलीजन' कहते है।

3. लेकिन दोनों में कोई खास 'समानता' नहीं है बल्कि दोनों में बहुत बड़ा अन्तर है।

4. इसीलिए कुछ यूरोपीय देववादी भगवान बुद्ध के 'धम्म' को 'धर्म' स्वीकारने से इन्कार करते हैं।

5. हमें इसके लिए कोई अफसोस नहीं हैं। नुकसान उन्हीं का है इससे बुद्ध धम्म को कोई हानि नहीं, बल्कि इससे 'रिलीजन' की कमियां स्पष्ट रूप से ध्यान में आ जाती है।

6. इस विवाद में पड़ने की अपेक्षा यह अच्छा है कि हम यह बताये कि धम्म क्या है और फिर यह दिखायें कि यह धर्म या 'रिलीजन' से कैसे भिन्न है?

7. कहा जाता है कि धर्म का 'रिलीजन' व्यक्तिगत चीज है और आदमी को इसे अपने तक ही सीमित रखना चाहिए। इसे सार्वजनिक जीवन में बिल्कुल दखल नहीं देना चाहिए।

8. इसके सर्वथा विरुद्ध 'धम्म' एक सामाजिक बस्तु है। यह प्रधान रूप से और आवश्यक रूप से सामाजिक हैं।

9. धम्म का मतलब है सदाचरण, जिसका मतलब है जीवन के सभी क्षेत्रों में एक आदमी का दूसरे आदमी के प्रति अच्छा व्यवहार।

10. इससे स्पष्ट है कि यदि कहीं एक आदमी अकेला ही हो तो उसे किसी 'धम्म' की आवश्यकता नहीं।

11. लेकिन यह कहीं परस्पर संबंधित दो आदमी भी एक साथ रहते हों, तो चाहे वे चाहें और चाहें न चाहें उन्हें 'धम्म' के लिए जगह बनानी होगी। दोनों में से कोई एक भी बचकर नहीं जा सकता।

12. दूसरे शब्दों में बिना 'धम्म' के समाज का काम चल ही नहीं सकता।

13. समाज को तीन बातों में से एक का चुनाव करना ही पड़ेगा।

14. समाज चाहे तो अपने 'अनेशासन' के लिए धम्म का चुनाव नहीं कर सकता। यदि धम्म 'अनुशासन' नहीं करता तो वह धम्मक ही नहीं है

15. इसका मतलब है कि समाज 'अराजकता' के पथ पर आगे बढ़ना ठीक समझता है

16. दूसरे समाज पुलिस को अर्थात् डिक्टेटर को 'अनुशासन' के लिए चुन सकता है।

17. तीसरे समाज धम्म और मजिस्ट्रेट दोनों का चुनाव कर सकता हैं जिने अंश में समाज धम्म का पालन करे उतने अंश में धम्म और जहां धम्म का पालन न करें, वहां मजिस्ट्रेट।

18. न अराजकता में स्वतंत्रता हैं और डिक्टेटर-राज्य में स्वतंत्रता है।

19. केवल तीसरे व्यवस्था में ही स्वतंत्रता जीवित रहती हैं।

20. इसलिए जो स्वतंत्रता चाहते है, उनके लिए 'धम्म' अनिवार्य है।

21. 'धम्म' क्या है? 'धम्म' की अनिवार्य आवश्यकता क्यों है? भगवान बुद्ध के अनुसार धम्म के दो प्रधान तत्व है- प्रज्ञा और करूणा।

22. प्रज्ञा क्या है प्रज्ञा किसलिए। प्रज्ञा का मतलब है बुद्धि (निर्मल बुद्धि) भगवान बुद्ध ने प्रज्ञा को अपने धम्म के दो स्तम्भों में से एक माना हैं, क्योंकि वह नहीं चाहते थे कि 'मिथ्या-विश्वासों' के लिए कहीं कोई गुंजाइश बचीं रहें।

23. करूणा क्या है? और करूणा किस लिये? करूणा का मतलब है (दया) प्रेम, मैत्री। इसके बिना न समाज जीवित रह सकता है और न समाज की उन्नति हो

सकती है- इसीलिये भगवान बुद्ध ने करूणा को अपने धम्म का दूसरा स्तम्भ बनया।

24. भगवान बुद्ध के 'धम्म' की यही परिभाषा हैं।

25. 'धर्म' का 'रिलीजन' की परिभाषा से यह कितनी भिन्न हैं।

26. कितनी प्राचीन और कितनी आधुनिक हैं यह भगवान बुद्ध द्वारा दी गई 'धम्म' की परिभाषा।

27. कितनी अलौकिक और कितनी मौलिक।

28. किसी से उधार नहीं ली गई कितनी सच्ची।

29. 'प्रज्ञा' और 'करूणा' का एक अलौकिक सम्मिश्रण ही तथागत का 'धम्म' हैं।

30 'धर्म' अथवा 'रिलीजन' और 'धम्म' में इतना अन्तर है।

13. 'धर्म' का उद्देश्य और 'धम्म' का उद्देश्य :

1. धर्म या रिलीजन का उद्देश्य क्या है? धम्म का उद्देश्य क्या है? क्या वे दोनों एक ही समान है और एक ही हैं ? अथवा वे दोनों दो है और भिन्न-भिन्न है ?

2. इन प्रश्नों का उत्तर दो सूक्तों में है, एक जिसमें भगवान बुद्ध और सुनक्खत की बातचीत का उल्लेख है, और दूसरा जिसमें भगवान बुद्ध और पोठ्ठापाद ब्राह्मण की बातचीत का वर्णन हैं।

3. तथागत एक बार मल्लों के नगर अनुप्रिय में बिहार कर रहे थें।

4. उस समय पूर्वाह में तथागत ने चीवर पहना तथा पात्र और चीवर ग्रहण किया और अनुप्रिय नगर में भिक्खाटन के लिए निकलें।

5. रास्तें में इनहें लगा कि कदाचित् भिक्खाटन के लिए अभी थोड़ी देर रूकना चाहिए। इसलिए वह भग्गव परिव्राजक के आश्रम में चले गए।

6. उन्हें आता देखकर भग्गव परिव्राजक उठ खड़ा हुआ, अभिवादन किया और बोला-"आप कृपया आसन ग्रहण करें। आपके लिए आसन सज्जित है।"

7. तब तथागत वहां विराजमान हुए। भग्गव परिव्राजक भी एक नीचा आसन लेकर पास ही बैठ गया। इस प्रकार बैठकर भग्गव परिव्राजक ने भगवान बुद्ध को कहा-

8. "कुछ दिन हुए, काफी दिन हुए है श्रमण गौतम! सुनक्खत्त लिच्छवी मेरे पास आया था। कहता था कि अब मैंने श्रमण गौतम का शिष्यत्व त्याग दिया हैं। क्या जैसा उसने कहा, वैसा ठीक है?"

9. "भग्गव"! यह ऐसा ही है, जैसा सुनक्खत्त लिच्छवी ने कहा है।"

10. इसके आगे तथागत बोले- "कुछ दिन हुए, काफी दिन हुए, सुनक्खत्त लिच्छवी मेरे पास आया था और कहने लगा-"अब मैं तथागत के शिष्यत्व का त्याग करता हूँ। अब मैं तथागत का शिष्य नहीं रहूँगा।" जब उसने मुझे यह कहा, तब मैंने उसे पूछा-"सुनक्खत्त! क्या मैनें तुझे कभी कहा था कि सुनक्खत्त! तू आ और मेरा शिष्य बनकर मेरे पास रह?

11. "भगवान्! नहीं ऐसा आपने कभी नहीं कहा।"

12. "अथवा तूने ही मुझे कभी कहा था कि तथागत को में अपना 'गुरु' स्वीकार करता हूँ।"

13. "भगवान! नहीं। ऐसा मैने कभी नहीं कहा।"

14. "तब मैंने उससे पूछा 'जब न मैंने ही तुझे कहा और न तूने ही मूझे कहा तो क्या तो मैं हूँ और क्या तू है, जो तू त्यागने की बात कर रहा है? मूर्ख कहीं के, क्या इसमें तेरा अपमान ही दोष नहीं है।"

15. सुनक्खत्त बोला-"लेकिन भगवान! आप मुझे सामान्य मनुष्यों की शक्ति से परे कोई प्रतिहार्य (चमत्कार) नहीं दिखाते।"

16. "सुनक्खत्त! क्या मैंने कभी तुझे कहा था कि सुनक्खत्त तू आकर मेरा शिष्य बन जा, मैं तूझे सामान्य मनुष्य की शक्ति से परे कोई प्रतिहार्य दिखाऊँगा।

17. "भगवान ! ऐसा आपने कभी नहीं कहा था।"

18. "अथवा सुनक्खत्त ! तूने ही मुझे कभी नहीं कहा था कि मैं भगवान का 'शिष्यत्व' स्वीकार करता हूँ, क्योंकि भगवान मुझे सामान्य आदमियों की शक्ति से परे कोई 'प्रतिहार्य' दिखायेंगें ।

19. "भगवान ! नहीं, मैंने ऐसा नहीं कहा था।"

20. जब न मैंने तुझे कहा और न तूने ही मुझे कहा तो क्या मैं हूँ और क्या तू है जो तू त्यागने की बात कर रहा है, सुनक्खत्त् ! तू क्या सोचता है, चाहे न सामान्य मनुष्यों की शक्ति से परे चमत्कार दिखाऐं जायें और चाहे न दिखाये जायें, क्या मेरे धर्म का यही उद्देश्य नहीं है कि जो मेरे धर्म के अनुसार आचरण करेगा, वह अपने दुःख का नाश कर सकेगा ?

21. "भगवान ! चाहे प्रतिहार्य दिखाए जायें और चाहे न दिखाए जायें, निश्चय से तथागत की धर्म-देशना का यही उद्देश्य है जो कोई भी तथागत के धर्म के अनुसार आचरण करेगा वह अपने दुःख का नाश कर सकेगा।"

22. 'सुनक्खत्त ! जब धर्म के उद्देश्य की दृष्टि से इसका कोई महत्व ही नहीं कि कोई प्रतिहार्य दिखाए जाये अथवा न दिखाए जाये, तो तेरे लिए ही प्रतिहार्य प्रदर्शन का क्या मूल्य हैं ? हे मूर्ख ! जब तू देख कि इसमें तेरा अपना ही कितना दोष हैं।"

23. लेकिन भगवान ! आप मुझे सृष्टि के आरम्भ का भी तो पता नहीं देतें ?

24. "अच्छा तो सुनक्खत्त ! मैंने तुझे कब कहा था कि आ सुनक्खत्त, तू मेरा शिष्य बन जा, मैं तुझे सृष्टि के आरम्भ का पता बताऊँगा।

25. "भगवान ! आपने नहीं कहा था।"

26. "अथवा तूने ही मुझे कभी कहा था कि मैं आपका शिष्य बनूंगा क्योंकि आप मुझे सृष्टि के आरम्भ का पता देगें ?

27. "भगवान ! मैंने नहीं कहा था।"

28. "जब न मैंने ही तुझे कहा और न तूने ही मुझे कहा तो क्या मैं हूँ और क्या तू है, जो तू त्यागने की बात कर रहा है ? सुनक्खत्त ! तू क्या सोचता है चाहे मैं सृष्टि के आरम्भ का पता बताऊँ और चाहे न बताऊँ, क्या मेरे धम्म का यही उद्देश्य नहीं है कि जो मेरे धम्म के अनुसार आचरण करेगा, वह अपने दुःख का नाश कर सकेगा ?

29. "भगवान ! चाहे आप सृष्टि के आरम्भ का पता बतायें और चाहे न बतायें, निश्चय से तथागत की धम्म-देशना का यही उद्देश्य है कि जो कोई भी तथागत के धम्म के अनुसार आचरण करेगा, वह अपने दुख का नाश कर सकेगा?

30. "सुनक्खत्त ! जब धम्म के उद्देश्य की दृष्टि से इसका कोई महत्व ही नहीं कि चाहे सृष्टि के आरम्भ का पता बताया जाये और चाहे न बताया जाये, तो तेरे लिये ही इसका क्या मूल्य है कि सृष्टि के आरम्भ का पता बताया जाये ?

31. इससे यह प्रकट होता है कि 'धर्म' या 'रिलीजन' को तो सृष्टि के आरम्भ से सरोकार हैं, धम्म का एकदम नहीं।

14. 'धर्म' अथवा 'रिलीजन' और धम्म में जो दूसरे फर्क हैं वे उस चर्चा से स्पष्ट हो जाते है जो भगवान बुद्ध और पोट्टपाद के बीच हुई थी।

1. एक समय भगवान बुद्ध अनाथपिण्डक के जेतवनाराम में ठहरे हुए थे। इस समय पोट्टपाद परिव्राजक मल्लिका के महाप्रसाद में ठहरा हुआ था। उसका उद्देश्य दार्शनिक चर्चा करना था।

2. उसके साथ बहुत से अनुयायी परिव्राजक थे- कौन तीन सौ। भगवान बुद्ध और पोट्टपाद के बीच बातचीत हुई। पोट्टपाद ने पूछा-

3. 'भगवान ! यदि यह ऐसा ही है, तो कम से कम, मुझे इतना तो बता दें कि क्या बड़ी मत ठीक है कि संसार 'अनंत हैं' और शेष मृषा हैं ?

4. तथागत बोले "पोट्टपाद ! मैंने यह कब कहा है कि यही मत ठीक है कि संसार अनंत है" और सब मत मृषा है ? मैंने इस विषय में कभी अपने मत व्यक्त ही नहीं किया हैं ।

5. तब, इसी तरह से पोट्टपाद ने इस सभी प्रश्नों को क्रमशः पूछा-

(क) क्या संसार अनंत नहीं हैं ।?

(ख) क्या संसार ससीम हैं ?

(ग) क्या संसार असीम है ?

(घ) क्या आत्मा और शरीर एक ही है ?

(ङ) क्या आत्मा और शरीर भिन्न-भिन्न है ?

(च) क्या तथागत मरणान्तर रहते है ?

(छ) क्या तथागत मरणान्तर नहीं रहते है ?

(ज) क्या वे रहते भी है और नहीं भी रहते है ?

6. और इस प्रकार के हर प्रश्न का तथागत ने एक ही उत्तर दिया ।

7. "पोटटपाद ! इस विषय में भी मैंने अपना मत कभी व्यक्त नहीं किया ।"

8. "लेकिन तथागत ने इन विषयों में अपना मत क्यों व्यक्त नहीं किया ?

9. 'क्योंकि इन प्रश्नो का उत्तर देने से किसी को कुछ लाभ नहीं, इनका धम्म से कुछ भी संबंध नहीं, इससे आदमी को अपना आचरण सुधारने में खुद भी सहायता नहीं मिलती, इनसे विराग नहीं बढ़ता, इनसे राग-द्वेष से मुक्ति लाभ नहीं होता, इनसे शान्ति नहीं मिलती, इनसे शमन लाभ नहीं होता, इनसे विद्या प्राप्त नहीं होती, इनसे प्रज्ञा का लाभ नहीं होता और न ये निर्वाण की ओर अग्रसर करते हैं । इसीलिए मैंने इन विषयों पर अपना कोई मत व्यक्त नहीं किया हैं ।?

10. "तो तथागत ने किन विषयों का व्याख्यान किया हैं ?"

11. "मैंने बताया है कि दुख क्या हैं ? मैंने बताया है कि दुख का समुदय (मूल कारण) क्या हैं ? मैंने बताया है कि दुख का निरोध क्या है ? मैंने बताया है कि दुख के निरोध (अन्त) का मार्ग क्या हैं ?"

12. "और तथागत ने इन विषयों पर व्याख्यान क्यों दिया हैं ?"

13. क्योंकि पोटटपाद ! इनसे लोगों को लाभ है, इनका धम्म से संबंध है, इनसे आदमी को अपना आचरण सुधारने में सहायता मिलती है, इनसे विराग बढ़ता है, इनसे राग-द्वेष से मुक्ति मिलती है, इनसे शांति मिलती है, इनसे शमन होता है, इनसे विद्या प्राप्त होती है, इनसे प्रज्ञा का लाभ होता है और ये निर्वाण की ओर अग्रसर करते है। इसीलिये पोटटपाद ! मैंने इन विषयों का व्याख्यान किया है।"

14. इस संवाद से यह स्पष्ट होता है कि 'धर्म' और रिलीजन के लिए कौन से प्रश्न विचारणीय है और धम्म के लिऐ कौन से प्रश्न विचारणीय है? दोनों में जमीन-आसमान का अन्तर हैं।

15. 'धम्म' का उद्देश्य हैं संसार का पुर्ननिर्माण करना।

15. धर्म और नैतिकता :

1. 'धर्म' या 'रिलीजन' में नैतिकता का स्थान क्या है ?

2. सच्ची बात तो यही है कि नैतिकता का धर्म या रिलीजन में कोई स्थान ही नहीं ।

3. धर्म या रिलीजन के अन्तर्गत आते है 'ईश्वर', 'आत्मा', 'प्रार्थनाये', 'पूजा', 'कर्म-काण्ड', 'रीति-रिवाज', 'यज्ञ', 'वलि-कर्म'।

4. नैतिकता का सम्बन्ध वहीं आता है जहां एक आदमी का सम्बन्ध दूसरे से आरम्भ होता है।

5. 'धर्म' या 'रिलीजन' में तो नैतिकता बाहर से आने वाले हवा के एक झोके की तरह हैं, ताकि व्यवस्था और शांति की स्थापना में उपयोगी सिद्ध हो।

6. 'धर्म' या 'रिलीजन' एक त्रिकोण है।

7. अपने पड़ोसी के साथ अच्छा व्यवहार करों क्योंकि तुम दोनों एक ही पिता परमात्मा के पुत्र हो।

8. यही 'धर्म' या 'रिलीजन' का तर्क है।

9. प्रत्येक 'धर्म' या 'रिलीजन' नैतिकता का उपदेश देता है, किन्तु नैतिकता 'धर्म' या 'रिलीजन' का मूलाधार नहीं हैं

10. यह एक रेल के उस डिब्बे की तरह है जो ऐसे ही साथ जोड़ दिया गया है। यह यथावसर साथ जोड़ भी दिया जाता है और पृथक भी करा दिया जाता है।

11. इसलिए 'धर्म' या 'रिलीजन' की क्रिया परिपाटी में नैतिकता का स्थान आकस्मिक है और कभी-कभी उसका भी प्रयोजन रहता है।

12. इसीलिये 'धर्म' 'रिलीजन' में नैतिकता प्रभावोत्पादक नहीं हैं।

16. धम्म और नैतिकता :

1. धम्म में नैतिकता का स्थान क्या है ?
2. सीधा सरल उत्तर है कि नैतिकता ही धम्म हैं और धम्म ही नैतिकता है।
3. दूसरे शब्दों में यद्यपि धम्म में ईश्वर के लिये कहीं कुछ स्थान नहीं है तो भी धम्म में नैतिकता का वही स्थान है जो धर्म या रिलीजन में ईश्वर का।
4. धम्म में प्रार्थनाओं के लिए तीर्थ-यात्राओं के लिए, कर्मकण्डों के लिए, रीति-रिवाजों के लिए तथा बलि-कर्मो के लिए कोई जगह नहीं हैं
5. नैतिकता ही धम्म का सार हैं। नैतिकता नहीं, तो धम्म भी नहीं।,
6. धम्म में जो नैतिकता है उसका सीधा मूल-स्रोत आदमी को आदमी से मैत्री करने की जो आवश्यकता, वही है।
7. इसमें ईश्वर की मंजूरी की आवश्यकता नहीं, ईश्वर को प्रसन्न करने के लिए आदमी को नैतिक बनने की आवश्यकता नहीं। अपने भले के लिए ही आदमी के लिए यह आवश्यक है कि वह आदमी से मैत्री करे।

17. केवल सदाचार भी पर्याप्त नहीं है, यह पवित्र और व्यापक होना चाहिए :

1. कोई भी चीज या बात कब पवित्र बनती है ?क्यों पवित्र बनती है ?

2. हर मानव-समाज में चाहे वह आदिम व्यवस्था में हो और चाहे वह उन्नत अवस्था में हो -कुछ चीजें या विश्वास ऐसे होते है जो पवित्र माने जाते है और कुछ चीजें या विश्वास ऐसे है जो पवित्र नहीं माने जाते।

3. जब कोई चीज या विश्वास पवित्रता की सीमा में प्रवेश कर गया इसका मतलब है कि उसके विरूद्ध आचरण नहीं किया जा सकता। ठीक बात तो यह है कि उसे स्पर्श नहीं किया जा सकता। ऐसा करना सर्वथा निषिद्ध हो जाता है।

4. इससे भिन्न जो चीज या बात 'पवित्र' नहीं मानी जाती, उसके विरूद्ध आचरण किया जा सकता है, अर्थात् आदमी बिना किसी भय के अथवा आत्म-प्रताड़ना के उस विषय में जैसा चाहे कर सकता हैं।

5. पवित्र का मतलब है धाम्मिकता लिये हुए। इस प्रकार की चीज या बात के विरुद्ध जाने का मतलब हैं धर्म की मर्यादा का उल्लंघन करना।

6. किसी भी चीज को पवित्र क्यों बनाया जाता है ? अपने प्रश्न को विषय के भीतर रखने के लिये, पूछा जा सकता है कि नैतिकता का पवित्र क्यों बनाया गया ?

7. नैतिकता के पवित्र बनाये जाने में, लगता है कि तीन बातों का प्रभाव पड़ा है।

8. पहली बात तो यह है कि जो श्रेष्ठ है, सामाजिक हित की दृष्टि से उसे सुरक्षित रहना चाहिए।

9. इस प्रश्न की पृष्ठ-भूमि का सम्बन्ध है उस बात से जिसे हम जीवन-संघर्ष और उसमें योग्यतम का जीवित बने रहना कहते है।

10. यह प्रश्न विकास-बाद के सिद्धांत से सम्बंधित है। हर कोई जानता है कि मानव समाज में जो विकास हुआ। वह जीवन-संघर्ष के कारण हुआ है, क्योंकि आरम्भिक युग में भोजन सामग्री बड़ी सीमित मात्रा में प्राप्त थी।

11. भयानक संघर्ष रहा है। प्रकृति के पंजे और दांत रक्त-रंजित रहे है।
12. ऐसे जीवन-संघर्ष में जो भयानक और रक्त रंजित होता है केवल 'योग्यतम' ही बचा रहता है।
13. मानव की मूल अवस्था ऐसी ही रही है।
14. बहुत प्राचीनकाल में किसी न किसी ने यह प्रश्न अवश्य उठाया होगा कि क्या योग्यतम (सबसे अधिक शक्ति-सम्पन्न) ही श्रेष्ठतम भी माना जाना चाहिए ? क्या जो निर्वलतम है, उसे भी संरक्षण देकर यदि बचाया जाए तो क्या यह आगे चलकर समाज के हित की दृष्टि से अच्छा सिद्ध न होगा ?
15. लगता है कि उस समय के समाज की जो स्थिति थी, उस समय उसने एक स्वीकारात्मक उत्तर अवश्य दिया होगा।
16. तब प्रश्न पैदा होता है कि कमजोरों के संरक्षण का क्या उपाय हैं?
17. जो योग्यतम (सबसे अधिक शक्तिशाली) हो उस पर कुछ प्रतिबन्ध लगाने से कम और किसी भी तरह काम चल ही नहीं सकता था।
18. इसी स्थिति में नैतिकता का मूल और आवश्यकता छिपी हुई हैं।
19. इस नैतिकता के लिये पवित्र बनाया जाना आवश्यक था, क्योंकि पहले-पहले ये पाबंदियां (प्रतिबंध) योग्यतम (सर्वाधिक शक्तिशाली) व्यक्तियों पर ही लगाई गई थी।
20. इसके बड़े गम्भीर परिणाम हो सकते थे।
21. पहला प्रश्न तो यही पैदा होता है कि नैतिकता जब सामाजिक रूप ग्रहण करती है, तब कहीं यह असामाजिक (सामाजिक हितों की विरोधिनी) तो नहीं हो जाती है।
22. ऐसा नहीं है कि चोरों में अपनी कुछ नैतिकता ही न हो। व्यापारियों में भी नैतिकता होती ही है। एक जातिवालों में भीतरी नैतिकता रहती ही है और डाकुओं के झुण्ड में भी अपनी भीतरी नैतिकता रहती ही है।

23. लेकिन यह नैतिकता पार्थक्य की भावना लिये हुए है। इस नैतिकता में दूसरों के बहिष्कार की भावना निहित है। इस नैतिकता दल-विशेष के स्वार्थो का संरक्षण करने के लिए है। इसलिये यह नैतिकता समाज हित-विरोधिनी है।

24. इस प्रकार की नैतिकता की पार्थक्य और अपने में ही सीमित रहने की भावना ही है, जिससे उसकी समाज हित विरोधनी प्रवृत्ति को क्रियाशील होने का अवसर मिलता है।

25. यही बात उस समय लागू होती है जब कोई भी एक दल अपने स्वार्थो की रक्षा करने के लिए नैतिकता का आश्रय लेता है।

26. समाज की इस दल बन्दी का असर बड़ी दूर तक पहुँचता है।

27. यदि समाज में इस प्रकार के असामाजिक दल बने रहेंगे, तो समाज हमेशा असंगठित रहेगा और टुकड़े-टुकड़े रहेगा।

28. एक असंगठित और टुकड़े-टुकड़े समाज का सबसे बड़ा खतरा यही है कि यह कई तरह के जीवन मापों और आदर्शो को जन्म दे देता है।

29. जब तक लोगों के जीवन के माप दण्ड समान न हो और जब तक लोगों के जीवन-आदर्श समान न हो तब तक समाज परस्पर मिल जुलकर रहने वाला समाज बन ही नहीं सकता।

30. जब इतने तरह के जीवन के माप-दण्ड रहेंगे और इतनी तरह के जीवन आदर्श रहेंगे तो व्यक्ति के लिये मन का अविरोधी भाव बनाये रखना असम्भव है।

31. बुद्धिपूर्वक विचार करने के किसी की जनसंख्या आदि को दृष्टि से जो और जितना जिसका अधिकार होना चाहिए वह न होकर यदि किसी समाज के एक हिस्से की तरह दूसरे हिस्से पर अनुचित प्रधानता बनी रहेगी तो इसका अवश्यम्भावी परिणाम परस्पर की कलह होगा।

32. कलह को रोकने का एक ही उपाय है कि सभी के लिये नैतिकता के समान नियम हो और सभी उन्हें पवित्र मानें।

33. एक तीसरा कारण भी है जिसके कारण नैतिकता पवित्र मानी जानी चाहिए और इसको सर्वमान्य होना चाहिए, व्यक्ति की उन्नति के संरक्षण के हित में।

34. जहां जीवन संघर्ष है अथवा जहां। वर्ग-विशेष का शासन है, वहां व्यक्ति का हित सुरक्षित नहीं है।

35. दलबंदी व्यक्ति को चित की वह अविरोधी-भावना प्राप्त करने ही नहीं देती वह तो तभी सम्भव है जब समाज में समान 'जीवन-माप' हो, और समान 'जीवन-आदर्श' हों। व्यक्ति के विचार बहक जाते है और वह एकता देख ही नहीं सकता।

36. दूसरे दलबंदी में पक्षपात रहता है और न्याय की आशा नहीं रहती।

37. दलबंदी से वर्ग में जड़ीभूत हो जाते है। मालिक हमेशा बने रहते हैं, गुलाम हमेशा गुलाम ही बने रहते है। मालिक हमेशा मालिक बने रहते है, मजदूर हमेशा मजदूर बने रहते है। विशिष्ट अधिकारी हमेशा विशिष्ट अधिकारी ही रहते है और गुलाम हमेशा गुलाम ही रहते है।

38. इसका मतलब है कि कि कुछ लोगों के लिए तो स्वतंत्रता हो सकती है, किन्तु सभी के लिये नहीं। इसका मतलब हुआ कि चन्द लोगों के लिए समानता हो सकती हैं, किन्तु अधिकांश के लिए नहीं हो सकती।

39. इसका इलाज क्या है? एक ही इलाज है कि भ्रातृ-भावना को सर्वमान्य और प्रभावशाली बनाया जाय।

40. भ्रातृ-भाव क्या है ? आदमी हर आदमी को अपना भाई समझे-यही नैतिकता है।

41. इसीलिए भगवान बुद्ध ने कहा कि धम्म नैतिकता है और जिस प्रकार धम्म पवित्र हैं उसी प्रकार नैतिकता भी प्रवित्र हैं।

पूर्वोक्त विचारों को मनन करते हुए हम डॉ. अम्बेडकर के धार्मिक दृष्टिकोण को भली-भांति समझ सकते है कि वह धम्म को नैतिकता का पर्यायवाची मानते है। उनके विचार में वही धम्म ग्राह्य और अनुकरणीय है जो मानवमात्र को नैतिकता की शिक्षा देता है और मानवमात्र को परस्पर समता की भूमि प्रदान करता है। जो ब्राह्म कर्म-काण्ड और आडम्बरों को नैतिकता की कोट में नहीं लाता। जो प्रज्ञा करूणा और मैत्र का पाठ पढ़ाता है। मानवमात्र ही नहीं प्राणीमात्र से भी सहानुभूति करना सिखलाता हैं। असहाय जीवनों पर दया करना सिखलाता है।

उनकी इस कसौटी पर केवल भगवान बुद्ध का दिखाया धम्म का सन्मार्ग एक मात्रा ऐसा सही और निभ्रान्त सन्मार्ग है। जो मानवमात्र के लिए कल्याणकारी और सुखदायक है। इसी मार्ग को जिसे भगवान बुद्ध ने बहुजन हिताय बहुजन सुखाय कहा हैं, उसे वह स्वयं मानते थे और अन्य लोगों को उसे अपनाने के लिए उपदेश देते थें। उनके विचार में भगवान बुद्ध द्वारा दर्शाया यह उत्तम सन्मार्ग व्यक्ति और समष्टि, के लिए उपादेय है। इस मार्ग को अपनाने से न केवल भारतीय अछूतों का बल्कि समस्त भारत का कल्याण हो सकता है।

बाबा साहब का दृढ़ विश्वास था कि आज के भयानक परमाणु और उदजन बमों की विभीषिका से मानवमात्र का छुटकारा तब तक नहीं हो सकेगा जब तक वह भगवान बुद्ध के इस मध्यम मार्ग को नहीं ग्रहण करेंगे कि स्वयं जीओ किन्तु दूसरों को भी जीने दो।

इसी धम्म को उन्होंने सारे संसार के सामने 14 अक्टूबर 1956 को अपनाया, और अपने अनुयायियों को इसमें दीक्षित होने के लिए प्रेरणा दी। हम निःसंदेह कह सकते है कि बाबा साहब नैतिकता के प्रचारक, प्रसारक और

विस्तारक बौद्ध धम्म के अनुयायी थे और इसी धम्म को न केवल अछूतों बल्कि अछूतों और मानवमात्र को अपनाने की शिक्षा देते थें।



अध्याय -8

शोधाध्ययन के निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध अध्ययन डॉ0 बी. आर. अम्बेडकर के सामाजिक विचारों का एक समाजशास्त्रीय अध्ययन से सम्बन्धित था जिसके अध्यायनार्थ शोधकर्त्री ने डॉ0 अम्बेडकर के साहित्यसृजन अनेक पुस्तकों, निबन्धों तथा भाषणों तथा उनके ऊपर अन्य विद्धानों द्वारा लिखित मौलिक ग्रन्थों की विषय सामग्री को एकत्र कर इस तथ्य का अन्वेषणात्मक अध्ययन किया कि उनके सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा धार्मिक क्या विचार एवं मान्यताऐं थी। इस अध्ययन में व्यक्तिगत अध्ययन एवं ऐतिहासिक शोध विधियों का अवलम्ब लिया गया तथा मुख्य रूप से द्वितीय सूचना स्रोतों को एकत्र किया गया। इस शोध कार्य के निष्कर्ष अग्रलिखित हैं :-

1.0. डॉ. अम्बेडकर के सामाजिक विचारों के निष्कर्षो का विवरण :

1.1. एक आदर्श समाज : डा. अम्बेडकर का आदर्श समाज समानता, स्वतंत्रता तथा बन्धुत्व पर निर्भर करता है। वे एक व्यक्ति एक मूल्य के राजनैतिक, आर्थिक तथा सामाजिक जीवन के अभ्यास में विश्वास करते थे।

1.2. मानववाद : डा. अम्बेडकर के मतानुसार सामाजिक न्याय की बलिवेदी पर समाज कोई समायोजन नहीं चाहता। वे गलत विचारों को पनपाने वाली स्वीकृतियों को नकारते थे।

1.3. नवीन सामाजिक व्यवस्था : डा. अम्बेडकर हिन्दू सामाजिक व्यवस्था में विश्वास करते थे जिसमें आदर्शवाद का तथा स्वतंत्र विचारों का नेतृत्व हो। और यह दोनों सम्भव है। वे नव आदर्श को पोषणकारी मानते थे। स्वतंत्रता व समानता को नई व्यवस्था का अनिवार्य अंग वे मानते थे।

1.4. सामाजिक व्यवस्था : डा. अम्बेडकर हिन्दू सामाजिक व्यवस्था में असमानता होना मानते थे जिसमें ब्राह्मण उच्च तथा शूद्र निम्न प्रस्थिति धारण करता है तथा इस प्रास्थिति का जन्म जाति घटक होने को वे बुरा मानते थे। इसमें अस्पृश्य अलग-अलग हो जाता है।

1.5. वर्ण व्यवस्था : डा. अम्बेडकर वर्ण व्यवस्था को, व्यक्तियों को ऐसे समूहों में बांटा गया है जो एक दूजे के प्रति शत्रुता को जन्म देता है। इसके स्थान पर यह व्यवस्था प्रेम-बन्धुत्व या आर्थिक संगठन या सहकारिता पर आधारित होना चाहिए। वे वर्ण व्यवस्था का सवर्णो की अत्याधिक आदर्शो की अधिकता मानते थे। जो कटुता को पनपाती है। ऐसी श्रुति एवं स्मिृति धर्म को नष्ट करने का आह्वान करते थे।

1.6. बुद्धवाद वनाम हिन्दूवाद : डा. अम्बेडकर बुद्धवाद तथा हिन्दूवाद में बड़ा अन्तर मानते थे। बुद्धवाद का अर्थ है जाति विहीन तथा समान अधिकार पर आधारित समाज। ब्राह्मणवाद प्रारम्भिक रूप से जाति व्यवस्था पर आधारित होता है। जिसमें अलगांव, असमानता तथा विद्यमान होना वे मानते थे।

1.7. असमानता एवं समानता : डा. अम्बेडकर की मान्यता थी कि हिन्दु ऐसी कोई वस्तु नहीं जिसमें असमानता न हो। अस्पृश्यता निवारण के प्रयास में असमानता की भावनाओं को वे बाधा मानते थे जिसमें अस्पृश्य सदा दुखी रहते हैं। इसलिए वे इसको ब्राह्मणवाद की कार्यालयी दर्शन मानते थे।

1.8. जाति व्यवस्था : डा. अम्बेडकर जाति व्यवस्था को मानव प्रगति के लिए बाधा स्वीकार करते हैं, क्योंकि यह आपस में समाज में बिखराव लाती है। इससे समाज में चेतन्य रहने से रूकती है तथा जनचेतना की इसमें मृत्यु हो जाती है। जाति ने जनदान की भावना नष्ट कर दी है। धर्म जाति बन गया है तथा नैतिकता जाति की बन्धक हो गई है। इसमें गुणों की सराहना नहीं होती है।

1.9. सामाजिक अलगांव : जाति व्यवस्था से उत्पन्न सामाजिक अलगांव को डा. अम्बेडकर का आशय-सामाजिक वर्गीकरण, उपेक्षा, विभेदीकरण तथा सामाजिक अन्याय होना मानते थे। साथ ही उसे अवसर हीनता तथा असुरक्षा का कारण मानते थे। सामाजिक अलगांव को समाप्त करने हेतु वे जाति का उच्छेदवाद चाहते थे।

1.10. नारी : डा. अम्बेडकर नारी को अत्याधिक सम्मानीय मानते थे नारी शिक्षा ग्रहण में, तथ्य को समझने में तथा अनुशासन प्रिय है फिर उसका अनादर क्यों ? वे नारी सम्मान को समाज में सर्वोपरि समझते थे। वे चाहते थे कि पुरूष उनके साथ मित्र का व्यवहार करे न कि गुलाम के जैसा।

1.11 शिक्षा : डा. अम्बेडकर शिक्षा को सभी के लिए अनिवार्य समझते थे जो व्यक्ति में जागरूकता लाती है तथा मानव व्यवहार-चिन्तन, अनुभूति तथा आचरण में परिवर्तन करती है। उन्होंने अस्पृश्यों को निशुल्क शिक्षा तथा छात्रवृत्ति के संवैधानिक प्रविधान कराये। उनकी मान्यता थी कि किसी देश की सभ्यता एवं विकास का पता लगाना हो तो उस देश की शिक्षा का अनुश्रवण करना चाहिए। उससे पता चलता है कि देश कितना सभ्य एवं संस्कृति है।

1.12 सामाजिक प्रस्थिति : डा. अम्बेडकर सामाजिक प्रस्थिति के जन्म जाति घटक में विश्वास नहीं करते थे। वे अर्जित सामाजिक प्रस्थिति पर बल देते थे। उनका मानना था कि शिक्षा एवं बौद्धिक कौशल के आधार पर व्यक्ति का सामाजिक संरचना में प्रस्थिति निर्धारित हो।

1.13 सामाजिक संगठन : डा. अम्बेडकर समाज का विकास एवं धारणीय विकास के लिए अधिक मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र-सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक व धार्मिक क्षेत्र में संगठनों को आवश्यक मानते थे तथा सामाजिक गतिशीलता हेतु अधिकाधिक संगठनों का व्यक्ति की

सदस्यता पर बल देते थे, साथ ही संगठनों में सभी तवको की सदस्यता को अनिवार्य मानते थे।

1.14 भाषा : डा. अम्बेडकर भारत में बोली जाने वाली किसी भाषा के आलोचक नहीं थे। वे चाहते थे कि भारत एक राष्ट्र बने। उसके लिए हिन्दी को प्रोत्साहन देने पर जोर देते थे। हिन्दी अध्ययन के लिए प्रत्येक राज्य में हिन्दी संस्थान खोलने की वकालत ही नहीं अपितु गैर हिन्दी राज्यों में निशुल्क व छात्रवृत्ति प्रदान कर बड़ावा देना चाहते थे।

1.15 जाति उन्मूलन : डा. अम्बेडकर अन्तर जातिय विवाह को जाति व्यवस्था समाप्त करने का एक मात्र उपाय मानते थे। इसको बड़ावा देने के लिए सहशिक्षा, महिला रोजगार तथा महिला सशक्तिकरण को जाति उच्छेद के लिए गौण सुझाव पेश करते थे।

1.16 अस्पृश्यता : डा. अम्बेडकर अस्पृश्यता को हिन्दू जाति का कलंक मानते थे। वे वर्णवाद तथा जातिवाद को अस्पृश्यता का आविष्कार मानते थे जिसे ब्राह्मणों ने अपने हित के लिए कल्पना की, जाति को धार्मिक मानकर शूद्रों पर रोपड़ किया तथा उस पर आचरण न करने पर कठोर दण्डों का प्राविधान किया। वे अस्पृश्यता को राष्ट्र निर्माण में बाधा मानते थे तथा सामाजिक संघर्ष का सतत रखने का भारत में मुख्य कारक समझते थे।

2.0. डॉ0 अम्बेडकर के आर्थिक विचारों के निष्कर्षो का विवरण :

2.1 हिन्दू धर्म का अर्थशास्त्र : डा. अम्बेडकर ने बताया कि हिन्दुओं के पवित्र कानूनों ने शूद्रों को धन उपार्जन के लिए दंडित किया। इन कानूनों को गरीबों पर थोपा गया। वर्ण व्यवस्था, व्यक्ति की चाह, प्राथमिकता तथा भावना पर आधारित नही थी। यह उद्योगीकरण के विरुद्ध है। वे व्यक्ति की क्षमता में बृद्धि के लिए वैयक्तिक निपुणता को आवश्यक मानते थे।

2.2 जाति का अर्थशास्त्र : डा. अम्बेडकर के अनुसार जाति व्यक्ति के आर्थिक जीवन को अधिक प्रभावित करती है। जाति को केवल धार्मिक व्यवस्था बना दिया गया है इसके अलावा वे जाति को आर्थिक व्यवस्था भी मानते थे जो गुलामी से भी बदत्तर है । क्योंकि गुलामी में स्वामी को गुलाम को रोटी-कपड़ा-मकान प्रदान करने की जुम्मेदारी होती है ताकि गुलामें की दशाओं को ठीक रखा जा सके ताकि बाजार मूल्य उनका कम न हो परन्तु अस्पृश्यता की व्यवस्था में हिन्दू कोई जुम्मेदारी नहीं लेता जैसा कि आर्थिक व्यवस्थानुसार यह बिना कुछ किए शोषण को प्रेरित करता है । इस प्रकार यह आर्थिक शोषण की अनियंत्रित व्यवस्था भी है।

2.3 बुद्धवाद और अर्थशास्त्र : डा. अम्बेडकर बुद्धवाद को साम्यवाद से भी बेहतर मानते हुए कहते है कि साम्यवाद निजी सम्पत्ति को मना करता है। बुद्धवाद सम्पत्ति को कितने सीमा तक परिग्रहण किया जाय की भी मंसा करता है क्योंकि यह प्रश्न उपयुक्ता का, समय का परिस्थिति तथा मानव समाज के विकास का है।

2.4 औद्योगीकरण : डा0 अम्बेडकर मानते थे कि औद्योगीकरण के कारण भूमि के बड़े टुकड़े बनने की सुविधा बढ़ जाती है। यह बात निर्विवाद है कि जब तक लोगों को ऐसा लगेगा कि खेती करना अधिक लाभप्रद है, तब तक भूमि के पश्चात भूमि का एकत्रीकरण होगा।

2.5 मशीनरीकरण : डा. अम्बेडकर की मान्यता थी कि यदि मशीनरी तथा सभ्यता, यदि प्रत्येक को लाभकारी नहीं है तो सामाजिक संगठनों के कार्यो में परिवर्तन करना चाहिए ताकि कुछ के द्वारा ही लाभ न उपार्जित कर लिया जाये, ताकि सभी को लाभ मिले।

2.6 आर्थिक मुक्तिकरण : डा. अम्बेडकर दलितो की मुक्ति के लिए तथा उनकी सामाजिक प्रास्थिति को ऊँचा उठाने के लिए उनकी शिक्षा तथा कल्याण को

अधिक महत्वपूर्ण मानते थे। वे कहते थे कि अनुसूचित जातियों को लाभकारी व्यवसायों में प्रवेश के अवसर उत्पन्न करना आवश्यक है। जब तक लाभकारी व्यवसायों के द्वार उनके लिए नहीं खुलते तब तक उनकी आर्थिक मुक्ति नहीं हो सकती है। इसके लिए सरकार को उनके लिए भूमि आवंटन पर ध्यान देना चाहिए।

2.7 श्रमसंघ : डा. अम्बेडकर के अनुसार श्रम संघों के निम्न उद्देश्यों पर बल प्रदान करते थे-(1) उद्योगों में श्रमिकों के वेतन, कार्य के घन्टे तथा सेवाओं की प्रौन्नति करना, (2) कुछ निश्चित लाभ श्रमिकों को प्रदान करने में सहायता करना, (3) श्रमिकों को राजनीति विशेष का मार्ग दिखाये ताकि उनकी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ हो सके।

2.8 बधुआ श्रमिक : डा0 अम्बेडकर का दृढ़ निश्चय था कि चाहे बधुआ श्रमिकों के उन्मूलन हेतु सैकड़ों कानून बनाये जाये। क्योंकि इनका क्रियान्वयन राज्याधीन होने के कारण व्यक्ति जो शोषित होते हैं, बधुआ मजदूरी के लिए, वे कभी इन कानूनों से लाभ प्राप्त नहीं कर सकते।

2.9 उत्पादन : डा. अम्बेडकर उत्पादन की अवधारणा के बारे में कहते थे कि-कोई भी परिभाषा जो उपयोग में त्रुटि करती है एक आर्थिक भन्डारण की प्रकृति में वह अनिवार्य रूप से उत्पादन की उद्यमता में है। उत्पादन के लक्ष्य में क्या महत्वपूर्ण है, वह है उत्पादन की प्रक्रिया में कारकों का सामूहकीकरण।

2.10 मुद्रा : डा. अम्बेडकर परिवर्तनीय मुद्रा को दर के अनुरूप मानते थे। वह भी मुद्रा की क्रय शक्ति के बराबर समस्त वस्तुओं के सन्दर्भ में। वे सोचते थे कि स्वर्ण धातुमान मुद्रा प्रत्येक व्यवहारिक उद्देश्य के लिए पर्याप्त होती है। वे चाहते थे कि भारत को स्वर्ण धातुमान मुद्रा रखना चाहिए क्योंकि स्वर्ण केवल एक ईकाई के रूप में कार्य नहीं करता।

2.11 बीमा : डा. अम्बेडकर की मान्यता थी कि बीमा पर राज्य का एकाधिकार होता है। कृषि, राज्य का उद्योग होना चाहिए। भूमि का स्वामित्व राज्य को होना चाहिए और उसे बिना जाति, रंग तथा धर्म का भेद किए ग्रामीणों को जोतने-बोने हेतु वितरण करना चाहिए वह भी इस ढंग से ताकि कोई भू-स्वामी न हो सके। न कोई जोतकर्ता भूमिहीन।

2.12 नियोजन : डा. अम्बेडकर नियोजन के बारे में कहते थे कि नियोजन एक अनिवार्य दशा एक सफल नियोजित अर्थव्यवस्था की यह है कि जिसमें च्युतता तथा अधिकता नहीं होनी चाहिए। नियोजन स्थाई होना चाहिए।

2.13 भूमि सुधार : डा. अम्बेडकर ने भूमि सुधार हेतु बताया कि राज्य को कृषि भूमि का अधिग्रहण कर समान क्षेत्रीय क्षेत्रफल में विभाजित करना चाहिए तथा कृषि भूमि क्षेत्र को ग्राम निवासियों, कृषि श्रमिकों तथा दूसरे परिवारों को किराये पर उठा देना चाहिए। सहकारिता से खेती हो, सरकार के मार्ग दर्शन में, कृषि उत्पादन को आपस में वितरण, भूमि को क्षेत्राधिकारी के अधिकार में रखा जाय। यह कार्य जाति, रंग तथा धर्म का भेद किए किया जाना चाहिए। राज्य फिर सिंचाई कराये, सूखे में मदद करे, नये पशु दे, बीज एवं खाद्य दे ताकि कृषि उत्पादन को बढ़ाया जा सके। वे सोवियत कृषि व्यवस्था को प्राथमिकता देते थे।

2.14 आर्थिक नीति : डा. अम्बेडकर की आर्थिक नीतियों के बारे में समाजवाद का कोई वर्णन नहीं मिलता। उसके बीमा के राष्ट्रीयकरण का आह्वान है, भारतीय गरीबी पर जोर दिया गया है, मद्यनिषेध को पागलपन बताकर इस आधार पर निन्दा की गई है कि करारोपड़ राजस्व का मुख्य श्रोत है। वे व्यवहारवादी आधार पर आर्थिक नीति को देखते थे।

2.15 उत्पादन व उपभोग : डा. अम्बेडकर उत्पादन और उपभोग को विकास की निशानी मानते थे क्योंकि इसमें मानव विकास सन्निहित है। वे इस तर्क से

सहमत नहीं थे कि सम्पत्ति ही बुराई की जड़ है। समस्या....... सम्पत्ति होने की नहीं अपितु उसके असमान वितरण की है।

2.16 गाँव : डा. अम्बेडकर के लिए गाँव बहते नाले के पानी के गिरने का स्थान मानते थे जहां जाति के नाम पर दमन होता है और जो सामाजिक व आर्थिक पिछड़ेपन का प्रतीक है। उनका मानना था कि ग्रामीण गणराज्य भारत के गांव के लिए अभिशाप है, पद दलित लोगों के लिए ग्रामीण समाज पराश्रम का प्रतीक है। इसके विपरीत शहरी, औद्योगिक समाज ही दलितों के उद्धार का मार्ग उनके लिए लाभकारी है।

3.0. डॉ0 अम्बेडकर के राजनैतिक विचारों के निष्कर्षो का विवरण :

3.1 मानवाधिकार : डा. अम्बेडकर ने सर्व प्रथम दलितों के मानवाधिकारों की बात राउन्ड टेबिल कांफ्रेंस में उठाई। वे दलितों को मानव अधिकार दिलाने हेतु कटिबद्ध थे। इसके लिए वे देश की कुसेवा करने को तैयार थे तब मेरा यह कार्य पाप न होगा और इस देश की कोई हानि भी नहीं होगी। मै कब से मानव अधिकार प्राप्त करने के लिए भूखों मर रहा हूँ क्योंकि दलितों का जीवन वे अर्थ है।

3.2 राजनैतिक दर्शन : डा. अम्बेडकर भारतीय राजनीति को हिन्दुओं के पक्ष में मानते थे। जो आध्यात्मिक कम तथा उसका स्वभाव व्यापार एवं वाणिज्यमय अधिक है। वह भी इतना अधिक जिसे वे भ्रष्टाचार मानते थे। बहुत से लोगों की संस्कृति इसके तालाब में शामिल होने को उनसे मना करती है। राजनीति इस प्रकार की वन चुकी वे मानते थे कि न उसको स्वच्छ किया जा सकता है न यह सहन ही हो रही है। एक राजनीतिज्ञ होने के लिए, मल निस्तारण कार्य के समान ही वे मानते थे।

3.3 राजनैतिक शक्ति : डा. अम्बेडकर समुदाय के जीवन में राजनैतिक सम्प्रभुता को बहुमूल्य वस्तु मानते थे, उस समय जब यह विशेष रूप से

आह्वानों और चुनौतियों को पूरा किया जाय तब राजनैतिक शक्ति केवल साधन है जिसके द्वारा स्थिति सतत रखी जा सके। वे राजनैतिक शक्ति को दलितों के हाथ होना उनकी समस्याओं का हल मानते थे।

3.4 नायक पूजा : डा. अम्बेडकर ने नायक पूजा को सदैव अनुचित बताया।

3.5 राष्ट्रवाद की शक्ति : डा. अम्बेडकर हिन्दुस्तान की राजनैतिक आजादी बहुत आवश्यक मानते थे, इसे स्थागित नहीं किया जा सकता है। किन्तु यह काम साम्प्रदायिकता की समस्या को हल किए वर्ग आगे नहीं बढ़ सकता मानते थे। वे अंग्रेजों द्वारा योद्ध व अयोद्ध जातियों का वर्गीकरण मनमाना मानते थे। इसे वे जाति सिद्धांत पर वर्गीकरण मानते थे और मूर्खतापूर्ण मानते थे। वे राष्ट्रवाद की विचार धारा को देश के प्रति भक्ति एवं की भावना के आधारित मानते थे।

3.6 शोषितों की स्वतंत्रता : डा. अम्बेडकर विदेशी शासन से मिली दूसरे देश से एक देश को तो वह स्वतंत्र हो गया ऐसा नहीं मानते थे। उनका मत था कि बहुत से लोग उन देशों में दासता का जीवन व्यतीत करते रहे है जो स्वतंत्र है जैसे- नीग्रो लोगों का उदाहरण। राष्ट्र को एक ईकाई मानना ठीक हो सकता है परन्तु वे सामाजिक दृष्टि से ऐसा नहीं हो सकता मानते थे।

3.7 देश की एकता : डा. अम्बेडकर के जीवन का यह उद्धेश्य था कि स्वतंत्रता के साथ-साथ इस महान देश की एकता भी सुरक्षित की जाये। मुझे इस देश की है, क्योंकि मै जानता हूँ कि आज हम सामाजिक, राजनैतिक तथा आर्थिक विकास के ढांचे के प्रति चिंतित भी सन्देह नहीं है मुझे यह कहने से संकोच नहीं है कि एक दिन हम लोग किसी न किसी रूप में संगठित ढंग से रहेगे, ऐसा उनका परम विश्वास था।

3.8 पूना पेक्ट : डा. अम्बेडकर पूना समझौते की बाध्यता में लिया गया समझौता स्वीकार करते थे। वे तो दलितों की इतनी बड़ी संख्या को भारत की

राजनीति में प्रेशर ग्रुप बनाना चाहते थे क्योंकि भारतीय राजनीति सीधे दलितों के हाथों में नहीं आ रही थी परन्तु वे समूचे भारतीय राजनीति पर अपना प्रभाव चाहते थे।

3.9 व्यक्ति पूजा : डा. अम्बेडकर राजनीति में व्यक्ति पूजा को बहुत खतरनाक मानते थे। उन्होंने राजनीतिज्ञों को सावधान करते हुए कहा था कि विविध राजनैतिक दल अपनी पार्टी का हित राष्ट्र हित की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण मानने लगे है तब भारत की स्वतंत्रता खतरे में आ सकती है। इसका खतरा व्यक्ति पूजा का है। किसी भी स्थिति में जनता को अपनी स्वतंत्रता किसी भी व्यक्ति के प्रति सौपनी नहीं चाहिए, चाहे वह व्यक्ति कितना ही बड़ा क्यों न हो। निर्बुद्धि और अन्धी व्यक्ति पूजा देश की स्वतंत्रता को खत्म कर सकती है। यह तीसरी बात है कि जनता को अपने सामाजिक एवं आर्थिक हितों की सिद्धि के लिए सम्बैधानिक मार्गो को ही स्वीकार करना चाहिए।

3.10 स्वशाषन : डा. अम्बेडकर स्वशाषन को निपुणता स्वार्थी वर्गो के स्वार्थो से जुड़ी मानते थे, बजाय उत्तम सरकार के निर्माण से, विशेषकर मात्र दलित वर्ग का शोषण करने के इंजन से। वे भारत तें साम्प्रदायिक बहुसंख्यक के स्थान पर राजनैतिक बहुसंख्यक के पक्षपाती थे।

3.11 केन्द्र राज्य सम्बन्ध : डा. अम्बेडकर लिखते है कि संघवाद को आधारभूत सिद्धांत है कि विधायिका तथा कार्यपालिका की शक्तियां केन्द्र तथा राज्य के मध्य बटी है। राज्य के किसी कानून के अनुसार नहीं अपितु संविधान द्वारा यह सब होता है। इस प्रकार राज्य किसी तरह केन्द्र पर आधारित नहीं होते विशेषकर विधायिका एवं कार्यपालिका सम्बन्धी शक्तियों के लिए। इस प्रसंग में केन्द्र एवं राज्य बराबर होते हैं।

3.12 राजनैतिक दल : डा. अम्बेडकर सैद्धांतिक रूप से राजनैतिक दलों को वे अभिकरण मानते थे जिनके द्वारा समाज के जनमतों का क्रियान्वयन एवं

अभिव्यक्तिकरण किया जाता है। परन्तु व्यवहार में राजनैतिक दल जनमत को उत्पन्न करते है। प्रत्यक्ष रूप से जनमत को प्रभावित करते है और अक्सर जनमत पर नियंत्रण भी करते है।

3.13 विरोधी दल : डा. अम्बेडकर विरोधी दलों के कार्य कलापों तथा उनकी धारणा को सरकार चलाने के लिए अनिवार्य मानते थे। परन्तु देश में दो राजनैतिक दलों का होना भी अनिवार्य हों ताकि वर्तमान में काम करने वाले राजनैतिक दल का संयम में रखा जा सके। प्रजातंत्रात्मक सरकार तभी तक प्रजातंत्रात्मक सरकार रहती है जब देश में दो दल होते है, एक दल सरकार चलाने वाला, दूसरा विरोध करने वाला।

3.14 भाषाई राज्य : डा. अम्बेडकर भाषाई राज्य वह है जिसकी सामाजिक रचना उसकी जनसंख्या की एक समान हो, इसलिए अधिक अनुकूल होता है, अपने सामाजिक लक्ष्यों को प्राप्त करने में जिसे एक जनतंत्रात्मक सरकार को करना चाहिए। केन्द्र को चाहिए कि वह अपने प्रान्त को एक भाषा दे वही जो केन्द्र की भाषा होती है। वे भाषाई राज्य को बेहतर मानते थे क्योंकि उनमें समाज विरोधी तत्व नहीं होते। एक भाषा एकता के सूत्र में बांधती है।

3.15 राष्ट्रीय भाषा : डा. अम्बेडकर भारत की एकता के लिए एक भाषा को राष्ट्रीय भाषा के रूप में स्वीकार करना आवश्यक मानते हुए हिन्दी भाषा को राष्ट्र भाषा बनाना चाहते थे। क्योंकि हम भारतीय बने इसके लिए भी यह आवश्यक है। प्रांतीय भाषाऐं मध्य युग की ओर ले जायेगी। केन्द्रीय भाषा एकता की ओर ले जायेगी ऐसा उनका मनतव्य था।

3.16 प्रशाषन : डा. अम्बेडकर कहते थे कि यदि अधिशाषी प्राविधीकरण असहानुभूतिक है तो नीति कितनी भी कल्याणमय होने पर प्रशाषन को उससे पृथक नहीं होना चाहिए। हिन्दुओं द्वारा प्रशाषन दलितों के लिए

दुखदाई है। अतः प्रशाषन को सहानुभूतिपूर्ण होना चाहिए तब तक दलितों को कोई लाभ नहीं होगा।

3.17 वैदेसिक नीति : डा. अम्बेडकर मानते थे कि सिद्धांत मूल्यवान होते है। परन्तु वे राजनैतिक सिद्धांतों को वे पसन्द नहीं करते थे जो विदेश नीति को क्रियान्वयन करते है। वे नीतियों को काम चलाऊ नहीं चाहते थे जैसाकि चायना ने लासा पर अधिकार जमाने में नेहरू ने स्वीकृति दी। जिनकों दूसरों पर चढ़ाई करने की आदत है (चायना)। हर देश की विदेश नीति भूगोलिक कारकों के कारण भिन्न होती है जो ढील के समय महत्व के होते है। कनाडा के लिए जो उत्तम है वह हमारे लिए भी हो ऐसा नहीं होता। हम शांति चाहते है, युद्ध नहीं। अब प्रश्न है कि इस शांति की क्या कीमत है और किससे शांति क्रय कर रहे है और किस दर पर क्योंकि अन्ततः सीमा सुरक्षित जो रखनी है। वे राजनीति को खेल नहीं मानते थे आदर्शों को महसूस करने का। राजनीति में क्या सम्भव है, क्या खेल है।

3.18 सुरक्षा : डा. अम्बेडकर की मान्यता थी कि किसी देश की स्वतंत्रता की गारन्टी है सुरक्षित सेना, सेना जिस पर विश्वास किया जा सके कि वह देश हित लड़ेगी, हमेशा व हर दशा में वह भी स्वयं। भारत की सुरक्षा सभी भारतीयों के लिए हो तथा समुदाय विशेष के लिए नहीं। सीमा रेखाएं प्राकृति हो। वे कहते है कि चाहे विलम्व हो, सुरक्षा विभाग स्वयं की उत्तमता से कार्य करे।

4.0. डॉ0 अम्बेडकर के धार्मिक विचारों के निष्कार्षो का विवरण :

4.1 डा. अम्बेडकर की मान्यता थी कि व्यक्ति साध्य है। धर्म साधन है। धर्म ने व्यक्ति को नहीं अपितु व्यक्ति ने धर्म का आविष्कार किया है। इसलिए धर्म को चाहिए कि वह उसका कल्याण करे तथा उसे वैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रदान करे ताकि वह अपनी धार्मिक समस्याओं का सरलता से हल ढूँढ सके।

4.2 धर्म को डा. अम्बेडकर एक सामाजिक घटना के रूप में स्वीकार करते हैं। विश्व में ऐसा कोई समाज नहीं जिसमें रहने वाले जन किसी धर्म को नहीं मानते। वे धर्म को मनुष्य के लिए अनिवार्य मानते है क्योंकि धर्म मनुष्य को यथार्थ में मानव बनाता है।

4.3 जो साम्यवादी धर्म को अफीम का नशा बताते है उनकी डा. अम्बेडकर आलोचना करते है कि बिना धर्म पालन के विश्व की अर्थ व्यवस्था समानता, न्याय, स्वतंत्रता तथा बन्धुत्व का आर्विभाव नहीं कर सकती।

4.4 डा. अम्बेडकर उस धर्म में विश्वास नहीं करते जो मानव मात्र में भेद करता है, पूजा में विश्वास करता है, व्यक्ति को ईश्वर मानता है तथा जातिवाद में विश्वास करता है।

4.5 डा. अम्बेडकर धर्म को नैतिकता के रूप में स्वीकार करते है जो सारभौमिक रूप से सत्य हैं।

4.6 अहिंसा का पालन, झूठ बोलने से, मद्यपान से, पर स्त्रीगमन से विरत रहने के शील पालन को डा. अम्बेडकर धर्म पालन मानते थे।

4.7 डा. अम्बेडकर धर्म का आध्यात्मिक स्वास्थ्यमय मानव व्यवहार मानते हैं जो शांति एवं प्रगति को लाकर समाज का संतुलन बनाये रखता है।

4.8 डा. अम्बेडकर कुशल कर्मो के पालन को धर्म स्वीकार करते हैं जिनके निष्पादन से व्यक्ति का (कर्ता) के रूप में तथा समाज का कल्याण सुनिश्चित होता है।

4.9 डा. अम्बेडकर धर्म को सामाजिक नियंत्रण का एक शक्तिशाली यंत्र तथा विधि निर्माण का महानतम स्रोत मानते है।

4.10 मानव का मानव के साथ व्यवहार में समानता, स्वतंत्रता, न्याय तथा बन्धुत्व को धर्म की संज्ञा प्रदान करते हैं।

4.11 सभी तरह की व्यवस्था, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा प्रशाषन के लिए धर्म पालन (कार्य एवं उत्तरदायित्वों का निर्वाहन) समय की पाबन्दी, कार्य में निष्ठा तथा व्यवहार में ईमानदारी को धर्म मानते है।

4.12 जो धर्म......... अपने अनुयायिओं पर मानवता का व्यवहार करने अपने सधर्मियों के साथ नहीं पहुँचता तो वह धर्म नहीं शक्ति का प्रदर्शन है, जो धर्म अपने अनुकरण कर्ताओं को दुखी करता है, पशुओं को स्पर्स तथा मनुष्य को अस्पृश्य बताता है वह धर्म नहीं मानव उपहास है। जो धर्म कुछ वर्गो को शिक्षा, धन उपार्जन का निषेध, रक्षा कवच न रखने को आज्ञा देता है, जो धर्म अज्ञान को अज्ञान रहने को बाध्य करता है और गरीब को और गरीब, वह धर्म नहीं वह तो मात्र दिखावा है।

4.13 डा. अम्बेडकर हिन्दू वर्ण व्यवस्था को श्रम विभाजन मानने को अस्वीकृति करते हुए घोर आलोचना करते हैं। क्योंकि वर्ण व्यवस्था शूद्रों को वर्ण बदलकर जीविका उपार्जन की अनुमति नहीं देती। वर्ण व्यवस्था जिसमें जौ पैदा हुआ है उसी में जिये-मरे पर ऊपर न उठे।

4.14 डा. अम्बेडकर धर्म के नाम पर किसी तरह का आडम्बर स्वीकार नहीं करते थे वे प्रगति के लिए चिन्तनशीलता, कर्तव्य परायणता तथा सामाजिक व्याधिकी को दूर करने के कार्यो को करने हेतु धर्म को प्रेरित मानते थे।

4.15 डा. अम्बेडकर 'अत्तदीयो भव' की अवधारणा में विश्वास करते थे। उनकी मान्यता थी कि व्यक्ति की या समाज को अपनी समस्याओं को स्वयं निदानकर, हल ढूढ कर उपचार करना चाहिए। उन्हें कोई परलौकिक शक्ति हल करने नहीं आयेगी। इस प्रकार वे भाग्यवाद के विरोधी थे।

4.16 डा. अम्बेडकर बुद्ध की उस वाणी में अत्याधिक विश्वास था कि किसी विचार को इसलिए मत मानो कि धर्म ग्रन्थों में लिखी है अथवा अनेक लोग किसी विशेष वाणी में विश्वास करते है अथवा सदियों से लोग उसे मानते आ

रहे हैं। उस विचार को मानो जिसके मानने से व्यक्ति का तथा समाज का कल्याण होता है।

4.17 जो त्रिषित हैं। उन्हें देखकर मानव बुद्धि में करूणा का संचार हो तथा व्यक्ति करूणा से प्रेषित होकर त्रिषितों के लोक कल्याण के कार्य करे एसी दशा को डा. अम्बेडकर धर्म की संज्ञा प्रदान करते हैं।

4.18 डा. अम्बेडकर, धर्म पुस्तकों के वाचन से नदियों में विशेष समय तथा तिथियों पर स्नान करने से तथा तीर्थ स्थानों का भ्रमण करने से धर्म की प्राप्ति या पुण्य लाभ प्राप्त होता है। ऐसी उनकी मान्यता नहीं थी।

4.19 डा. अम्बेडकर मानव धर्म में विश्वास करते थे। वे धर्म को मानव का धर्म, मानव द्वारा मानव के प्रति तथा मानव के लिए अनिवार्य मानते थे। मानव द्वारा मानव सेवा, मानव उत्थान तथा मानव कल्याणकारी कार्यो को धार्मिक क्रियाऐं शामिल करते थे।

4.20 डा. अम्बेडकर इस प्रकार के धर्म को चाहते थे जो स्पष्ट रूप से विश्व को त्यागने वाला नहीं हो, अपितु इस तरह लौकिक हो कि यह नैतिकता का पाठ पढ़ाता हो।

4.21 डा. अम्बेडकर बौद्धधर्म को पूरी दुनिया के लिए आवश्यक समझते थे। उनके शब्दों में- यदि नई दुनिया पुरानी दुनियां से भिन्न हो तो नई दुनिया को पुरानी से अधिक धर्म की आवश्यकता है और यह धर्म बौद्ध धर्म ही हो सकता है (संघ रक्षित, 1986:71) बौद्ध धर्म को उचित धर्म मानने के पीछे इस धर्म में छिपी नैतिकता तथा विवेकशीलता थी। उनका यकीन था कि नई दुनिया में नैतिकता पर आधारित धर्म की आवश्यकता है। आज आर्थिक विकास की पूरी सम्भावना है, लेकिन गरीबी तथा पिछड़ापन भी मौजूद है जबकि दूसरी ओर अथाय समृद्धि है, संभ्रांत दुनिया में शक्ति और सम्पन्नता है। इस दुनियां में आध्यात्मिक तथा मनोवैज्ञानिक चिन्ता के विषय भी हैं जो

परिवर्तन, सामाजिक आन्दोलन, युद्धां, परिणाम युद्ध से होने वाले विनाश। आर्थिक विकास, व्यवसायीकरण तथा प्रौद्योगिकीय विकास के साथ-साथ नैतिकता की आवश्यकता है। अम्बेडकर बौद्ध धर्म के समाजवाद से अधिक इसकी नैतिकता से प्रभावित थे।

4.22. डा. अम्बेडकर की मान्यता थी कि 'दलितों को हिन्दू धर्म में क्यों बना रहना चाहिए-"किसी धर्म में सिर्फ इसलिए बना रहना बेवकूफी होगी कि यह पौराणिक है। कोई भी समझदार व्यक्ति इस नीति को नहीं अपनाएगा। ऐसी स्थिति में रहना जिसमें मनुष्य स्वयं को पशु समझे, यह किसी मनुष्य को संतुष्टि नहीं कर सकता। पशुओं और आदमी में यही फर्क है कि पशु प्रगति नहीं कर सकते, जबकि मनुष्य कर सकते हैं।"



ग्रन्थावली

- आर. टी.सी. (1931:438): प्रक्रियाऐं, लन्दन
- आचार्य रजनीश : अहिंसक डॉ. अम्बेडकर, 'मरो हे जोगी मरों' पुस्तक से।
- इम्मरसन, आरडब्लू : ''नोट गोल्ड वट ओनली मेंन केन मेक एक नेशन गेट
- श्री एमे. वाटसन(1961:32:33) डिक्सनरी आफ सोशियोलोजी
- ऐक्कॉक ,के.एल. डिजायन आफ सोसल रिसर्च पृष्ठ -5
- एलहान्स, डी.एन. फन्डा मेन्टलस आफ स्टेटिक्स, पृष्ठ-56
- करलिंगर एफ0एनु0 दि फाउण्डेशन ऑफ विहेवियरल रिसर्च, रिनेहार्ट एण्ड न्सिटन प्रेस हाल्ट न्यूयार्क, 1964,पृष्ठ 4
- कोनोर, एल.आर. (1936:18) 'ए स्टेटिक्स इन थ्योरी एण्ड प्रैक्टिस'
- कुवेर, डब्ल्यू. एन. (1989:49): 'राष्ट्र के निर्माता', लखनऊ पवलीकेशन, 10 जनपथ लखनऊ, उ. प्र.
- के. आर. निर्मल (1997:14): अम्बेडकर (खण्ड काव्य), काव्य कुंज प्रकाशन प्रताप नगर कालौनी, रंगपुर रोड, कोटा।
- खेरमोड, सी. वी. : डॉ.अम्बेडकर की आत्मकथा, भाग-3, पृष्ठ-168।
- गुड एण्ड हाट(1972:362) मैथड आफ सौसल रिसर्च, मेंकग्रो हिल बुक कम्पनी, न्यूयार्क
- चेस्टर,एल हन्ट (1960:539):'सोशियोलोजी आफ रिलीजन' इन कन्टेम्परेरी सोशियोलोजी, ऐडीटेडे वार्ड जे.एस. रोकी पीटर ओविन लिमिटेड, लंदन
- जोधा, एच.आर. (1989:2): 'बहुजन उत्थान'' अभूतपूर्व क्रांतिकारी विचारक, कोलम-10-11, नवम्बर,1989,संपादक पवलीसर हुसैनगंज, लखनऊ।
- जनता : दिनांक, 11.3.1933
- डॉ. वृजलाल वर्मा- डॉ. भीमराव अम्बेडकर -पृष्ठ-113
- डॉ. जाटव, डी. आर.(1982:1-4): डॉ. अम्बेडकर का मानवधिकार आन्दोलन।
- डॉ. अम्बेडकर (1989:10): स्पीचेज एण्ड राइटिंग्स, खण्ड-5, पृष्ठ-10
- डॉ. अम्बेडकर : ए क्रटीकल स्टडी, पृष्ठ-291।
- डॉ. अम्बेडकर (1984): राइटिंग्स एण्ड स्पीचेज, भाग-1, पृष्ठ-297
- डॉ. अम्बेडकर (1932): 'जनता' सितम्बर 24, 1932।
- डॉ. अम्बेडकर (1928): ज्ञापन भारतीय स्टेट्टरी आयोग के सम्मुख प्रेसित, 29 मई, 1928
- डॉ. अम्बेडकर (1938:38): जाति का उच्छेदवाद, पवलीकेशन, महाराष्ट्र शिक्षा विभाग।

- डॉ. अम्बेडकर (1943:438): रानाडे, गांधी, जिन्ना, थेकर को. मुम्बई।
- डॉ. अम्बेडकर (1945:185): पाकिस्तान और पार्टीशन आफ पाकिस्तान, थेकर को. बम्बई
- डॉ. अम्बेडकर : 'एक आलोचनात्मक अध्ययन', पृष्ठ-68
- डॉ. अम्बेडकर (1943:36): "व्हाट गांधी एण्ड कांग्रेस इन द अनटचेविल्स"
- डॉ. अम्बेडकर : रानाडे, गांधी, एण्ड जिन्ना, पृष्ठ-36
- डॉ. अम्बेडकर (1956:325): बुद्ध एण्ड हिज धम्मा, सिद्धार्थ पवलीकेशन
- डॉ. अम्बेडकर (1948:7): "हू वेयर द शूद्राज, थेकर को. बम्बई
- डॉ. अम्बेडकर (1936:21): जाति का उच्छेद वाद
- डॉ. अम्बेडकर : रेडियो वार्ता बम्बई आकाशवाणी, 9 नवम्बर, 1942
- डॉ. अम्बेडकर (1950): बुद्ध धर्म ही मानव धर्म, बुद्ध जयन्ती पर डा.अम्बेडकर द्वारा दिया गया भाषण वर्ष 1952
- डी.सी. हीर : हाऊ एण्ड व्हाई बुद्धिज्य डिक लाइन इन इन्डिया, पृष्ठ-12
- डॉ. अम्बेडकर : हिन्दू कोड बिल, खण्ड-2 पार्लियामेन्टरी डिवेट
- डॉ. अम्बेडकर (1987:7): स्पीचेज एण्ड राटिंग्स, खण्ड-3, महाराष्ट्र शिक्षा विभाग पवलीकेश
- डॉ. अम्बेडकर (1945:45) 'गांधी और अस्पृश्यों की मुक्ति'
- डॉ. अम्बेडकर (1938:196) : पिछड़े वर्ग।
- डॉ. अम्बेडकर : भारत में स्मोल होल्डिंग्स, पृष्ठ-28
- डॉ. अम्बेडकर (1982): राइटिंग्स एवं स्पीचेज, बोलम-2 पृष्ठ-298
- डॉ. अम्बेडकर (1984:292): राइटिंग्स एवं स्पीचेज, बोलम-2 पृष्ठ-292
- डॉ. अम्बेडकर (1979:301): राइटिंग्स एवं स्पीचेज, महाराष्ट्र शिक्षा पवलीकेशन विभाग,पृष्ठ-301
- डॉ. अम्बेडकर : स्टेट्स एण्ड मायनोरिटीज, पृष्ठ-34
- डॉ. अम्बेडकर (1927:13): स्मोल होलडिंग्स इन इन्डिया, पृष्ठ-13
- डॉ. अम्बेडकर (1923:302): 'द प्रोवलम आफ रूपीज, पी.एस. किंग एण्ड सन्स, पृष्ठ-302
- डॉ. जाटव, डी.आर. (1963): डॉ. अम्बेडकर का राजनैतिक दर्शन।
- डॉ. अम्बेडकर (1979:462): राइटिंग्स एण्ड स्वीचेज, खण्ड-3
- डॉ. अम्बेडकर (1931:123): आर. टी. सी. प्रथम।
- डॉ. अम्बेडकर (1915): भाषण: डी.ए.बी. कालेज, जालंधर, दिनांक: 28.10.51
- डॉ. अम्बेडकर : सिलेवरी एण्ड अनटचेविलटी
- डॉ. अम्बेडकर (1948:34): थाट्स ओन लिंगिस्टिक स्टेट्स।

- डॉ. अम्बेडकर (1946:438): आर. टी. सी. प्रोसीडिंग्स
- डॉ. अम्बेडकर (1943:28): कमुनल डेडलांक हाउ टू सोल्व इट
- डॉ. अम्बेडकर : भाषाई राज्यों पर आयोग के सम्मुख विवरण, पृष्ठ-6
- डॉ. अम्बेडकर (1948:146): राइटिंग्स एण्ड स्पीचेज, खण्ड-1
- डॉ. अम्बेडकर : एक आलोचनात्मक अध्ययन, पृष्ठ-231
- डॉ. अम्बेडकर : पायनीयर आफ ह्यमन राइट्स, पृष्ठ-38
- डॉ. जाटव, डी.आर. (1967): पोलिटिकल फिलोसोफी आफ डा.अम्बेडकर, पृष्ठ-86
- डिवेट आफ बाम्बे लेजिसलेटिव काउंसिल-खण्ड-1
- डॉ. अम्बेडकर पायनियरस आफ ह्यमन राइटस, पृष्ठ -126
- दारापुरी, एस.आर. :''डॉ. अम्बेडकर का आर्थिक दर्शन'', उ.प्र. संदेश, वर्ष-1 अप्रैल 1991, अंक-4
- द बाम्बे क्रांनिकल, दिनांक 16 अक्टूबर,1935
- धनंजय कीर : डॉ. अम्बेडकर लाइफ एण्ड मिशन, पृष्ठ-104
- पंडित जवाहर लाल नेहरू 1956 : डॉ. अवसान, 6 दिसम्बर 1956
- प्रो डोन मार्टिन डेन : औफसिट पी. 138
- प्लेवेन केयर
- परिपूर्णानन्द वर्मा (1991:5-6): 'देशभक्त डा. अम्बेडकर, उत्तर प्रदेश सन्देश वर्ष-1, अप्रैल, 1991, अंक-4
- पाचली, एम.बी. : भारतीय संविधान, पृष्ठ-267
- बोर्गाडस,इ0एस0
- बेसिन, एफ.एच. (1962): व्यवहारिक विज्ञानों में साहित्य समीक्षाऐं, मैकमिलन कम्पनी (प्रा.लि.)मद्रास,पृष्ठ-40
- भगवान दास : डॉ. अम्बेडकर दस स्पोक, भाग-3, पृष्ठ-193
- भगवान दास : दस स्पोक अम्बेडकर, खण्ड-1,पृष्ठ-87
- भगवान दास : दस स्पोक अम्बेडकर खण्ड-2, पृष्ठ-189
- मर्टन, आर. के : पृष्ठ-51
- मुखर्जी आर0एन (1960: 81)
- मुखर्जी,आर.एन.(2001), अष्टम संस्करण शोध व सांख्यिकी, मातृ आशीष तिलक कालोनी, सुभाष नगर, बरेली,
- मौसर, सी0ए0 (1961:3)सर्वेमेथड इन सोसल इन्वेस्टीगेशन, हेनरमेन लन्डन, पृष्ठ-3
- मधुलिमये (1990:87): डॉ. अम्बेडकर स्मृति ग्रन्थ, बोधिसत्व प्रकाशन, छितवापुर, पाजावा, लखनऊ।

- मांग पत्र (1938): औरियंटल ट्रान्सलेशन कार्यालय, सचिवालय बम्बई।
- यंग पी0वी0 (1960): साईन्टीफिक सोसल सर्वे एण्ड रिसर्च, एसिया पवलिसिंग हाऊस, बोम्बे, पृष्ठ-44
- यंग, पी0वी0 (1960:44): सोसल सर्वेएण्ड रिसर्च, एशिया पवलिसिंग हाऊस, बम्बई
- रोल आफ डॉ. अम्बेडकर इन नेशनल मूवमेन्ट, पृष्ठ-77
- राहुल सांकृत्यायन (1957): 'धर्मदूत' अंक- 3, मास-जुलाई, सारनाथ।
- रामेश्वर राकेश (1988:47): अम्बेडकर (खण्ड काव्य) प्रत्यूष प्रकाशन पटेल नगर पटना टेकरी रोड पटना।
- राहुल सांस्कृत्यायन (1999:41): डॉ. अम्बेडकर स्मृति ग्रन्थ, बोधिसत्व प्रकाशन, विनय पैलेस लखनऊ।
- रायल कमीशन आफ करेन्सी एण्ड फाइनेन्स, वोलम-2 ,पृष्ठ-314
- राष्ट्रीय आन्दोलन में डा. अम्बेडकर की भूमिका, पृष्ठ-92
- वरनोल्ड, एल.एल.(1928) पृष्ठ 306गुड एण्ड हाट (1952:320) मैथड इन सोशल रिसर्च, मेकग्रो हिल,न्यूयार्क
- वोर्ग, जी.वी. (1963): सामाजिक विज्ञानों के अनुसंधानों में साहित्य का सिंहावलोकन, जैन ब्रदर्स एण्ड संस पवलीसर्स एण्ड डिस्ट्री ब्यूटरस बाम्बे, पृष्ठ-48
- वहिष्कृति भारत (1927): 30 दिसम्बर।
- विमल, के. आर (1991:122) "डॉ. अम्बेडकर एवं आर्थिक नियोजन" उ.प्र. संदेश, अंक-4।
- सिलटिज, जहोज, डचकुकः रिसर्च मेंथड इन सोसल रिलेसन, पृष्ठ- 33
- सर्वश्री स्टॉउफर सेम्युल रिव्यू (1962:73): ए मैजर स्टैप आफ इन्वेस्टीगेशन इन सोसल साइन्सेज,अमेरिकन सोशियोलोजीकल रिव्यू अंक 23, पृष्ठ-73
- सी.ए.डी. : खण्ड-1, पृष्ठ-527
- हंसराज, द्विवेदीः थ्योरी एण्ड प्रक्टिस इन सोसल साइसेज, पृष्ठ-68
- हीर, डी.सी. - 'डॉ. अम्बेडकर ओन बुद्धिजिम्म', पृष्ठ-103
- H.F. Barnes, An Introduction to the History of Sociology, Uni To Chicogo press 1958,p.83
- L.A. Coser and B. Rosenbers, cit. p.5